

**PAGES MISSING
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 182629

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--391--29.4.72--10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.01 Accession No. G.H 1442
Author B5750 ,

Title

This book should be returned on or before the ~~date~~ last marked below

सूर-साहित्य की भूमिका

--:०:—

लेखक

रामरतन शेट्ट्यागर एम्० ए०
वाचस्पति त्रिपाठी एम्० ए०

—:०:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

प्रथमवार]

१९४१

[मूल्य ३॥]

Printed by
RAMZAN ALI SHAH
at the National Press, Allahabad.

सूर-साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन के प्रवर्तक
डा० धीरेन्द्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट् (पेरिस),
के
कर-कमलों में

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में सूरदास और उनके साहित्य के संबंध में उपस्थित सारी सामग्री से सहारा लिया गया है। डा० जनार्दन मिश्र, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० श्रीरेन्द्र वर्मा तथा पं० रामचंद्र शुक्ल की पुस्तकों तथा लेखों से विशेष सहायता मिली है। इन सभी अग्रजों का आभार मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ। सच तो यह है कि समालोचना के क्षेत्र में उतरते ही प्रत्येक लेखक को अपने पूर्व के लेखकों के कार्य को अपनी आधार-भूमि बनाना पड़ता है।

सूर-साहित्य के कुछ अङ्गों पर मैंने पहली बार प्रकाश डाला है। अनेक स्थलों पर उसके संबंध में मैंने ऐसे सिद्धान्त उपस्थित किये हैं जो कम से कम उस रूप में सामने नहीं रखे गये हैं जो रूप मैंने उन्हें दिया है। पता नहीं, वह आलोचकों एवं हिंदी साहित्य के पंडितों को कहाँ तक मान्य हो सकेंगे ?

इस पुस्तक को लिखने में मुझे श्री वाचस्पति त्रिपाठी एम्० ए० से अनेक प्रकार की सहायता मिली है, अतः मैं सहयोगी के रूप में उनका नाम दे रहा हूँ।

रामरतन भटनागर

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सूरदास की जीवनी ✓ ...	१
२—सूरदास के ग्रंथ ✓ ...	२१
३—सूरसागर ✓ ✓ ...	२५
४—सूर के प्रतीकार्थ ✓ ...	४५
५—सूर के दार्शनिक सिद्धान्त ✓ ✓ ...	५५
६—सूर के चरित्र ✓ ✓ ...	८५
७—भ्रमर-गीत ✓ ...	११४
८—सूर-साहित्य का काव्य-पक्ष ✓ ✓ ...	१२६
९—सूर की भक्ति ✓ ✓ ...	१८६
१०—सूरसागर और पुष्टिमार्ग ✓ ✓ ...	२०१
११—सूरसागर का रहस्यवादी पक्ष ✓ ...	२०६
१२—सूर का प्रकृति-वर्णन ✓ ...	२१०
१३—सूर-साहित्य की कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें ...	२२३
१४—सूर-साहित्य पर विहंगम दृष्टि ✓ ...	२३५
१५—सूर के दृष्टकूट पद ...	२४६
१६—सूर और तुलसी ...	२५४

परिशिष्ट

१—वैष्णव धर्म का विकास ...	२६८
२—राधा ...	२८४

सूरदास की जीवनी

जीवन की छोटी-मोटी बातों को सम्हाल कर रखने और उन्हें आत्म-कथा का रूप देकर काल की गाँठ में बाँधने की परिपाटी हमारे यहाँ प्रचलित नहीं हुई। इसके कई कारण हैं। अन्य देशों के मनीषियों की भाँति ऊपर की चमक-दमक और ऐहिक ऐश्वर्य से भारतीय विचारक प्रसन्न नहीं हुए। वे उन वस्तुओं पर अधिक बल देते रहे जिनका संबंध मनुष्य की देह से कम, उसकी मनश्चेतना और आत्मा से अधिक था। क्षण क्षण की बातों का हिसाब देना उन्हें नहीं आया। दूसरे, वे अत्यन्त नम्र थे। वे सभी ऊँचे दर्जे के तत्त्वदर्शी थे जो अपने को महत्व देना जानते ही नहीं थे। हमारे कवियों ने अवतारों की कथा गाई, लोक-जीवन संबंधी महान आदर्शों को सब के सामने रक्खा। वे जिन चरित्रों की कथाएँ गाया करते थे वे इतने उच्च थे कि उनके निर्माताओं को उनके सामने अपने जीवन की विज्ञप्ति की बात सूझी ही नहीं।

यदि हम सूरदास की जीवनी के लिए कुछ खोज करते हैं तो हमें इन आधारों की शरण लेनी पड़ती है :—

१—आत्मनिवेदन संबंधी पद।

२—सूरदास के कूट पद।

३—किंवदंतियाँ।

४—इतिहासकारों और अन्य समकालीन लेखकों की रचनाओं के उल्लेख।

५—उनके काव्य में सन्निहित अन्तर्वृत्तियाँ ।

आत्मनिवेदन और कूट^५ के रूप में जीवन पर प्रकाश डालने वाली सामग्री बहुत कम है । किंवदंतियों पर पूर्ण-रूपेण विश्वास नहीं किया जा सकता है । इतिहासकारों तथा समकालीन लेखकों की रचनाओं पर विश्वास अवश्य किया जा सकता है किन्तु इस प्रकार की सामग्री का भी अभाव ही है । काव्य में सन्निहित अंतर्वृत्तियों के रूप में मिलने वाली सामग्री जीवन पर प्रकाश डालने के बजाय मनोविज्ञान का विषय हो सकती है, अतः उससे ऐतिहासिक जीवन-वृत्त के निर्माण में अधिक सहायता नहीं मिलती । कवि-चरित्र के संबंध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामग्री अवश्य मिलती है ।

अब हम इन आधारों को ध्यान में रखते हुये सूरदास की जीवनी के संबंध में विचार करेंगे ।

१—आत्मनिवेदन आदि के रूप में स्वलिखित उल्लेख (अंतर्सौन्दर्य)—

(क) 'साहित्य लहरी' के एक पद में सूरदास जी की वंशावली के संबंध में इस प्रकार उल्लेख है :—

प्रथम ही प्रथ जगाते भे प्राग अद्भुत रूप ।
 ब्रह्म राव विचार ब्रह्मा नाम राखि अनूप ॥
 पान पय देवी दयो शिव आदि सुर सुख पाय ।
 कहा दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति सुख पाय ॥
 शुभ पार पायन सुरन पितु के सहित अस्तुति कीन ।
 तासु बंश प्रशंस शुभ में चन्द्र चारु नवीन ॥
 भूप पृथ्वीराज दीन्ह्यो तिन्हें ज्वाला देश ।
 वनय ताके चार कीन्ह्यो प्रथम आप नरेश ॥
 दूसरे गुणचन्द्र ता सुत शीलचन्द्र स्वरूप ।
 वीर चन्द्र प्रताप पूरण भयो अद्भुत रूप ॥

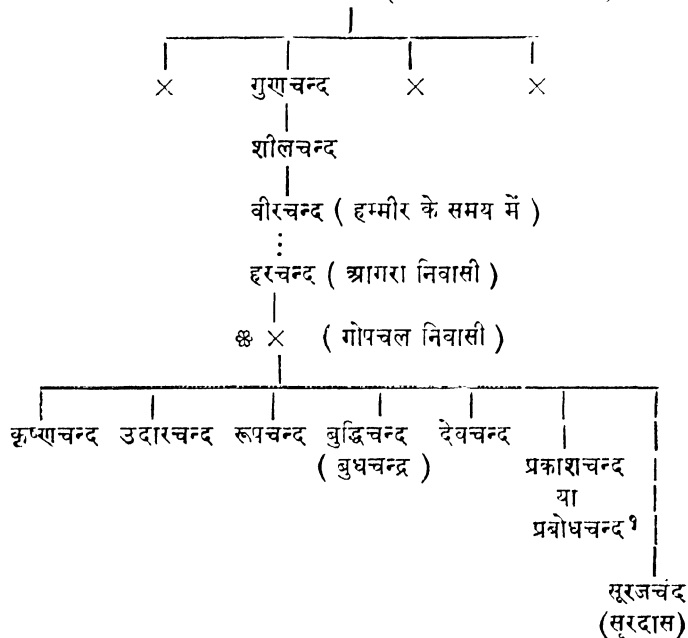
रन्तभार हमीर भूपत संग सुख अरवदात ।
तासु बंश अनूप भो हरचन्द्र अति विख्यात ॥
आगरे रहि गोपचल में रहो तासुत वीर ।
पुत्र जनमें सात ताके महाभट गम्भीर ॥
कृष्ण चन्द्र उदार चन्द्र जो रूप चन्द्र सुभाइ ।
बुध चन्द्र प्रकाश चौथो चन्द्र भे सुखदाइ ॥
देव चन्द्र प्रबोध पष्टम चन्द्र ताको नाम ।
भयो सातो नाम सूरज चन्द्र मन्द निकाम ॥
सो समर कर साहि से सब गये विधि के लोक ।
रहो सूरज चन्द्र दृग से हीन भर वर शाक ॥
परो कृप पुकार काहू सुनी ना ससार ।
सातवें दिन आइ यदुपति कियो आप उधार ॥
दिव्य चख दै कही शिशु सुन योगवर जो चाह ।
है कही प्रभु भगति चाहत शत्रु नाश स्वभाइ ॥
दूसरो ना रूप देखे देख राधा श्याम ।
सुनत करुणासिंधु भाखी एवमस्तु सुधाम ॥
प्रबल दच्छिन विप्रकुल ते शत्रु हू है नास ।
अप्रिल बुद्धि विचारि विद्यामान मानै मास ॥
नाम राखै है सु सूरज दास, सूर, सुश्याम ।
भये अतरभान बीते पाछली निशि याम ॥
मोहि मनसा इहै ब्रज की बसी सुख चित छाप ।
श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ॥
विप्र प्रथ ते जगा को है भाव सूर निकाम ।
सूर है नदनंद जू को लियो मोल गुलाम ॥

उपरोक्त पद से सूरदास की वैश-वृत्त इस प्रकार है :—

ब्रह्म राव जगात अथवा प्रथा जगात

⋮

चन्द (पृथ्वीराज के समय में)



(ख) सूरदास ने गुरु के संबंध में इस प्रकार लिखा है—

श्री गुरु वल्लभ तत्त्व मुनायो लीला भेद बतायो । २

⊗ इन्हें कुछ लोग रामचंद्र या रामदास कहते हैं । इस पद में नाम नहीं है ।

१. राधा कृष्णदास ने इन्हें संसृतचंद्र लिखा है । डा० जनार्दन मिश्र ने भी यही नाम माना है ।

(ii) भरोसो दड़ इन चरणन केरो ।

श्री वल्लभ नख चंद छुटा विनु सब जग मांभ अंधेरो ॥

(ग)^१सूरदास के समस्त पदों में केवल एक तिथि का एक स्थान पर निर्देश है जो 'साहित्य लहरी' के निर्माण काल के संबंध में है ।^१

(i) मुनि पुनि रसन के रस लेख ।

दसन गौरीनंद को लिखि मुवल संवत् पेख ॥ ^१

नंद नंदन मास छय ते हीन तृतिया बार ।

नद नंदन जनम ते हैं वाण सुख आगार ॥

तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि मूर नवीन ।

नंद नंदन दरस हित साहित्यलहरी कीन ॥

मुनि = ७ , रसन = ० , रस = ६ , दसन गौरी नंद

नंदन = १ इस प्रकार इस पद से सं० १६०७ निकलता है ।

(ii) 'सूर-सारावली' के समय कवि की आयु ६७ वर्ष की थी जो इस पद से प्रगट होता है ।

गुरु प्रमाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन ।

सूर सारावली छंद १००३

(घ) अपनी वृद्धावस्था के सम्बन्ध में कवि ने इस प्रकार कहा है—

बौर मन समुभि ससुभि कुछ चेत ।

इतनो जन्म अकारथ खोयो श्याम चिकुर भयो सेत ।

स्कं० १ पद २०२

(२) 'वार्ता' कारों और समकालीन इतिहासकारों और लेखकों की रचनाओं में सूरदास के सम्बन्ध में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं—

(क) नाभादास भक्त माल^१ में सूर संबंधी छुप्य इस प्रकार है:—

'सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ।

उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थिति अतिभारी ॥

१. इस ग्रंथ का निर्माण सं० १७०० के लगभग हुआ ।

वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी ।
 प्रतिविम्बित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी ॥
 जनम करम गुन रूप सवै रसना परकासी ।
 विमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन श्रवननि करै ॥
 सूर कवित मुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ।

भक्तमाल छंद ७३

(ख) ' चौरासी वैष्णवन की वार्ता^१ ' में अष्टछाप के समस्त कवियों के साथ सूरदास की भी कथा है जो इस प्रकार है—

“ सो एक समय श्री आचार्य्य महाप्रभू अडेल से ब्रज को पाव धारे………सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतौ सो सूरदास जी स्वामी हैं आप सेवक करते सूरदास जी भगवदीय हैं गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते सो श्री आचार्य्य जी महाप्रभू गऊघाट ऊपर उतरे सो सूरदास जी के सेवक देख के सूरदास जी सों जाय कही सो आज श्री आचार्य्य जी महाप्रभू आय पधारे हैं जिन्ने दक्षिण में दिग्विजय कियो है सब पण्डितन को जीते हैं……… तब सूरदास जी अपने स्थल तें आयके श्री आचार्य्य जी महाप्रभू ने दर्शन को आये तब श्री आचार्य्य जी महाप्रभू ने कही जो सूर आवौ बैटो तब सूरदास जी श्री आचार्य्य जी महाप्रभू को दर्शन करिके आगे आइ बैठे तब श्री आचार्य्य जी महाप्रभू ने कही जो सूर कछु भगवद् यश वर्णन करौ तब सूरदास जी ने कही जो आज्ञा तब सूरदास जी ने श्री आचार्य्य महाप्रभू के आगे एक पद गायो……… सो सुनिके श्री आचार्य्य जी महाप्रभू ने कही जो सूर हूँके ऐसो काहे को धिधियात है कछु भगवत्लीला वर्णन करि तब सूरदास जी ने कही जो महाराज हीं तो समुझत नाहीं तब श्री आचार्य्य जी महाप्रभू ने कही कि जाय स्नान

१. इस ग्रंथ के रचयिता गोकुलनाथ (विट्ठलनाथ के पुत्र और महा-प्रभु बल्लभाचार्य के पौत्र) हैं जिनका जन्म-संवत् १६०८ है ।

करि आवौ हम तो को समुभावेँगे तब सूरदास जी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभु जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायो पाछे समर्पण करवाई और दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही सो ताते सब दोष दूर भये तातो सूरदास जी को नवधा भक्ति सिद्धि भई तब सूरदास जी ने भगवत लीला वर्णन करि अनुक्रमणिका ते सम्पूर्ण लीला फुरी सो क्यों जानिये..... पाछे सूरदास जी ने बहुत पद किये पाछे श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास जी को पुरुषोत्तम सहस्रनाम सुनायो तब सूरदास जी को सम्पूर्ण भागवत स्फूर्तना भई पाछे जो पद किये सो भागवत प्रथम स्कंध ते द्वादश स्कंध पठ्यात किये.....श्री आचार्य जी महाप्रभु गऊघाट ऊपर तीन दिन विराजे पाछे फिर ब्रज को पाँवधारे तब सूरदास जी हू श्री आचार्य जी महाप्रभु के साथ ब्रज को आये तब श्री महाप्रभु जी अपने श्री मुख सौ कछौ जो सूरदास जी श्री गोकुल को दर्शन करौ सो सूरदास जी श्री गोकुल को दण्डवत करी सो दण्डवत करत मात्र श्री गोकुल की बाल लीला सूरदास जी के हृदय में फुरी और सूरदास जी के हृदय में प्रथम श्री महाप्रभु ने सकल लीला श्री भागवत की स्थापी है ताते दर्शन करत मात्र सूरदास जी को श्री गोकुल की बाललीला स्फूर्तना भई तब सूरदास जी ने मन में विचारयो जो श्री गोकुल की बाललीला को वर्णन करि के श्री आचार्य जी महाप्रभु के आगे सुनाइये.....तब श्री महाप्रभु जी अपने मन में विचारे जो श्री नाथ जी के यहाँ और तो सब सेवा को मडान भयो है पर कीर्तन को मण्डान नहीं कियो है ताते अब सूरदास जी को दीजिये.....और सूरदास जी ने सहस्रावधि पद किये हैं ताको सागर कहियै..... सो सूरदास के पद देशाधिपति ने सुने.....सो भगवत इच्छाते सूरदास जी मिले सो सूरदास जी सौ कछौ देशाधिपति ने.....सब गुनीजन मेरो यश गावत हैं ताते तुमहूँ कछु गावोसो सुनिके देशाधिपति अकबर बादशाह अपने मन में विचारयो जो ये मेरो यश काहे को गावेंगे.....सो देशाधिपति ने पूछो जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाहींएक

समय सूरदास जी मार्ग में जात हुते सो कोई चौपड़ खेलते हुते.....
सो देख के सूरदास जी के संग भगवदीय हुते तिनसो सूरदास जी ने
कह्यौ.....ता उपरांत भगवद् इच्छा जानि जो प्रभुन की इच्छा
बुलायबे की है.....जो पारसोली तहाँ सूरदास जी आये.....सो
राजभोग आरती करि के श्री गोसाईं जी गिरिराज ते नीचे उतरे सो आप
पारसोली पधारे भीतर के सेवक रामदास जी प्रभृति और कुंभनदास जी
और गोसाईं जी के सेवक गोविंद स्वामो चतुर्भुजदास प्रभृति और सब
श्री गोसाईं जी के साथ आये.....तब सूरदास जी ने एक पद और
कह्यौ सो पद :—

खंजन नैन रूप रसमाते ।

अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ।

चल चल जात निकट श्रवनन के उलट पलट ताटक फँदाते ।

सूरदास अंजन गुण अटके नातर अब उड़ि जाते ।

इतनो कहते ही सूरदास जी ने या शरीर को त्याग कियो ।

(ग) शेष अत्रुलकजल के 'आईने अकबरी' नामक ग्रंथ में मुगल
सम्राट अकबर के दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञों के नाम हैं जिनमें दूसरे स्थान
पर ग्वालियर-निवासी बाबा रामदास गायक का उल्लेख है और १६ वें
स्थान पर बाबा रामदास के पुत्र सूरदास का उल्लेख मिलता है^१ ।

(घ) 'मुन्तखाबुल तवारीख' का लेखक अलवदाऊनी जिहद दो पृष्ठ
४२ पर लिखता है :—

व खानखाना हमीं तौर बावजूद आँकि दरखज़ीना हेच न दाशत एक
लक तनका व रामदास लखनवी क अज़ कलावन्तान असलीम शाही
दरवादी सरोद औरा सानी मियाँ तानसेन तवान गुफ्त व दर खिलवात
व जलवात वा खान हमदम व मुहरिम बूद व अज़हुस्न सौत ओ पेवस्ता

१. आइने अकबरी पृ० ६१२ । इस ग्रंथ का निर्माण-काल संवत् १६२३-
२४ है ।

आब दरदीदा मेगरदानीद दर एक मजलिस अज नगदो जिन्स बखशीदा^१ ।

(ड) ' मुंशियात अबुलफज़ल ' में अबुलफज़ल का सूरदास के नाम लिखा हुआ एक पत्र है जिसका एक अंश इस प्रकार है ।

“ हज़रत बादशाह शीघ्र ही इलाहाबाद को पधारेंगे । आशा है कि आप भी सेवा में उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होंगे । और ईश्वर को धन्यवाद दें कि हज़रत भी आपको परम धर्मज्ञ जानकर मित्र मानते हैं और जब हज़रत मित्र मानते हैं तो इस दरगाह के चेलों और भक्तों का उत्तम वर्ताव मित्रता के अतिरिक्त और क्या होगा । ईश्वर शीघ्र ही आपके दर्शन करावे कि जिसमें हम भी आपकी सत्संगति और चित्ताकर्षक वचनों से लाभ उठावे ।

यह सुनकर कि वहाँ का करोड़ी आपके साथ अच्छा वर्ताव नहीं करता हज़रत को भी बुरा लगा है और इस विषय में उसके नाम कोपमय फर्मान भी जा चुका है और इस तुच्छ शिष्य अबुलफज़ल को भी आज्ञा हुई है कि आपको दो चार अच्छे लिखे, वह करोड़ी यदि आपकी शिक्षा नहीं मानता हो तो हम उसका काम उतार लें और जिसको आप उचित समझें, जो दीन दुखी और सम्पूर्ण प्रजा की पूरी संभाल कर सके उसका नाम लिख भेजें तो अर्ज़ करके नियत करा दूँ । हज़रत बादशाह आपको जुदा नहीं समझते, इसलिये उस जगह के काम की व्यवस्था आपकी इच्छा पर छोड़ी हुई है । वहाँ ऐसा हाकिम चाहिये जो आपके आधीन रहे और जिस प्रकार से आप स्थिर करें काम करे आपसे यह पूछना है सत्य कहना है और सत्य करना है । खत्रियों वगैरह में से जिस किसी को आप ठीक

१. खानखाना के पास उस समय अधक कोष नहीं था परन्तु फिर भी उन्होंने रामदास बखनधी के जो सलीमशाही कलावंतों में से एक था और जो संगीत कला में द्वितीय मियाँ तानसेन था.....एक लाख तनका (सिक्के) बखशीश दिये ।

समझें कि वह ईश्वर को पहचान कर प्रतिपाल करेगा उसी का नाम लिख भेजें तो प्रार्थना करके भेजें। ईश्वर के भक्तों को ईश्वर सम्बन्धी कामों में अज्ञानियों के तिरस्कार करने का संशय नहीं होता है सो ईश्वर-कृपा से आपका शरीर ऐसा ही है। परमेश्वर आपको सत्कर्मों की श्रद्धा देवे और सत्कर्म के ऊपर स्थिर रखे और ज़्यादा सलाम^१।

(च) बाबा बेनीमाधव दास के 'मूल गोसाईं चरित' में सूरदास और तुलसीदास के मिलन का वर्णन इस प्रकार है—

सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरिडिग वास ।

मुचि एकान्त प्रदेश महुँ, आए सूर मुदास ॥ २६ ॥

पटए गोकुल नाथ जी, कृष्ण रंग में बोरि ।

दग फेरत चित्त चातुरी लीन्ह गोसाईं छोरि ॥ ३० ॥

कवि सर दिखाएउ सागर को । मुचि प्रेम कथा नट नागर को ।
पद द्वय पुनि गाय सुनाय रहे । पदपंकज पै सिर नाथ कहे ।
अस आसिष देइय स्याम ठरै । यह कीरति मोरि दिगंत चरै ।
मुनि कोमल वैन मुदादि दिए । पद पोथि उठाइ लगाय हिए ।
कहै स्याम सदा रस चाखत हैं । रुचि सेवक की हरि राखत हैं ।
तिनको नहि संसय है यहिमा । सुति सेप बखानत हैं महिमा ।
दिन सात रहे सत सङ्ग पगे । पद कंज गहे जब जान लगे ।
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किए । पुनि गोकुल नाथ को पत्र दिये ।
लै पाति गये जब सूर कवी । उर में पधराय के स्याम लुवी २ ।

गोस्वामी तुलसीदास परिशिष्ट पृ० २२६-२३०

१. सूरदास जी का जीवन चरित—ले० मुं० देवी प्रसाद पृ० ३०-३१

२. डा० माताप्रसाद गुप्त की खोजों ने इस ग्रंथ को अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया है। अतः, हम इस उद्धरण पर आगे चलकर विचार नहीं करेंगे।

सूरदास के संबंध में तीन किंवदंतियाँ प्रचलित हैं—

(क) वे अथे थे ।

सूर सागर का वह पद जो गुरुवंदना में लिखा गया है इस किंवदंती की पुष्टि करता है ।^१

(ख) उन्होंने सवालाख पद बनाए ।

“सूरदास के सवालाख पद बनाने की किंवदंती जो प्रसिद्ध है ठीक विदित होती है क्योंकि एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हाने के उपरान्त और सारावली के समाप्त होने तक बनाए । इसके आगे-पीछे अलग ही रहे ” ।

(ग) सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे ।

अब हम ऊपर दी गई सामग्री पर आलोचनात्मक विचार करेंगे । ‘साहित्य लहरी’ के जिस पद से सूर के वंश-वृक्ष का निर्माण होता है मिश्र-बभ्रु के अनुसार वह प्रामाण्य है^२ । इस पद में एक पंक्ति इस प्रकार है “प्रबल दच्छिन विप्रकुलतं शत्रु द्वैहै नास ।” इससे मुग़लों के पतन और पेशवाओं के अभ्युदय का निर्देश मिलता है किन्तु यह घटना सूरदास से लगभग दो सौ वर्ष पीछे की है । इसके अतिरिक्त जहाँ इस पद में सूरदास को भाट सिद्ध किया गया है वहाँ ‘चौरासी वार्ता’ में उन्हें स्पष्टतः ब्राह्मण कहा है । ‘चौरासी वार्ता’ की प्रामाणिकता में संदेह नहीं है । अतएव इस पद के उल्लेख पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

वल्लभाचार्य उनके गुरु थे, यह अन्तर्साक्ष्य और ‘चौरासी वार्ता’ से भली भाँति प्रगट है । ‘चौरासी वार्ता’ से यह भी प्रगट होता है कि

१. सूर कहा कहि दुविध आंघरो बिना मोल को चरो ।

२. सूरसागर की भूमिका पृ० २ (खेमराज श्री कृष्णदास का संस्करण) ।

३. हिन्दी नवरत्न २३६ पृ० ।

वल्लभाचार्य की भेंट से पहिले भी सूरदास भगवद्भक्त समझे जाते थे और वे शिष्य बनाया करते थे ।

सूरदास ने दो ग्रंथ बनाए हैं । इनमें साहित्य लहरी की रचना सं० १६०७ में हुई । इस समय के लगभग ६७ वर्ष की आयु में सूर सारावली का निर्माण किया । इस गणना से सूरदास का जन्म सं० १५४० के लगभग सिद्ध होता है । सूरदास बहुत वृद्धावस्था तक जीवित रहे । ६७ वर्ष की अवस्था का उल्लेख तो उनके पद में ही मिलता है, सम्भव है कि वे इसके बाद भी बहुत दिनों तक जीवित रहे ।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता से सूरदास के संबंध में बहुत सी बातों का पता चलता है । महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेट होने के पहिले सूरदास आगरे के पास गऊघाट पर रहते थे । उनकी कीर्ति भी इधर उधर फैल गई थी । उस समय वे दासभाव से भगवान की उपासना करते थे और विनय, दीनता आदि के पद बनाया करते थे । वल्लभाचार्य ने उन्हें पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया । उनके अनुरोध पर भागवत के दशमस्कंध की कृष्ण लीला उन्हें मुनाई और उस लीला के अर्थ उन्हें बताये । इस समय के बाद से सूरदास ने विनय के पद गाना छोड़ दिया और कृष्ण लीला को ही एक मात्र अपना विषय बनाया । तीन दिन बाद जब आचार्य ब्रज गये तो इन्हें भी साथ लेते गए । वहाँ श्री गोकुल का दर्शन करने के उपरान्त सूरदास ने बाल लीला के संबंध में पद बनाना आरम्भ किए । इन बाल लीला के पदों से प्रसन्न होकर महाप्रभु ने श्री नाथ जी के कीर्तन पर इन्हें नियुक्त किया । कीर्तन के सबब में सूरदास ने 'सहस्रावधि' पद गाये । ये ही पद सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध हुये । चौरासी वार्ता में सूरदास और अकबर की भेंट का भी उल्लेख है । जिस प्रकार से इस भेंट की कथा कही गई है उससे यह प्रगट होता है कि इसका उद्देश्य सम्प्रदाय की महत्ता भी दिखाना था । सम्राट ने उनसे विनती की कि वे उसकी प्रशस्ति में कुछ पद कहें । किन्तु सूरदास ने अस्वीकार कर दिया । सम्भव है अकबर सूरदास से उनके

स्थान पर ही मिला हो क्योंकि अकबर धार्मिक प्रवृत्ति का था और संतों और भक्तों से मिला करता था ।

‘चौरासी वार्ता’ से यह स्पष्ट नहीं होता कि सूरदास अंधे थे या नहीं । अकबर वाले प्रसंग से उनका अंधा होना सिद्ध है^१ उनके अंतिम पद “ भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो ” में उन्होंने अपने को ‘द्विविधि आंधरो’ कहा है^२ । इससे भी सूरदास की नेत्रहीनता प्रमाणित होती है । परन्तु वार्ता प्रसंग ३ में सूरदास जी के चौपड़ खेलते लोगों के देखने का भी उल्लेख है । अतः इस विषय में कुछ निश्चित रूप नहीं कहा जा सकता । किंवदंतियों से उनका अंधा होना ही सिद्ध होता है । परन्तु अकबर के हृदय में जो बात उठी थी वही सूर साहित्य के समालोचक के हृदय में भी उठती है । अकबर ने पूछा था “ बिन देखे तुम उपमा को देत हौ सो तुम कैसे देत हौ । ” सूरदास ने अनेक प्राकृतिक दृश्यों और रंगरूप के संबंध में उपमाये और उत्प्रेक्षाये कही हैं जो इतनी स्वाभाविक एवं वास्तविक हैं कि पूर्वानुभव के बिना उन्हें उपस्थित करना असम्भव था । उन्होंने प्रत्येक वस्तु का विशद और सूक्ष्म चित्रण किया है । जन्माध कवि के लिये यह बात असम्भव प्रतीत होती है । इसके अतिरिक्त जहाँ जहाँ कवि ने नेत्रहीनता का उल्लेख अपने पदों में किया है वहाँ वहाँ अपनी वृद्धावस्था का भी उल्लेख किया है । इन सब बातों पर विचार करते हुये यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास जन्माध नहीं थे । परन्तु प्रौढ़ावस्था पार करते करते वे नेत्र विहीन हो गये । अकबर से भेंट होने के पहिले वे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके होंगे । उस समय वे नेत्र हीन थे । इस प्रकार का अनुमान करने से उन सब लेखों का सामंजस्य हो जाता है जो सूरदास की नेत्रहीनता के संबंध में पाये जाते हैं ।

१. “ देशाधिपति ने पूछो जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नहीं ” ।

२. नेत्रांध, हृदयांध ।

वार्ता से यह भी पता लगता है कि सूरदास की मृत्यु पारसोली में हुई। सूरदास जी की अचेतावस्था की सूचना पाकर विठ्ठलनाथ जी स्वयं पारसोली पहुँचे। उनके साथ रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास के जाने का उल्लेख मिलता है। इन्हीं सबों के सम्मुख सूरदास जी ने शरीर त्याग किया।

समसामयिक फ़ारसी इतिहास-ग्रंथों के सूरदास संबंधी उल्लेखों में सामंजस्य ब्रेठाना कठिन है। इनमें दो उल्लेख अबुलफ़ज़ल के हैं और एक अलबदाउनी का। अबुलफ़ज़ल और अलबदाउनी दोनों ने किसी रामदास का ज़िक्र किया है परन्तु उसके जन्म-स्थान के संबंध में दोनों में मतभेद है। अबुलफ़ज़ल के अनुसार रामदास ग्वालियर का निवासी था परन्तु अलबदाउनी ने स्पष्ट लिखा है कि वह लखनऊ से आया था। रामदास के संबंध में इसके अतिरिक्त और कुछ विशेष पता नहीं लगता। यह स्पष्ट है कि दोनों इतिहासकारों ने एक ही व्यक्ति का उल्लेख किया है। जनश्रुति के अनुसार प्रसिद्ध गवैया रामदास ग्वालियर निवासी था। अलबदाउनी के लेख में जो भ्रान्ति मिलती है उसका कारण ठीक ठीक बताया नहीं जा सकता।

रामदास को सूरदास का पिता मानने का कारण आइने-अकबरी वाला उल्लेख ही है। परन्तु उससे वह सिद्ध नहीं होता कि वास्तव में आइने अकबरी में उल्लिखित सूरदास गवैया सूरसागर का रचयिता सूरदास था। रामदास को सूरदास का पिता मानने का भी कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता। प्रक्षिप्त पद में से डा० ग्रियर्सन ने सूरदास के पिता का नाम रामचंद्र निकाल लिया है। उनका कथन है कि कदाचित् सूरदास के पिता रामदास का नाम अकबर के दरबार में जाने से पहिले रामचंद्र ही रहा हो। किन्तु प्रक्षिप्त पद से इस प्रकार के अर्थ नहीं निकलते। उसमें सूरजदास के पिता का नाम दिया हुआ नहीं है। केवल सूरदास के नाम साम्य के कारण रामदास को सूरदास का पिता मान लेना अनुचित है। बहुत सम्भव है कि आइने अकबरी के रामदास और सूरदास

पिता पुत्र सूरसागर के रचयिता सूरदास और उनके पिता से भिन्न व्यक्ति हों।

अलबदाउनी के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि सूरदास स्थिर रूप से बनारस में रहते थे। यद्यपि वे ईश्वर के भक्त माने जाते थे परन्तु वे इतनी उच्चश्रेणी के संत नहीं समझे जाते थे कि दीनइलाही मत का प्रवर्तक अकबर उन्हें अपने से बहुत ऊँचा मानता। पत्र में आशा प्रगट की गई है कि सूरदास बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होंगे। पत्र में कोई तिथि नहीं दी गई है। परन्तु अकबर सं० १६५२ ई० में इलाहाबाद गया था अतः ये पत्र उसी समय के लगभग लिखा गया होगा। इस समय सूरदास की आयु १०२ वर्ष रही होगी। इस अवस्था प्राप्त भक्त के लिए एक क्रोड़ी के व्यवहार की शिकायत मुगल सम्राट तक पहुँचाना उपहासास्पद जान पड़ता है—और न उससे यह आशा की जा सकती है कि वह बनारस से इलाहाबाद चलकर हज़रत बादशाह से मिलेगा। यदि सूरदास अकबर के दरबार में न भी हों तब भी उस समय के हिन्दू गायकों में उनकी अत्यन्त प्रसिद्धि रही होगी। अकबर के दरबार के अधिकांश गवैये स्वयं कुछ पद-रचना करते थे और अन्य कवियों और भक्तों के पद भी गाया करते थे। ऐसी दशा में अबुलफ़ज़ल सूरदास से अपरिचित न रहे होंगे। पत्र में इस तरह की कोई ध्वनि नहीं मिलती। अनुमान यह होता है कि यह पत्र किसी अन्य सूरदास को ही लिखा गया। इस पत्र की तिथि से सूरदास के संबंध में किसी तिथि का निश्चित कर लेना दूर की कल्पना है।

सम्भव है जिस रामदास के पुत्र सूरदास का उल्लेख आइने अकबरी ने किया है वह मदन मोहन सूरदास नाम के कवि हों जिनका उल्लेख भक्तमाल छप्पय १२६ में मिलता है। इस छप्पय की टीका करते हुये प्रियादास ने लिखा है कि ये अकबर के प्रिय थे और उसने उन्हें संडीला ज़िले का अधिपति बना दिया था। परन्तु निश्चित रूप से कुछ

कहा नहीं जा सकता । अकबर के दरबार के कवियों के नाम एक पद में इस प्रकार मिलते हैं—

पाइ प्रसिद्धि पुरन्दर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत बानी ।
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुन सागर गंग सुजानी ॥
जोध जगन्नज भे जगदीस जगामग जैत जगत्त है जानी ।
को अकबर सैन कथी इतनै मिलि कै कविता जु बखानी ॥

इस पद में सूरदास का नाम नहीं आया है । परन्तु इसे फिर भी तर्क के रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता क्योंकि नरहरी करन, वीरवल, खानखाना, गंग आदि कुछ प्रमुख दरबारी कवियों का नाम इसमें नहीं आया है । जो हो, सूरसागर के रचयिता सूरदास का अकबर के दरबार से संबंधित होना अब तक प्राप्त प्रमाणों से किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ।

वास्तव में सूर एक प्रचलित नाम अथवा उपनाम था और जहाँ तक संभव है सूरसागर के रचयिता सूरदास पहिले सूर नहीं थे । हो सकता है कि उनके समय में कुछ अन्य भक्त कवि इस नाम अथवा उपनाम से कविता करते हों और दरबार से उनका संबंध रहा हो । इन अनेक सूरदासों के कारण इतिहासकारों और कथा-लेखकों में अनेक भ्रान्तियाँ फैल गई हैं और जनश्रुति ने इनके जीवन-चरित्रों को कुछ इस प्रकार मिला दिया है कि उनको अलग अलग करना कठिन हो गया है । इन सब में केवल एक ही बात एक समान मिलती है—इनके नायक नेत्रहीन थे । भक्तमाल छप्पय ४६ में एक विल्वमंगल सूर की कथा है । इस कथा का नायक एक युवती से प्रेम करने लगा था । जब उसे पश्चाताप हुआ तो उसने उस स्त्री से प्रार्थना की कि वह उसकी आँखें निकाल ले । स्त्री के ऐसा करने पर वह नेत्रहीन हो गया । इसी प्रकार की एक जनश्रुति सूरदास के संबंध में भी मिलती है परन्तु सूरदास की रचना के अध्ययन से इस विषय में कुछ पुष्टि नहीं होती। यह जान पड़ता है कि जनश्रुति ने सूरसागर के सूरदास और विल्वमंगल सूर को एक मान लिया है । सम्भव है इसी प्रकार अन्य नेत्र-विहीन भक्त-कवियों

के जीवन चरित्र की कुछ बातें भी सूर के जीवन चरित्र में मिल चुकी हैं जिन्हें निश्चित रूप से अलग अलग करना कठिन है^१—जनश्रुति के अनुसार सूर का अंधा होना सिद्ध है इस पर हम पहिले विचार कर चुके हैं। दूसरी जनश्रुति का कहना है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग सूरदास को चंद्रवंशीय भाट मानते हैं परन्तु अब वे पद जिसमें उनके चंद्रवंशीय होने का उल्लेख है प्रक्षिप्त सिद्ध हो गये हैं। चौरासी वार्ता में सूरदास को ब्राह्मण कहा गया है। भक्त विनोद में मियांसिंह ने भी सूरदास को ब्राह्मण कहा है। इस दशा में उन्हें ब्राह्मण मानना ही अधिक उचित है। एक जनश्रुति के अनुसार सूर का जन्म-स्थान दिल्ली के निकट सिही ग्राम है। परन्तु चौरासी वार्ता की टीका में उनका जन्म

१. राधा कृष्ण दास के अनुसार इतने सूरदासों का वर्णन ग्रंथों में मिलता है—

(१) सूरदास-मदन मोहन—सूरध्वजी ब्राह्मण; अकबर के समय में संडीले के चकलेदार।

(२) वृंदावनस्थ संकेत वट-निवासी सूरदास। ध्रुवदास जो ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

“सेयो नीके भौंति सों श्री संकेत स्थान।

रह्यो बबाई छौंडि कै सूरज द्विज करयान ॥”

(३) विश्वमंगल सूरदास।

(४) वह सूरदास जिनका उल्लेख महाराज रघुराज सिंह ने अपनी “राम रसिकावली भक्तिमाला” में किया है।

डा० ग्रियर्सन ने सूदन का हवाला देते हुए इनके अतिरिक्त एक अन्य सूरदास का उल्लेख किया है।

राधास्वामी सम्प्रदाय में भी एक सूर साहब (सूरदास) प्रसिद्ध हैं। इनके पद संतों के जैसे हैं।

स्थान रुनकता ग्राम बताया गया है जिसकी स्थिति मथुरा और आगरे के बीच में है। परन्तु सम्भव है कि इस पिछले अनुमान का कारण 'चौरासी वार्ता' हो जिसमें सूरदास का यह स्थान गऊघाट बताया गया है।

जनश्रुति सूर के जन्म-स्थान के विषय में अधिक सहायता नहीं देती। परन्तु सूर की ब्रजभाषा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका जन्म ब्रज प्रदेश में हुआ होगा। किसी निश्चित स्थान को उनका जन्म स्थान बताना कठिन अवश्य है। इस प्रकार सूरदास के जीवन-वृत्त के संबंध में अनेक आधारों को लेकर तर्क-वितर्क करते हुये हम केवल कुछ थोड़े से निश्चित सिद्धान्तों पर पहुँच सकते हैं जिनमें से अधिकांश का आधार चौरासी वार्ता होगी।

सूर का जन्म सं० १५४० में ब्रज प्रदेश में हुआ। वे जन्मांध नहीं थे। कदाचित् तरुणावस्था में वे विरक्त हो गए और गऊघाट पर स्थान बनाकर रहने लगे। उस समय वे एक साधारण वैष्णव भक्त थे। किन्तु धीरे धीरे वे प्रसिद्ध हो गये और उनके अनेक शिष्य बन गए। सं० १५७६ वि० में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पूर्णमल के मंदिर में श्रीनाथ जी की पुनः स्थापना की। कदाचित् उसी समय के लगभग ब्रज प्रदेश का परिभ्रमण करते हुये वे गऊघाट पर आ निकले। सूरदास जी ने आचार्य जी से भेंट की और उनकी आज्ञानुसार अपने विनय के पद सुनाये। आचार्य ने उन्हें पुष्टि मत में दीक्षित किया। उन्हें भागवत की कथा सुनाकर भगवत् लीला गाने को कहा। अपनी मृत्यु तक सूरदास जी ने 'सहस्रावधि' पद गा लिये थे। जिनमें कृष्ण-लीला के साथ भगवान के अन्य अवतारों की कथा भी कही थी। सम्भव है कि कृष्ण चरित्र को छोड़कर अन्य अवतारों की कथा भागवत के उन अंशों का स्वतंत्र उल्था हो। उन्होंने ६७ वर्ष की आयु में (सं० १६०७ वि०) अपनी रचनाओं

का अधिकांश भाग पूरा कर लिया था। वृद्धावस्था के साथ वे कदाचित् नेत्र-हीन भी हो गए। उस समय उनकी प्रसिद्धि चतुर्दिक फैली हुई थी और कदाचित् सम्राट ने उनसे भेंट की^१। पुष्टिमार्ग के अन्य भक्त उनको बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने उन्हें पुष्टिमार्ग का जहाज़ कहा है। पारसोली ग्राम में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ के सम्मुख उनकी मृत्यु हुई। विठ्ठलनाथ राजभोग का नित्य-कर्म समाप्त करके सूरदास की मृत्युशय्या पर पहुँचे थे^२। राजभोग का समय

१. देखो 'वार्ता' ।

२. अणुभाष्य की भूमिका में लिखा है कि अकबर सं० १६२८ के लगभग वृन्दावन आया तथा वहाँ श्री गुँसाई जी को बुलाकर धर्मवार्ता की। 'वार्ता' के टीकाकार हरिराय ने लिखा है कि अकबर का भेंट का आग्रह तानसेन के मुख से सूरदास के पद सुनकर हुआ। तानसेन अकबर के दरबार के सं० १६२१ (१५६४ ई०) में आये, ऐसा प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ का मत है। परन्तु यह घटना वल्लभाचार्य के प्रत्यक्ष में घटी, इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अनुमान यह हो सकता है कि अकबर सूरदास की भेंट सं० १६२१ के पश्चात् परन्तु वल्लभाचार्य के निधन के बाद हुई क्योंकि तब तक सूर इतने प्रसिद्ध नहीं हुए होंगे। कई कारणों से हमारा मत है कि इस भेंट के समय सूरदास वयोवृद्ध हो चुके थे और कदाचित् सूरसागर की रचना कर चुके थे। १६४० या १६५२ की प्रयाग वाली भेंट हमें स्वीकार नहीं।

यह भेंट कहाँ हुई, यह भी निश्चित नहीं। हरिराय भेंट का स्थान मथुरा बतलाते हैं, रघुराजसिंह दिल्ली, देवी प्रसाद फ़तहपुर सीकरी, अबुल-फ़जल प्रयाग। बहुत संभव है कि यह भेंट मथुरा में ही हुई हो। प्रयाग को हम अस्वीकार कर चुके हैं। फ़तहपुर सीकरी १६३१—१६४० वि० तक राजधानी रही। हमने भेंट-काल के संबंध में जो मत बनाया, उससे यह

(२०)

सबेरे प्रायः दस-ग्यारह बजे तक है । अतः सूर का निधन दोपहर को हुआ होगा ।

स्थान भी उपयुक्त नहीं जान पड़ता । दिल्ली को हम न स्वीकार कर सकते हैं, न अस्वीकार ।

सूरदास के ग्रंथ

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सूरदास के १६ ग्रंथों का उल्लेख किया गया है^१। ये सब ग्रंथ सूरदास के नहीं हो सकते क्योंकि इनमें से कुछ में सूरदास की प्रिय शैली और विषय की भिन्नता है। इनमें से कई तो सूरसागर के ही कुछ पदों के संग्रह मात्र हैं। भक्तों ने अपनी सुविधा के अनुसार उन्हें अलग-अलग कर लिया है। गोवर्धन लीला बड़ी, दशम स्कंध की टीका, नाग लीला, भागवत आदि तो सूरसागर के भाग अवश्य ही हैं क्योंकि यह सम्भव नहीं सूरदास सूरसागर में आने वाले इन्हीं विषयों का अलग से पुनः वर्णन करते। वास्तव में इनके छंद सूरसागर के ही छंद हैं। डा० जनार्दन मिश्र ने अपनी पुस्तक में सूरसागर के उन पदों को प्रक्षिप्त माना है जो सूरजदास और सूरश्याम के नाम से आये हैं। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो जो ग्रंथ सूरजदास के नाम से मिलते हैं उन्हें सूरदास का नहीं कहा जा सकता। सूरजदास के नाम से दो ग्रंथ पाये जाते हैं एकादशी महात्म्य और राम जन्म।

इसके अतिरिक्त नल-दमयंती और ब्याहलो नाम के दो ग्रंथ भी सूरदास के ही कहे जाते हैं परन्तु डा० मोतीचंद की खोज से नल दमयंती वास्तव में नल-दमन नाम का सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य सिद्ध हुआ है जिसे सं० १६८५ में किसी सूरदास ने लिखा। 'ब्याहलो' के संबंध में अभी कोई मत निश्चित नहीं है।

१. गोवर्धन लीला बड़ी, दशम स्कंध टीका, नाग लीला, पद संग्रह, प्राणप्यारी (श्याम सगई), ब्याहलो, भागवत, सूरपचीसी, सूरदास जो का पद, सूरसागर, सूरसागर सार, एकादशी महात्म्य, रामजन्म, सूरसारावली, साहित्य लहरी और नल-दमयन्ती।

अब सूरदास के तीन ग्रंथ रह जाते हैं । सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी । इन तीन ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन करने से पता लगता है कि वे वास्तव में तीन ग्रंथ नहीं हैं । सूर सारावली, जैसा कि उसके नाम से ज्ञात होता है, स्वतंत्र ग्रंथ होने के बजाय सूरसागर की अनुक्रमणिका समझी जा सकती है । सम्भव है कि स्वयं सूरदास ने इन पदों की रचना की हो और इन्हें सूरसागर की भूमिका स्वरूप रख दिया हो । ग्रंथ के पहिले उसके विषय के परिचय देने की प्रणाली हमारी साहित्य-परम्परा में चली आती है । तुलसीदास ने भी अपने मानस में राम-कथा का परिचय बालकाण्ड में ही दे दिया है । कदाचित् सूरदास ने भी यही बात की हो । परन्तु इससे कहीं अधिक सम्भव यह है कि सारावली का निर्माण किसी अन्य व्यक्ति ने किया हो क्योंकि उसमें कथा को जिस क्रम और विस्तार से उपस्थित किया गया है वह क्रम और विषयों का उसी अनुपात में विस्तार सूरसागर में नहीं मिलता । उसके अन्तिम पद तो अवश्य प्रक्षिप्त हैं । सूरदास के एक लक्ष्य पद गाने का बात इस स्थल के सिवाय और कहीं लिखी नहीं मिलती । वार्ताकार ने अधिक सतर्कता से काम लिया है उनके अनुसार सूर ने ' सहस्रावधि ' पद लिखे हैं । एक लक्ष्य पद लिखने का कोई अन्य प्रमाण न मिलने के कारण तथा सारावली के क्रम, अनुपात और विषय में भेद होने से इस धारणा की पुष्टि होती है । यदि सारावली और सूरसागर की तुलना सूक्ष्म रूप से और विस्तारपूर्वक की जाय तो उसमें अनेक स्थल ऐसे मिलेंगे जो सूरसागर में नहीं हैं । सारावली में कृष्ण की संयोग लीला, वसंत, हिंडोला और होली आदि के प्रसंग कृष्ण के कुरुक्षेत्र से लौटने की कथा के बाद लिखे गये हैं । जान पड़ता है कि सारावली के लेखक का दृष्टिकोण ही दूसरा है । कृष्ण-कथा को इस रूप में उपस्थित करके वह राधाकृष्ण की लीला के नित्य और चिरानंदमय रूप को प्रतिष्ठित करना चाहता है^२ । परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से

१. ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष्य पद वंद ।

२. घंटावन हरि यहि विधि क्रीडत सदा राधिका संग ।

कुछ नहीं कहा जा सकता । हम यह नहीं कह सकते कि सारावली सूरसागर की अनुक्रमणिका है अथवा पृथक् स्वतंत्र ग्रंथ^१ ।

अब रही साहित्य लहरी की बात । यह ग्रंथ भी सूरसागर से ही निकाला गया है । इसमें सूरसागर के वे पद हैं जिनमें अपेक्षाकृत पाण्डित्य अधिक है और जो नायिका भेद, अलंकार एवं रसनिरूपण आदि के उदाहरण स्वरूप उपस्थित किये जा सकते थे । इसमें अनेक पद दृष्टिक्रम के हैं । इनमें से कुछ पद सूरसागर में भी हैं । कुछ ऐसे पद भी हैं जो सूरसागर में नहीं मिलते ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केवल सूरसागर ही प्रामाणिक ग्रंथ है । अन्य ग्रंथ या तो उन्होंने लिखे ही नहीं या ये सूरसागर के ही

भोर निशा कबहूँ जानत हैं सदा रहत इकरंग । पद नं० १०६६
सघन कुंज में खेलत गिरिधर मथुरा की सुधि आई ।

राखे ब्रज राधिका रानी अब न सकेगो जाई । पद नं० १०६७

१. वास्तव में सूरसारावली को क्रमबद्ध नहीं किया गया है । राधाकृष्ण दास ने जिस ग्रंथ से सहारा लिया है उनमें सूरसारावली का प्रथम पद इस प्रकार है—“ खेलत एहि विधि हरि होरी हो हारी हो वेद विदित यह बात !! ” और उनके कथनानुसार होली में ही ग्रंथ की समाप्ति की है । उनका कहना है कि सूरदास ने संसार को होली के रूपक में हमारे सामने रखा है । सारावली की सृष्टि की कल्पना और सूरसागर की सृष्टि विषयक कल्पना में भी मेल ठीक नहीं बैठता । यदि सूरसारावली के पदों को सूरसागर के पदों के विषय के क्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया जाय, तो यह पता चल सकता है कि यह ग्रंथ कहाँ तक सूरसागर की अनुक्रमणिका कहा जा सकता है । संभव है उस समय इसके रचयिता के विषय में भी प्रकाश पड़े । हमने बंबई के संस्करण का उपयोग किया है ।

२. 'साहित्य लहरी' के संबंध में विशेष विचार हम आगे चल कर उपस्थित करेंगे ।

ग्रंथ हैं। जो हो, इसी एक ग्रंथ^१ के आधार पर हमें सुर की महानता का पता लग जाता है।

सुर के ग्रंथ का कितना भाग प्रक्षिप्त है, यह नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है उनके बाद “सूरदास” और “सूरश्याम” नाम से लीला के पद बनाने की शैली ही चल पड़ी थी वास्तव में “सूरश्याम” और ‘सूर’ अथवा ‘सूरदास’ के विभिन्न उपनामों के प्रयोग ने जनता का ध्यान पहले ही आकर्षित कर लिया था। इसीलिए यह कथा प्रचलित हो गई कि ‘सूरश्याम’ नाम के पद स्वयम् कृष्ण (श्याम) ने बनाये और इस प्रकार सवालक्ष्ण पद की पूर्ति की। अभी तक इन दो उपनामों के प्रयोग के रहस्य का उद्घाटन नहीं हुआ है, परन्तु संभव है सूरदास कई उपनाम प्रयोग में लाते थे। वास्तव में नामों पर मोह अधिक नहीं था। तुलसी ने अपने पात्रों के नामों के अर्थ लगा कर अनुवाद तक कर डाला है। डा० जनार्दन मिश्र का कहना है कि सूरश्याम नाम के पद प्रक्षिप्त है परन्तु ऐसे पदों में भी अत्यंत उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा मिलती है। अतएव उनका कथन प्रमाण सिद्ध न होने तक हम इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते।

१. वास्तव में सुरसागर एक ग्रंथ नहीं है, वरन् कई ग्रंथों का संग्रह है। इस दृष्टिकोण से हम उसका विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं— (१) विनय, वैराग्य, सतसंग. गुरु महिमा संबंधी मौलिक पद (२) बाल लीला (३) प्रेम लीला (४) दान लीला (५) छोटी मान लीला (६) बड़ी मान लीला (७) विरह लीला (८) दो भ्रमर गीत (९) सारे ग्रंथ में फैला हुआ छंदों में समस्त श्रीमद्भागवत की कथा का उल्था (इसमें छंदोबद्ध तीसरा भ्रमर गीत भी सम्मिलित है)। यह विभाजन दशम स्कंध पूर्वार्द्ध का है। उत्तरार्द्ध में भी नन्द-यशोदा और राधा-माधव मिलन संबंधी मौलिक पद मिलते हैं। सच तो यह है कि सुर-साहित्य में ये अनेक छोटे-बड़े ग्रंथ हैं यद्यपि सुविधा के लिये इस अध्याय में हमने सुरसागर को एक ग्रंथ लिखा है।

सूरसागर

सूरसागर को देखने से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि वह प्रबन्ध भूमिका काव्य नहीं है उसमें कृष्णलीला संबंधी भिन्न भिन्न प्रसंगानुसार अनेक पद हैं ।

सब से पहली बात जो साहित्य-समालोचक के मन में उठती है वह यह है कि सूरदास ने तुलसीदास की तरह कृष्ण-चरित्र पर प्रबंध-काव्य क्यों नहीं लिखा ? वास्तव में कृष्ण-कथा राम-कथा से कम सुन्दर नहीं है । यह कथा महाकाव्य का विषय बन सकती थी परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि रामकथा के समान कृष्ण कथा क्रमवद्धरूप में सूरदास के सामने नहीं आ सकी थी । महाभारत में कृष्ण की कथा का पहिले पहल परिचय मिलता है परन्तु वहाँ कृष्ण प्रधान होते हुये भी प्रासंगिक है उनके दर्शन केवल प्रौढ़ रूप में होते हैं । भागवत में कृष्ण के जिस अंग पर विचार किया गया है उसका महाभारत में उल्लेख भी नहीं है । भागवत में कृष्ण के बाल चरित्र और तरुण प्रेमी जीवन का ही वर्णन है । महाभारत की कुरुक्षेत्र की घटना का सिर्फ निर्देश मात्र किया गया है । यदि सूरदास ने महाभारत और भागवत के कृष्ण को एक स्थान पर रखकर देखने की चेष्टा की होती तो उन्हें कृष्ण का उतना ही क्रमवद्ध चरित्र मिल जाता जितना वाल्मीकि के राम का था जिसके आधार पर तुलसी ने मानस का ढाँचा खड़ा किया ।

साहित्यिक रचना के समय प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों का सहारा अवश्य लेता है। तुलसीदास को वाल्मीकि और आध्यात्म में राम कथा जिस पूर्णरूप में मिली उस पूर्णरूप में सूरदास को कृष्ण-कथा के दर्शन नहीं हुये। दूसरे वल्लभाचार्य की उपासना पद्धति में भागवत का महत्व बहुत अधिक था। उसका अध्ययन-अध्यापन प्रत्येक भक्त के लिये आवश्यक था। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य उसकी कथा कहा करते थे। इसलिये भक्त कवियों ने जब अपनी दृष्टि कृष्ण-कथा की ओर की तो उन्हें भागवत के कृष्ण के दर्शन हुये और महाभारत के कृष्ण उनकी आँखों से ओझल हो गये।

भागवत और महाभारत के कृष्ण में मूलतः अन्तर है। भागवत के कृष्ण सौन्दर्य, प्रेम और लीला के कृष्ण हैं। महाभारत के कृष्ण राज-नीतिज्ञ हैं उनमें शक्ति और बुद्धि की पूर्णता है। तुलसीदास ने जिन तत्त्वों को लेकर राम को गढ़ा है वे तत्त्व महाभारत के कृष्ण में पूर्णतः मिलते हैं। परन्तु ये तत्त्व पुष्टि मार्गी भक्त को इतने प्रिय नहीं हो सकते जितने प्रेम और लीला के तत्त्व जो भागवत के प्राण हैं।

भागवत के साथ भक्तों में जयदेव के गीत गोविंद की चर्चा अवश्य थी। वल्लभाचार्य के समय में ही कुछ बंगाली वैष्णव गोकुल में रहने लगे थे। विठ्ठलदास के समय में तो उनका वहाँ प्राधान्य हो गया था। इससे यह अनुमान भी गलत नहीं हो सकता कि राधाकृष्ण-संबंधी विद्यापति की रचनाएँ भी ब्रज तक पहुँच गई थीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास से पूर्व के कृष्ण-साहित्य में पद लिखने की शैली प्रतिष्ठित हो गई थी। पद-रचना के समय सूरदास अपने पूर्ववर्ती साहित्यिकों की शैली का अनुकरण कर रहे थे। पद-साहित्य में प्रबंधात्मकता नहीं रह जाती, यह स्पष्ट है।

परन्तु प्रबंध-काव्य की ओर न जाकर पद-काव्य लिखने के और भी कारण हैं। यह अवश्य है कि पूर्व-परम्परा इस ओर इंगित करती थी तथा कृष्ण के जीवन के जिस अंग का कवि छूना चाहता था वह भी प्रबंध

काव्य की अपेक्षा कुटकर काव्य में ही अधिक अच्छा बँध सकता था । किन्तु कदाचित् सबसे प्रधान कारण स्वयं सम्प्रदाय की नीति और भक्तों की अपनी प्रवृत्ति थी ।

सूरसागर के किसी भी पद में उसका निर्माणकाल नहीं मिलता इस लिए अन्तर्साक्ष्य के आधार पर निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । परन्तु सूरसारावली और साहित्य लहरी का रचना काल इन ग्रन्थों में दिया हुआ है जिससे सूरसागर के रचना काल के सम्बन्ध में भी अनुमान किया जा सकता है ।

सूरसारावली की रचना सूरसागर के बाद सिद्ध होती है । इसके एक पद में कवि लिखता है ।

‘ गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ वरस प्रवीन ’

इससे यह अनुमान होता है कि सूरदास सरसठ वर्ष की आयु में सूरसागर समाप्त कर चुके थे ।

साहित्य लहरी की रचना सं० १६०७ में सिद्ध होती है ।

मुनि पुनि रसन के रस लेख

दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख ।

साहित्य लहरी पद १०६

साहित्य लहरी की रचना भी सूरसागर के बाद हुई क्योंकि उसके लगभग समस्त पद सूरसागर से ही निकाल कर संगृहीत किये गये हैं । इससे यह पता लगता है कि १६०७ तक सूरसागर का निर्माण हो चुका था । साहित्य लहरी और सूरसारावली का रचना काल लगभग एक ही समझना चाहिये क्योंकि दोनों सूरसागर का उनसे पहिले पुस्तक रूप में प्रणीत हो जाना सिद्ध करती है । दोनों की आधार वस्तु भी सूरसागर है अतः यह कहा

जा सकता है कि सं० १६०७ सूरदास की सरसठ वर्ष की आयु में सूरसागर की समाप्ति हो गई ।

परन्तु सूरसागर की रचना का आरम्भ कब हुआ यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता । विद्वानों की खोज से पता चलता है कि उसमें सूरदास के भिन्न भिन्न समय के रचे पद हैं । कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जो महाप्रभु वल्लभाचार्य के परिचय के पहिले के हैं । महाप्रभु का सूरदास से परिचय किस संवत् में हुआ यह भी निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता । “ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता ” (गोस्वामी श्री हरि राय जी महाराज कृत) से पता चलता है कि महाप्रभु का निधन सं० १५८७ में हो गया था । महाप्रभु सं० १५४६ में अड़ैल से वृन्दावन गये और उन्होंने वहाँ श्रीनाथ जी की स्थापना करके अपने सम्प्रदाय की नींव डाली अतः सूरदास का परिचय महाप्रभु से इन्हीं दोनों तिथियों के बीच में हो सकता है । परन्तु इस प्रकार साधारण तौर पर सूरसागर का रचना काल सं० १५८७ से पहिले और १६०७ तक सिद्ध होता है ।

किस संवत् में सूरसागर का प्रारम्भ किया यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता ; किन्तु इसके कुछ अवश्य महाप्रभु के परिचय के पहिले के लिखे हैं । चौरासी वर्षावों की वार्ता के अनुसार सूरदास गऊघाट पर रहते थे । भगवतभक्त थे और गान करते थे, बहुत से लोग उनके शिष्य भी हो गये थे । इस गान शब्द का तात्पर्य पद रचना से ही होगा क्योंकि सूरदास की कविप्रतिभा उन्हें दूसरों के पद गाने से अवश्य रोकती रही

१. पूर्णमल्ल के मंदिर में श्री नाथ जी की स्थापना सं० १५७६ (१५१६ ई०) में हुई । ‘प्राकट्य वार्ता’ से पता चलता है कि उस समय वल्लभाचार्य ने कुंभनदास को कीर्तन की सेवा सौंपी । जान पड़ता है कि इसके पश्चात् महाप्रभु और सूरदास में गऊघाट पर भेंट हुई और उनके पुष्टिमत् में दीक्षित हो जाने पर कीर्तन का काम उन्हें दे दिया गया । अतः सूरसागर के मुख्य भाग का रचनाकाल १५७६—१६०७ होगा ।

होगी । वियोगी हरि का कहना है कि सूरसागर के प्रथम स्कंध के विनय के पद उसी समय के लिखे हैं, जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे । सूरसागर का ढाँचा भागवत के आधार पर खड़ा किया गया है और पहिले स्कंध से बारहवें स्कंध तक की सारी कथा कम-अधिक उसी क्रम से सूरसागर में मिलती है । भागवत में विनय के पद नहीं हैं, यह कवि की बिलकुल मौलिक रचना है । इनमें दास्य भाव से की गई है । इन सब बातों का ध्यान रख कर यह कहना पड़ता है कि यह पद अवश्य ही सूरसागर के प्रधान भाग की रचना से पहले छन्द बढ़ हो कर गाये जा चुके थे । अतः सूरसागर का यह भाग तो महाप्रभु के परिचय से भी पहले का है । सूरसागर का प्रधान भाग अवश्य इस परिचय के बाद का है, जैसा चौरासी वार्ता की इन पंक्तियों में स्पष्ट है—

महाप्रभुन ने कही जो सूर कछू भगवद् यश वर्णन करौ तब सूरदास ने कही जो आज्ञा सो सुनि के श्री आचार्य्य जी महाप्रभुन ने कह्यो जो सूर हैं के ऐसो घिघियात काहे को है कछू भगवत्लीला वर्णन करि तब सूरदास ने कह्यो जो महाराज हौं तो समभक्त नाहीं तब श्री आचार्य्य जी महाप्रभुन ने कह्यो जो जा स्नान करि आवौ हम ताकों समझावेंगे तब सूरदास जी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभुन ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायो पाछे समर्पण करवायो

सूरसागर के पदों की संख्या कितनी है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । कुछ किंवदंतियों के अनुसार पदों की संख्या पदों की संख्या एक लाख तथा अन्य किंवदंतियों के अनुसार सवा-लाख है ।

सूरसारवली में—यदि यह पद प्रक्षिप्त नहीं है—सूरदास ने स्वयं कहा है—

श्री वल्लभ गुरु-तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ।
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद ।

ताको सार सूर सारावलि गावत परमानंद ।

इस पद से ज़े तो केवल यही तात्पर्य निकलता है कि सूरदास ने कृष्ण लीला संबंधी एक लाख पद बनाये । इससे यह प्रतीत होता है कि शेष पचीस हज़ार पद किंवदंतियों का सृजन है किन्तु इसमें भी संदेह का स्थान रह जाता है कि सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की । बाबू श्याम सुन्दर दास का कहना है “ सूर सागर के संबंध में कहा जाता है कि उसमें सवालाख पदों का संग्रह है पर अब तक सूर सागर की जो प्रतियाँ मिली हैं उनमें छः हजार से अधिक नहीं मिलते^१ ” । राधाकृष्ण दास जी लिखते हैं कि “ सूरदास जी के सवालख पद बनाने की जो किंवदंती प्रसिद्ध है वह ठीक विदित होती है क्योंकि एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य होने के उपरान्त और सारावली के समाप्त होने तक बनाये इसके आगे पीछे अलग ही रहे^२ ” । केवल किंवदंतियों के ही आधार पर सवालाख पदों का निर्मित किया जाना मान लिया है । यद्यपि वे निराधार हैं ।

चौरासी वंशुओं की वार्ता में भी एतद्विषयक लेख मिलता है । वह इस प्रकार है ।

“ सूरदास जी ने सहस्रावधि पद कीये हैं ताको सागर कहियै सो सब जगत में प्रसिद्ध भये ” ।

इस उद्धरण से भी यह बात प्रमाणित नहीं होती कि उन्होंने सवालाख पदों की रचना की । वार्ताकार को यदि इस बात का दृढ़ विश्वास होता तो ‘ सहस्रावधि ’ के स्थान पर ‘ लक्षावधि ’ लिख देता । यहाँ पर ‘ सहस्रावधि ’ से केवल यही तात्पर्य हो सकता है कि उन्होंने हज़ारों की संख्या में पद बनाये । यह शब्द केवल संख्या की अधिकता मात्र का बोधक है । संख्या-निर्धारण में फिर भी संदेह ही रह जाता है ।

१. श्याम सुन्दरदास—हिन्दी भाषा और साहित्य पृ० ३२३ सं० १३३४ का संस्करण ।

२. राधाकृष्णदास—सूरसागर की भूमिका पृ० २ ।

‘शिवसिंह सरोज’ के लेखक ने साठ हज़ार पद देखे थे^१। कहीं देखा था इसका कुछ भी उल्लेख उस पुस्तक में नहीं है। अतः पदों की संख्या के बारे में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अब तक जितने पद पाये जाते हैं उनकी संख्या ४ हज़ार से कुछ अधिक है। सम्भव है, बहुत से पद काल के ग्रास में नष्ट हो गये हों। अतः यह धारणा होती है कि ‘सवालाख’ शब्द सम्भवतः बहुत अधिक संख्या के लिये प्रयोग किया गया हो।

सूरसागर का विस्तृत विवेचन करने से पहिले उसके विषय पर एक **सूरसागर का विहंगम दृष्टि डाल लेना चाहिये। इस अध्याय में हम विषय यही करेंगे।**

सूर सागर की कथा स्कंधों में बँटी है। कुल मिलाकर बारह स्कंध हैं परन्तु दशम स्कंध को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभाजित किया गया है।

प्रथम स्कंध में २१६ पद हैं। इन पदों में अधिकांश पद विनय संबंधी हैं। इसमें का कथा भाग अनेक विषयों से संबंध रखता है और वह क्रमबद्ध भी नहीं है। यह कथा नाग वर्णन और संवाद के रूप में है। संवाद ज्ञान, वैराज्य और भक्ति की महत्ता स्पष्ट करते हैं।

इम स्कन्ध का सबसे महत्व पूर्ण भाग विनय संबंधी पद ही हैं। ये पद तुलसीदास की विनय पत्रिका के समान ही हैं। तुलसी की विनय पत्रिका के समान ही इनमें भी दास्यभाव की प्रधानता है। कदाचित् इसी साम्य को ध्यान में रखकर लोगों ने इस भाग को सूरदास की विनय-पत्रिका का ही नाम दिया है और इस नाम से जो संग्रह प्रकाशित हुये हैं उनमें कथा भाग को हटाकर शेष भाग संग्रहीत किये गये हैं। जैसा कि वियोगी हरि ने कहा है इस स्कंध का कथा भाग कदाचित् सूर ने सूरसागर को समाप्त करने के बाद वृद्धावस्था में लिखा। परन्तु इस के विनय-

१. शिवसिंह सरोज पृ० ५०५ नवलकिशोर प्रेस बखनऊ सन् १९२६ ई०।

पद उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षित होने से पहिले बनाये थे । ये वही पद हैं जिनके लिये महाप्रभु ने कहा था “ जो सूर हैं तो ऐसे षिधियात काहे को ” । इस स्कंध के पद दास्य-भक्ति के उज्ज्वलतम उदाहरण हैं । विनय के पद अन्य स्कंधों में भी मिलते हैं किन्तु इन पदों की सी मार्मिकता, सहृदयता और भक्त की आकुलभावना के दर्शन उनमें नहीं होते ।

द्वितीय स्कंध में ३८ पद हैं । इस स्कंध में कुछ अत्यन्त सरस भाव पूर्ण साहित्यिक पद हैं । परन्तु अधिकांश भाग भक्ति, आत्मज्ञान संबंधी वाद-विवादों और ब्रह्मा और चौबीस अवतारों की उत्पत्ति से भरा हुआ है जिनमें न वह सरसता है न भाव-प्रवणता ।

तृतीय स्कंध में केवल १८ पद हैं । इनमें उद्धव-विदुर संवाद, मैत्रेय को कृष्ण का ज्ञान संदेश सनकादि अवतार, रुद्र उत्पत्ति, सप्तचरनि एवं चार मनु की उत्पत्ति की कथा, सुर असुर उत्पत्ति, कपिलदेव का जन्म, भक्ति और हरमाया संबंधी प्रश्न और इसी प्रकार की कुछ अन्य कथाओं का संक्षेप में वर्णन है ।

चतुर्थ स्कंध में १२ पद हैं । इसमें शुकवचन, यज्ञ पुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रुव पृथु और पुरंजन की कथाओं का वर्णन है ।

पंचम स्कंध में केवल चार पद हैं । इस स्कंध में ऋषभदेव अवतार और जड़ भरत की कथाएँ हैं ।

षष्ठम स्कंध में भी केवल चार पद हैं । इसमें अजामिल उद्धार की कथा, इन्द्र द्वारा वृहस्पति का अनादर, वृत्रासुर का वध, इन्द्र का सिंहासन च्युत होना एवं उसे पुनः प्राप्त करना आख्यानकों का वर्णन है । इसके अतिरिक्त गुरु-महिमा संबंधी भी कुछ पद हैं ।

सप्तम स्कंध में ८ पद हैं । इसमें नृसिंहावतार की कथा प्रधान है । इसके सिवा भगवान की शिव को सहायता तथा नारद जी की उत्पत्ति का वर्णन है ।

अष्टम स्कंध में १४ पद हैं। इनमें गजमोचन की कथा, कूर्म अवतार, समुद्रमंथन, मोहनिरूपधारण, वामन और मत्स्य अवतार की कथायें हैं।

नवम स्कंध में १७२ पद हैं। इनमें राजा पुरूरवा का वैराग्य, च्यवन ऋषि की कथा, हलधर का विवाह, राजा अंबरीष की कथा, सौभरि ऋषि की कथा, गंगावतारण, परशुराम अवतार की कथा, रामावतार का कारण तथा राम कथा कही गई है। राम की कथा अधिक विस्तार पूर्वक है। इस कथा के बाद भी अनेक कथायें हैं। इनमें प्रधान ये हैं, अहिल्या श्राप, राजा नहुष की कथा, ब्रह्मा का श्राप, शुक और ययाति की कथा।

दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में ३४६४ पद हैं। यह स्कंध सूरसागर का प्राण है। इसी के कारण यह ग्रंथ इतना बृहत्काय और महत्वपूर्ण हो गया है। इसके पदों की संख्या अन्य स्कंधों के पदों के पंचगुनी है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा गमन तक की कथा है।

दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में १३८ पद हैं। इसमें कृष्ण कथा का उत्तरार्द्ध है।

एकादश स्कंध में केवल ६ पद हैं। इसमें बौद्धावतार, कल्कि अवतार, राजा परीक्षित और जनमेजय की कथायें हैं।

सूरसागर के स्कंधों के विषयों का विश्लेषण कर चुके ; परन्तु इस विश्लेषण से हमें मुख्य विषय के संबंध में अधिक नहीं मालूम होता। यह मुख्य विषय निःसंदेह कृष्ण की कथा है। उत्तरार्द्ध की कृष्ण कथा में बहुत थोड़े पद हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कथा का यह भाग घटनापूर्ण अधिक होने पर भक्त-हृदय कवि को उतना नहीं रुचा जितना बाल और किशोर लीला वाला भाग जिसका कवि ने २५ गुने अधिक पदों में वर्णन किया है।

दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में भगवान कृष्ण का जन्म, उनका मथुरा से गोकुल आना, पूतना, कागासुर शकटासुर तृणावर्त का वध, छुठी व्यवहार, नाम करण, कनछेदन आदि संस्कारों का वर्णन, घुटने चलना, बाल वेष, चंद्र प्रस्ताव, कलेवा, भोजन, माखन चोरी आदि लीलाएं प्रारम्भ में दी

गई हैं। फिर राधा के प्रवेश से कथा में शृङ्गार रस और नाटकीयता की उत्पत्ति होती है। श्री राधा-कृष्ण का प्रथम मिलाप, मुख विलास, यशोदा गृह गवन आदि प्रसंगों में कवि की उच्च प्रतिभा के दर्शन होते हैं। फिर गौचारन, काली दहन, वस्त्र हरण, मुरली लीला, गोवर्धन लीला, दान लीला का वर्णन है। अब कृष्ण किशोर हो चुके हैं। वह बाल रूप छोड़ कर प्रेमी के रूप में अधिक स्पष्ट होकर आते हैं। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि, श्रीकृष्ण का विरह, उनका अंतर्ध्यान होना और गोपियों का विरह, रास लीला, जल क्रीड़ा, राधिका मान, हिंडोला आदि के प्रसंग आते हैं।

इस स्थल में कृष्ण और गोपियों के संबंध में परिवर्तन हो जाता है। श्री कृष्ण अक्रूर के प्रस्ताव से मथुरा जाते हैं। मथुरा की लीला का वर्णन अधिक विस्तार से नहीं किया गया है। मथुरा में कृष्ण कुवजा के सत्कार पर मोहित हो जाते हैं और मथुरा में ही निवास करने लगते हैं। इधर गोपियाँ उनके विरह में व्याकुल रहती हैं। गोपियों की व्याकुलता का वर्णन विस्तारपूर्वक बड़ी मार्मिकता से किया है। वे कुवजा को उलाहना देती हैं, उनके आँसू ब्रजभूमि को धो देते हैं, स्वप्न में उन्हें कृष्ण के दर्शन होते हैं। पावस ऋतु तथा शरद ऋतु का चंद्रमा उनकी व्याकुलता को बढ़ा देता है। गोपियों का यह हाल कृष्ण को सुनाई पड़ता है। वे सान्त्वना देने के लिये उद्धव को भेजते हैं। वे अपने ज्ञान का संदेश देकर कृष्ण के पास मथुरा लौट जाते हैं। इसी स्थल पर उद्धव-गोपी संवाद में भ्रमर गीत की अवतारणा की गई है।

यदि दशम स्कंध पूर्वार्द्ध का विश्लेषण किया जाय तो कथा भाग को छोड़कर काव्य की दृष्टि से उसके तीन भाग किये जा सकते हैं। पहले भाग में कृष्ण की बाल लीला का वर्णन है। वात्सल्य रस का बाहुल्य है। इस भाग में यशोदा और नंद के चरित्रों की पुष्टि होती है। दूसरे भाग का प्रारम्भ श्री राधिका-कृष्ण के मिलन से होता है। इस समय दोनों बालक हैं इसीलिये कवि केवल शृङ्गार रस की ओर इंगित करके ही रह

जाता है। कृष्ण धीरे धीरे किशोर हो जाते हैं और इस भाग के उत्तरार्द्ध में शृङ्गारिक कृष्ण के दर्शन होते हैं राधा-कृष्ण और गोपियों की अनेक लीलाओं और क्रीडाओं का वर्णन मिलता है। अधिकांश अंश शृङ्गार रस के संयोग अंग की पुष्टि करता है, वियोग का केवल आभास मिलता है। वह भी जब कृष्ण लीला करते हुये अंतर्धान हो जाते हैं। दूसरे और तीसरे भाग के बीच में ब्रज की अनेक लीलाएँ तथा मथुरा की कथाये हैं। तीसरे भाग का अधिक अंश भ्रमर गीत ने ले लिया है।

दशम स्कंध का उत्तरार्द्ध हमारी दृष्टि में केवल कृष्ण और राधिका के चरित्रों के विकास के लिये ही महत्वपूर्ण है, इसमें कवि ने अधिक मौलिकता से काम नहीं लिया है।

बहुत प्राचीनकाल से लोगों ने सूर सागर को भागवत का अनुवाद समझ रखा है। इस धारणा की पुष्टि बाह्यसाक्ष्य से **सूरसागर और भागवत** पूर्णतः हो जाती है। सूर सागर और भागवत दोनों में ही बारह स्कंध हैं। भिन्न-भिन्न स्कंधों की कथाओं में भी समानता है। सूर सागर के जो संस्करण प्रकाशित हुये हैं और हस्तलिखित लिपियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें कथा भागवत के ढंग पर स्कंधों में बँटी है। अन्तर्साक्ष्य से भी यही धारणा बनती है। स्कंध १ पद ११३ में सूरदास ने स्वयं लिखा है—

श्री मुख चारि श्लोक दिए, ब्रह्मा को समुझाइ ।

ब्रह्मा नारद सौ कहे, नारद व्यास सुनाइ ।

व्यास कहे शुकदेव सो द्वादश कंध बनाइ ।

सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ ।

अब यदि सूर सागर और भागवत का तुलनात्मक अध्याय करें तो रोचक होगा।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भागवत और सूर सागर की तुलना में एक तालिका इस प्रकार उपस्थित की है^१।

स्कंध	अध्याय	भागवत श्लोक संख्या	स्कंध	सूर सागर पद संख्या
१	१६	(१६६२)	१	२१६
२	१०	(३६२)	२	३८
३	३३	(१५०२)	३	१८
४	३१	(१४७७)	४	१२
५	२६	(६६६)	५	४
६	१६	(८५१)	६	४
७	१५	(७५०)	७	८
८	२४	(६३१)	८	१४
९	२४	(६६३)	९	१७२
१०	पूर्वार्ध ४६	(६०) { (१६३५) } { (१५१६) }	३४५१	१० (पू०) ३४६४
१०	उत्तरार्ध ४१			१० (उ०) १३८
११	३१	(१३७४)	११	६
१२	१३	(५६६)	१२	५
	३३५	(१४६१५)		४०३२

इस तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा कि दशम स्कंध पूर्वार्द्ध की कथा तो भागवत और सूरसागर दोनों में विस्तारपूर्वक कही गई है। परन्तु जहाँ भागवत में अन्य स्कंधों की कथाएँ भी विस्तारपूर्वक हैं वहाँ सूरसागर में इन कथाओं को बहुत थोड़े पदों में समाप्त कर दिया गया है। भागवत के श्लोकों और सूरसागर के पदों को सामने रखने से वह बात स्पष्ट हो जायगी। सूरसागर में दशम स्कंध के बाद संख्या में प्रथम व नवम स्कंध ही बड़े हैं। शेष स्कंधों की पद संख्या कुल मिलाकर १०६ है जो नवम स्कंध की संख्या से भी कम है। भागवत के स्कंधों के श्लोकों की संख्याओं में इतनी विषमता नहीं है। इस तुलना से यह अनुमान किया

तालिका में कोष्ठकों में दी हुई संख्याएँ हमारी हैं। वे प्रत्येक अध्याय के श्लोकों की संख्याएँ हैं।

जा सका है कि यदि वास्तव में सूरसागर भागवत का अनुवाद है तो सूरदास ने दशम स्कंध की कथा को छोड़ कर अन्य स्कंधों की कथाओं को भागवत की तुलना में बहुत संक्षेप में लिखा है अथवा उन कथाओं के कितने ही प्रसंग छोड़ दिए हैं। भागवत और सूरसागर के स्कंधों की कथाओं की तुलना से हम इस अनुमान की सत्यता की जाँच करेंगे।

भागवत के इस स्कंध की कथा भूमिका स्वरूप है। इसमें पहले श्रीमद्भागवत का कल्पवृक्ष का रूपक है। फिर प्रथम स्कंध मंगलाचरण और प्रस्तावना के बाद कथा का प्रारम्भ होता है। पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे अध्यायों में सृष्टि द्वारा शौनकादि ऋषियों के प्रश्नों का समाधान और वेद व्यास की असंतुष्टि का वर्णन है। चौथे अध्याय में नारद जी का आगमन है। पाँचवें तथा छठवें अध्याय में नारद जी व्यास जी को ज्ञानोपदेश देते हैं और अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं। सातवें अध्याय से महाभारत की कथा का प्रारम्भ होता है। कथा महाभारत के उत्तर भाग से प्रारम्भ होती है और १६ वें अध्याय में हम परीक्षित को मुनि मण्डली से घिरा हुआ पाते हैं। उसी समय शुकदेव जी का आगमन होता है।

सूरसागर के प्रथम स्कंध में मंगलाचरण और प्रस्तावना नहीं हैं। सूरदास साधारण वन्दना से प्रणाम करते हैं। इसके बाद सूरसागर में भक्त वत्सलता, भक्त महिमा, माया, अविधा, तृष्णा और विनती आदि के वर्णन हैं। सूरसागर की कथा भागवत की कथा से पहिले से (श्रीकृष्ण के दूत कर्म से) प्रारम्भ की गई है। महाभारत के युद्ध का सांकेतिक वर्णन करते हुये कवि भीष्मदेहत्याग, परीक्षित-जन्म और उनके वैराग्य पर पहुँच जाता है। भागवत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम और अष्टम अध्यायों की कथाएँ सूरसागर में बिलकुल नहीं हैं।

भागवत का द्वितीय स्कंध भी भूमिका रूप है। इसमें यह बताया गया है कि परीक्षित ने भागवत की कथा को शुकदेव द्वितीय स्कंध से कैसे सुना। शुकदेव जी ने सृष्टि की उत्पत्ति,

विराट पुरुष की विभूतियों और भगवान की लीला का हेतु वर्णन करने के बाद परीक्षित के प्रश्न पर भागवत की कथा प्रारम्भ की। सूरसागर में द्वितीय स्कंध की कथा के अतिरिक्त अनन्य भक्ति महिमा, नाम महिमा हरि विमुख निंदा, भक्ति साधन, आत्म ज्ञान, आरती के प्रसंग सूरदास की मौलिक कल्पना हैं।

इस स्कंध की कथाएँ भागवत और सूरसागर में लगभग मिलती चलती हैं। सूरसागर में विदुर जन्म, सनकादि तृतीय स्कंध अवतार, रुद्र उत्पत्ति, हरि माया प्रश्न वर्णन आदि प्रसंग अधिक हैं। भागवत के अध्याय ८, ९, १०, १४, १५, १६, २० की कथा और सांख्य, योग, पुरुष, प्रकृति आदि का वर्णन सूरसागर में नहीं है। इसी स्कंध से अवतारों का वर्णन प्रारम्भ होता है। इस स्कंध में बाराह अवतार मुख्य हैं।

सूरसागर के चतुर्थ स्कंध में भागवत के चतुर्थ स्कंध के केवल सातवें आठवें, नवें, पन्द्रहवें, और पच्चीसवें—उनतीसवें चतुर्थ स्कंध अध्यायों की कथा का ही वर्णन है। शेष कथाओं का इस स्कंध में अभाव है।

पाँचवें स्कंध में ऋषभदेव और जड़ भरत की कथाएँ हैं जो भागवत के चौथे, पाचवें, छठवें, सातवें, आठवें, नौवें तथा दसवें पंचम स्कंध स्कंधों में मिलती हैं। ये कथाएँ सूरसागर में बहुत ही संक्षेप में लिखी गई हैं।

छठवें स्कंध में अजामिल उदार और वृत्रासुर की कथाएँ हैं जिनका क्रमशः भागवत के पहिले, दूसरे और नवें-तेरहवें अध्याय में मिलती हैं। भागवत की शेष कथाएँ सूरसागर में नहीं हैं किन्तु गुरु महिमा का वर्णन जिसका प्रसंग किसी प्रकार वृत्रासुर की ब्राह्मण हत्या से जोड़ दिया गया है अधिक है।

भागवत और सूरसागर दोनों के सातवें स्कंधों में श्री नरसिंहाव
तार का वर्णन है। ये कथायें भागवत में दो से
सप्तम स्कंध लेकर दस अध्याय तक दी गई हैं। सूरसागर की
श्रीभगवान शिव सहाय वर्णन तथा नारद उत्पत्ति
की कथायें भागवत में नहीं मिलती।

इस स्कंध में दोनों में गजेंद्र मोक्ष, कूर्मावतार, समुद्र मंथन वामना
वतार तथा मत्स्यावतार की कथाएँ हैं। सूरसागर के
अष्टम स्कंध इस स्कंध में भागवत के लगभग सभी अध्यायों की
कथा आजाती है। यद्यपि संक्षेप के कारण एक ही
कथा की बहुत सी कड़ियाँ नहीं मिलती।

सूरसागर और भागवत दोनों में पुरु की कथा, परशुरामावतार, अम्ब-
रीष की कथा, गंगावतरण और रामावतार की कथाएँ
नवम स्कंध समान रूप से मिलती हैं। सूरसागर में इन्द्र के शाप
की कथा, राजा नहुष की कथा तथा कच और देवयानी
की कथायें अधिक हैं। रामावतार की कथा भागवत के अध्याय १० और
११ का विषय है किन्तु सूरसागर में इस कथा का बहुत अधिक विस्तार है।

ऊपर भागवत और सूरसागर के स्कंधों की कथाओं की जो तुलना
की गई है, उससे निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं। भागवत का मुख्य
विषय भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। इसके द्वारा भागवत
कार भगवान की अपरिमित शक्ति दिखाना चाहता है। दशम स्कंध
के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से यह पता चलता है कि कृष्णावतार पर
उनका विशेष मोह है। भागवतकार ने विष्णु के समस्त अवतारों में राम
और कृष्ण अवतार को प्रमुख माना है। अन्य अवतारों की कथा भी कम
अधिक विस्तार के साथ कही गई है। यद्यपि सूरसागर में भी अवतारों के
उपस्थित करने का वही क्रम है जो भागवत में है, तथापि राम और
कृष्ण के अवतारों के सिवाय अन्य अवतारों का उल्लेख नाम मात्र के
लिए ही किया गया है।

रामावतार की कथा सूरसागर में भागवत की अपेक्षा अधिक विशद रूप से वर्णन की गई है। दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध की कथायें दोनों में बहुत कुछ मिल जाती हैं। किन्तु सूरसागर में यह कथा केवल १३८ पदों में बहुत संक्षेप में कह दी गई है। भागवत में यही कथा ४१ अध्यायों में कही गई है। यद्यपि भागवत और सूर सागर दोनों के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध की कथा वृजवासी कृष्ण की लीला से संबंधित है। भागवत में ऐसे अनेक मनोहारी स्थल नहीं हैं जो सूरदास की मौलिक कल्पना हैं। सूर सागर का लगभग सारा विस्तार दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में समाप्त हो जाता है। यद्यपि भागवत में यह कथा जितने अध्यायों में कही गई है वे समस्त अध्यायों की संख्या का लगभग छठवाँ भाग है। दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में द्वारिका वासी राजनैतिक योगिराज कृष्ण का वर्णन किया गया है। जान पड़ता है सूर को कृष्ण का यह रूप प्रिय नहीं था। वे कृष्ण चरित के केवल उस भाग से अधिक प्रेम करते थे जो ब्रज अर्थात् गोकुल वृंदावन, तथा मथुरा में प्रकाशित हुआ था।

प्रत्येक स्कंधों के कथा-प्रसंगों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरसागर भागवत का केवल आंशिक अनुवाद है; यदि उसे अनुवाद कहा जा सकता है। वास्तव में जहाँ इस प्रकार का अनुवाद दिखाई पड़ता है वहाँ भी भागवत की कथा को बहुत संक्षेप में और कभी क्रमहीन रूप से उपस्थित करता है।

इस तुलना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सूरसागर का सबसे महत्वपूर्ण भाग दशम स्कंध पूर्वार्द्ध है। इसमें कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा जाने और वहाँ से उद्धव को ब्रज भेजने और गोपियों का समाचार जानने तक की कथा है। परन्तु जैसा पहिले कहा जा चुका है इस भाग में कृष्ण का जो चित्रण हुआ है वह भी भागवत के इस भाग के चित्रण से बहुत भिन्न है। भागवत के कृष्ण शक्तिशाली हैं। स्थान स्थान पर उनका असुर संहारी रूप प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। उसमें कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ ही अधिक हैं लौकिक कम।

यद्यपि सूरसागर की भी अनेक बाल लीलाएँ असुरों के संहार से संबंध रखती हैं परन्तु उसमें उनका बहुत संक्षेप में उल्लेख मात्र है।

सूरसागर के दशम स्कंध के मौलिक भाग को हम तीन शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं—

- (१) बाल लीला ।
- (२) राधाकृष्ण, गोपी कृष्ण लीला ।
- (३) गोपिका विरह या भ्रमरगीत^१ ।

नीचे हम इनमें से पहले दो शीर्षकों के अन्तर्गत सूरदास के मौलिक प्रयत्नों का निर्देश करेंगे और उनपर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

(१) यह दशम स्कंध का वात्सल्य रस प्रधान बाल लीला अंश है। भागवत में कृष्ण की बाल लीला विशेषकर अष्टम अध्याय में है। परन्तु उसमें भी वात्सल्य रस का पूर्णरूपेण परिपाक नहीं हो सका है। भागवत-कार का ध्येय इस लीला से भी अद्भुत रस की सृष्टि करना तथा कृष्ण का गौरव प्रदर्शित करना ही रहा है। कृष्ण जब मिट्टी से भरा मुख खोलते हैं तो माता को उनके मुख में त्रैलोक्य के दर्शन होते हैं। सूरसागर में इस भाग के अन्तर्गत ये मौलिक प्रसंग हैं—छुटी व्यवहार वर्णन, अन्नप्राशन लीला, वर्षगांठ लीला, कनछेदन लीला, घुटुरुवनि चलनि, पायनि चलनि, बालवेश, चंद्र प्रस्ताव, कलेवा भोजन, खेलन, माखन-चोरी, चकई-भौरा खेलन। इसके अतिरिक्त माटी को प्रसंग, हरिदावरी बन्धन आदि जो प्रसंग भागवत में उपस्थित हैं उन्हें भी सूरदास ने कहीं अधिक विस्तार के साथ लिखा है।

(२) यह अंश संयोग शृङ्गार प्रधान है। भागवत में केवल गोपियों और कृष्ण के प्रेम का वर्णन मिलता है। भागवत में राधा राधाकृष्ण और गोपी कृष्ण का कोई उल्लेख नहीं। यद्यपि एक प्रधान गोपी का परिचय मिलता है जो कुछ समय के लिए कृष्ण

१. 'भ्रमरगीत' की कथा के अंदर सूरदास कहीं तक मौलिक हों सके हैं। इसका विवेचन इस पुस्तक के इसी शीर्षक वाले अध्याय का विषय है।

की विशेष प्रेमपात्री है। सूरसागर में गोपियों के प्रेम के विशद वर्णन मिलते ही हैं। उसमें हमें प्रथमवार राधा का परिचय मिलता है। सूरसागर में राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी के प्रेम संबंध को बहुत विस्तारपूर्वक लिखा गया है। उनके प्रेम का आरम्भ, विकास तथा परिणाम हिन्दी साहित्य की अद्वितीय वस्तु है।

भागवत और सूरसागर का तुलनात्मक अध्ययन करते हुये डा० धीरेन्द्र वर्मा इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि वर्तमान सूरसागर एक ग्रन्थ नहीं है बल्कि सूरदास की प्रायः समस्त कृतियों का संग्रह है और इसका मूल ढाँचा वास्तव में भागवत के बारह स्कंधों का अत्यंत संक्षिप्त छंदोबद्ध अनुवाद मात्र है^१। वस्तुतः सूरसागर का वर्तमान स्वरूप दो ही ढंग से उपस्थित हो सकता है। सूरसागर की जाँच से यह पता चलता है कि उसके कुछ अंश छंदोबद्ध हैं परन्तु एक बहुत बड़ा भाग पदों के रूप में है। सूरसागर का छंदोबद्ध अंश मूल कथा को लेकर आगे चलता है और कृष्ण कथा के अतिरिक्त अन्य कथाएँ भी इसमें मिलती हैं। सम्भव है कि मूल ग्रंथ भागवत का अनुवाद छंदों के रूप में हुआ हो और इस अत्यन्त संक्षिप्त छंदोबद्ध अनुवाद में संग्रहकर्ता ने तद्विषयक पद उसी जगह प्रसंगानुसार जोड़ दिए हों। अथवा यह भी सम्भव है कि सूरदास ने पहिले दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के ही पद गाये हों और जब ये पद काफ़ी अधिक संख्या में बन चुके तो विठ्ठलदास अथवा अन्य किसी की प्रेरणा से इन पदों को भागवत के एक स्कंध का भाग मानकर शेष स्कंधों की कथाओं की पूर्ति की गई हो। जहाँ जहाँ कथा की लड़ियाँ इसपर भी न मिलीं वहाँ कदाचित् छंदोबद्ध कविता के रूप में कुछ लिखकर शृङ्खला मिला दी गई। दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के अतिरिक्त सारे सूरसागर में जो संक्षेप में कहने

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा—भागवत और सूरदास (हिन्दुस्तानी अप्रैल १९३४)।

की भावना है और कहने के ढंग में कथा-वाचक की शैली और नीरसत है, वह कुछ दूसरे ही कारण की ओर अधिक इंगित करती है ।

जो हो, हम यह सिद्ध कर चुके श्री मद्भागवत का अविकल अनुवाद नहीं है । उसे स्वतंत्र अनुवाद भी नहीं कहा जा सकता । द्वादश स्कंध के १३ अध्यायों में केवल एक ही अध्याय की कथा सूरसागर में दी गई है और वह भी एक ही पद में है^१ । यद्यपि तीन अन्य कथा-प्रसंग स्वतंत्र रूप से जोड़ दिये गए हैं । भागवत के एकादश स्कंध के ३१ अध्यायों में से केवल दो अध्यायों की सामग्री सूरसागर में रक्खी मिलती है । इस प्रकार अन्य स्कंधों की बहुत सी कथाओं में से केवल कुछ ही कथाएँ सूरसागर में उपस्थित हैं । ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक स्कंध में से केवल इतनी सूक्ष्म सामग्री क्यों ली गई और भागवत से अनुवाद योग्य स्थल चुनने में कवि का क्या आधार रहा है ।

सूरसागर के कुछ स्कंधों विशेष कर पहिले और दूसरे में सूरदास ने माया, भक्ति, गुरु महिमा आदि प्रसंग अपनी ओर से जोड़ दिये हैं । इसके अतिरिक्त सूरसागर में मङ्गलाचरण और प्रस्तावना को कोई स्थान नहीं मिला । इन सब बातों से यह पता चलता है कि एक तो सूरसागर को स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में रचने का विचार ही न रहा होगा और दूसरे उसके वर्तमान रूप में हमें सूरदास की समस्त कृतियाँ उपलब्ध हो जाती हैं । यहाँ तक कि इसमें वे पद भी हैं जो सूरदास ने वल्लभाचार्य्य के सम्पर्क में आने से पहिले बनाये थे । ये पद विनय संबंधी हैं । इनमें दास्यभाव की प्रधानता है जिसको वल्लभाचार्य्य की उपासना-पद्धति में विशेष स्थान नहीं मिला है । सूरसागर में अनेक स्थानों पर एक ही कथा की पुनरुक्ति है । इससे जहाँ एक ओर यह प्रगट हो सकता है कि यह भिन्न भिन्न छोटे छोटे मौलिक पद समूह है वहाँ इसका तात्पर्य्य यह भी निकल सकता है कि सारी कथा एक निश्चित ढाँचे पर सूत्र बद्ध नहीं की गई है और एक ही प्रसंगानुसार कई समय पर पद रचना करने से इस

प्रकार के अपने में पूर्ण, मौलिक पदों की सृष्टि हुई जो एक ही कथा को अनेक रूपों में हमारे सामने रखते हैं ।

अंत में हमें यह कहना है कि सूरसागर के मौलिक और महत्वपूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद हैं जो विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और अन्य स्कंधों में बिखरे हुये भक्ति गुरु महिमा आदि विषयों के पद हैं । वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

सुरसागर के प्रतीकार्थ

भागवत में श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है और यों साधारण दृष्टि से देखने पर उसके दार्शनिक पक्ष का पता नहीं चलता परन्तु इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका दार्शनिक पक्ष बहुत पुष्ट है। वास्तव में वेदव्यास ने श्रीकृष्ण के लीला संबंधी श्लोकों में स्थान स्थान पर आध्यात्म पक्ष की ओर संकेत किया है। आचार्य्य और विद्वान भागवत के लीला संबंधी पदों को प्रतीकार्थ में ही लेते रहते हैं।

सुरसागर में कृष्ण के लीला संबंधी पदों में प्रतीकार्थ पर स्पष्टतः बल नहीं दिया गया है परन्तु कृष्ण की लीला का भक्त और भगवान के पारस्परिक संबंध के प्रतीक के रूप में प्रयोग अवश्य किया गया है, अनेक स्थानों में यह व्यंजना प्रगट हो जाती है। इन स्थानों की ओर हम आगे संकेत करेंगे परन्तु यहाँ पर कृष्ण के लीला के प्रतीकार्थ और प्रतीकों पर विचार किया जायगा।

अणुभाष्य में लीला का अर्थ स्पष्ट करते हुये वल्लभाचार्य्य कहते हैं “लीलावस्तु लीला कैवल्यम्”^१ (लीला कैवल्य लीला अर्थात् मोक्ष है)। इसका तात्पर्य्य यह है कि भक्त भगवान की लीला में भाग लेने से मोक्ष को प्राप्त होता है। भगवान के लिये जो लीला मात्र है वह भक्त के लिये मोक्ष का साधन है। लीला स्वयं अपने में पूर्ण है। उसका रंगस्थल यद्यपि

हमारा संसार है परन्तु संसार व सांसारिकता से उसका कोई संबंध नहीं^१ । कदाचित् यही कारण है कि कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज की एतर्लौकिकता दिखाने के लिये वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्गी भक्तों ने ब्रज को संसार से अलग माना और उसे गोलोक की प्रतिच्छाया अथवा गोलोक ही समझा । भागवत की कृष्ण लीला का सीधा-सादा अर्थ यह है कि अनेक भक्त एक भगवान की उपासना करते हैं और आसक्ति की अनेक दशाओं को प्राप्त होते हुये उन्हीं की अनुकम्पा से मुक्ति पाते हैं और गोलोक प्राप्त करते हैं । गोपी और गोप जीवात्मा के प्रतीक हैं । कृष्ण ब्रह्म हैं । वेणु उनकी 'माया' है, पीताम्बर उनकी माया है । ब्रह्म के अनुग्रह को प्राप्त कर लेने के बाद जीवात्मा राधा का प्रतीक हो जाती है और अन्त में वह ब्रह्म का स्वरूप हो जाती है ।

सूरसागर स्कंध १० पद ८३ के अनुसार गोपी-गोप वास्तव में देवता थे, जब कृष्ण अवतार लेने लगे तो उन्होंने उन गोपी गोप देवताओं को ब्रजभूमि में जन्म लेने तथा विहार करने की आज्ञा दी^२ । परन्तु दूसरे ही पद में सूरदास और आगे बढ़कर कहते हैं कि कृष्ण गोपी तथा ग्वाल एक ही हैं । केवल लीला के लिये कृष्ण ने अपने देह से गोपी और ग्वालों की रचना की । कृष्ण का यह कौतुक देखकर देवता और उनकी पत्नियाँ चकित रह गईं^३ । ऊपर के दोनों पदों में विचार-वैभिन्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।

१. लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । ईश्वरत्ववादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या ।

२—यह बानी कहि सूर सुरन को, अब कृष्णा अवतार ।

कल्यो सवनि ब्रज जन्म लेहु संग, हमरे करहु विहार ॥

३—ब्रह्म जिन्हहि यह आयसु दीन्हों ।

तिन तिन संग जन्म लियो ब्रज में सखीसखा करि परगट कीन्हों ।

गोपी ग्वाख कान्ह दुहू नाहीं ये कहूँ नेक न न्यारे ।

कदाचित् पहला पद भागवत के स्कंध १० अध्याय १८ श्लोक ११ से प्रभावित है और दूसरा पद सूरदास का मौलिक मत प्रगट करता है। सूरदास ने स्थान स्थान पर “गोपी पद रज महिमा” गाई है। भृगु के प्रश्न करने पर ब्रह्मा ऋषि से कहते हैं कि गोपियाँ ब्रज बालाएँ नहीं हैं वरन श्रुति हैं। जब ब्रह्म अवतार लेने लगा तो श्रुतियों ने कहा हम गोपी बनकर लीला में भाग लेना चाहती हैं। ब्रह्म ने कहा ‘एवमस्तु’। सुबोधिनी टीका में वल्लभाचार्य ने भी गोपियों को श्रुति माना है (श्रुत्यन्तर-रूपाणाम् गोपिकानां) परन्तु एक दूसरे स्थान पर उन्होंने गोपियों को लक्ष्मी का ही बहुरूप बताया है (समुदायरूपा लक्ष्मी)।

सच तो यह है कि आचार्य और सूरदास दोनों की गोपियाँ किसी एक निश्चित वस्तु की प्रतीक नहीं हैं। परन्तु जिन संदर्भों में उनका प्रयोग किया गया है उनसे उन्हें ब्रह्म की शक्ति समझा जा सकता है जो लीला के लिये बहुरूप हो गई है। इसी शक्ति को वल्लभाचार्य ने श्रुति और लक्ष्मी, और सूरदास ने श्रुति और देवी देवता माना है। भगवान और उनकी शक्ति में कोई भेद नहीं अतः कृष्ण और गोपियाँ अभिन्न हैं। वे ब्रह्म के ही अंग हैं। इसी कारण सूरदास ने उन्हें भी कृष्ण की तरह उपास्य माना है^२।

इसी प्रतीकार्थ की रक्षा के लिए सूरदास ने गोपियों को गौड़ीय वैष्णवों की तरह अलङ्कारों का उदाहरण नहीं बनाया और न नंददास की तरह जड़-तार्किक मूर्तियों की स्थापना की। सूरसागर पढ़ने के बाद

जहाँ जहाँ अवतार धरत हरि ये नहिं नेक बिसारे ।

एकै देह विहार करि राखे गोपी ग्वाळ मुरारि ।

यह सुख देखि सूर के प्रभु को थकित अमर संग नारि । स्कं० १०

पद ८४

१—गोप जाति प्रतिच्छन्ना देवा गोपाल रूपिणः ।

२—सूर की स्वामिनी नारि ब्रज भामिनी सूरसागर । पृ० ३४४ पद २८

गोपियों का एक सामूहिक चित्र हमारे सामने आता है। प्रतीकार्थ को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक था।

सूरदास के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते समय यह बताया गया है कि राधा भगवान की शक्ति, प्रकृति अथवा
 राधा माया की प्रतीक है परन्तु काव्य के भक्ति पद को देखते हुये राधा का दूसरा प्रतीकार्थ भी निकाला जा सकता है। राधा अनुग्रह प्राप्त भक्त का प्रतीक है जो आसक्ति की अनेक दशाओं को प्राप्त होता हुआ परम विरहासक्त हो जाता है। उस समय वह इन्द्रियों के विषयों के ऊपर उठ जाता है और उसका अस्तित्व केवल 'विरह की पीर' मात्र रह जाता है इसीलिये सूरदास ने कहा है:—

सोरह सहस पीर तन एकै
 राधा जिव सब देह ।

सूरसागर स्कं० १० पद २६

एक प्रकार से यही बात संत और सूफी कवियों ने भी कही थी। सूरदास ने जिसे राधा के प्रतीक से स्पष्ट किया है उसी भाव को स्पष्ट करने के लिये जायसी ने नागमती की कल्पना की थी और सन्त कवियों ने स्वयं अपने को राम की बहुरिया बनाकर विरह की उच्चतम अवस्था प्राप्त करने की चेष्टा की थी। वैष्णव कृष्ण भक्त का चर्मलक्ष्य यह था कि वह कृष्ण की अन्यतम गोपी बन जाय। भागवत में हम इस अन्यतम गोपी का परिचय पाते हैं। वहाँ उसके प्रतीकार्थ स्पष्ट हैं। जयदेव ने भी अन्यतम गोपी का वर्णन किया है जो विशेष रूप से कृष्ण की कृपापात्री है परन्तु भक्त की सारी अवस्थाओं की व्यंजना तब भी नहीं हो सकी थी। सूरदास ने राधा को इस अन्यतम गोपी का स्थान दिया और उसी में भक्ति की पूर्णता की कल्पना की। इस राधा की देह में सोलह हजार देहों की पीर थी तभी उसने कृष्ण की प्राप्ति की। भक्त भी विरहासक्ति की इसी उच्च दशा को प्राप्त करना चाहता था।

तीनों देव तहां मिलि आयो ।
 तिन सों रिस यह वचन सुनायो ॥
 मैं तो एक पुरुष का ध्यायो ।
 और एकहिं सों मैं चित लायो ॥
 अपने आपन को कहो कारण ।
 तुमहौ सकल जगत निस्तारण ॥
 कह्यो जो तुम एक पुरुष जो ध्यायो ।
 ताका दर्शन काहू पायो ॥
 ताकी शक्ति पाइ हम करें ।
 प्रतिपालै बहुरो संहरे ॥
 हम तीनो हैं जग करतार ।
 नाम लेहु हमसो वरसार ॥

इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि सृ का एक पुरुष ब्रह्मा विष्णु महेश से ऊँचा है । इसी स्कंध के चौथे पद में दक्ष प्रजापति के यज्ञ की कथा है जिसमें यज्ञ पुरुष के दर्शन होते हैं । यह यज्ञ पुरुष त्रिदेवों से स्वतंत्र सत्ता रखता है और इनसे बड़ा है । वह कहता है—

विष्णुरुद्र विधि एकहि रूप ।
 इनहिं जान मत ब्रह्म स्वरूप ॥

और यह वास्तव में मेरे ही रूप है

विष्णु विधि रुद्र ममरूप ये तीनिहुँ दक्षसों वचन यह कहि सुनायो
स्कं० ४ पद ५

इसी प्रकार कृष्ण नारायण और हरि से भी बड़े हैं । कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर नारायण ललचाने लगते^१ हैं और रमाकंत विष्णु रास करते हुये कृष्ण का ध्यान करते हैं^२ । इसी परब्रह्मरूप कृष्ण को कभी

१. नारायण धुनि सुनि ललचाने स्याम अधर सुनि वैन । पद २४

२. धृंदावन हरिरास उपायो, रमाकंत जासु को ध्यायो । पद ६०

जगदीश के नाम से कभी यदुराई के नाम से पुकारते हैं। बाणासुर प्रसंग में जगदीश शिव से कहते हैं जो तुम्हारी सेवा करे वह मेरा सेवक है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव मेरे ही रूप हैं^१। सूरदास का एक प्रसिद्ध लोक-प्रिय पद है “ हरि सो ठाकुर और जन को ” इस पद में उन्होंने पहिले अपने उपास्यदेव का स्थान हरि को दिया है और उन्हें विष्णु ब्रह्मा और शिव से स्वतंत्र माना है। ब्रह्मा का स्वभाव राजस् है, और शिव का तामस् विष्णु इन दोनों से अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनका स्वभाव सात्विक है। इन्हीं विष्णु ने ब्राह्मण भृगु की लात सीने पर धारण की थी। किन्तु अन्तिम पक्षि तक पहुँचते-पहुँचते सूरदास हरि (विष्णु) का तादात्म्य श्रीकृष्ण ने स्थापित कर डालते हैं^२। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर ने कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म और त्रिदेवों से बड़ा माना है। स्थान-स्थान पर यह लिख दिया है कि कृष्ण, विष्णु हरि में वास्तव में कोई विशेष अन्तर नहीं। सच बात तो यह है कि मध्य युग के अन्य वैष्णव कवियों की तरह सूरदास भी कैथोलिक थे और उनकी उपासना पद्धति में सभी वैष्णव उपास्य-देवों को स्थान मिला था। यद्यपि उन्होंने उन्हें स्थान देते समय श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता बना रखी और उन्हें एक पुरुष यज्ञ पुरुष और परब्रह्म का नाम दिया।

अनेक देवताओं और अवतारों में सामंजस्य बैठाने की प्रवृत्ति उस युग की विशेषता है। रामोपासक तुलसी ने एक सम्पूर्ण कृष्ण गीतावली ही लिख डाली है और हरि हर वाले पद^३ में विष्णु और शिव की एक ही साथ वंदना की है। सूरदास ने भी यदि ऐसा किया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वास्तव में तुलसीदास राम और कृष्ण में

१. करै जो सेव तुम्हारी सो मम सेव है विष्णु शिव ब्रह्म ममरूप सारी—पृ० १३६३ पद ६०

२. भजो सब कोई सूर प्रभु यदुराई । पद ३७

३. देखो विनय पत्रिका

में यह उपासना-पद्धति एक प्रकार से सगुण-सहजवाद कही जा सकती है। भक्ति ही भक्त की साधना थी। रूप-लीला, भगवत गुनगान और पूजार्चना के नैमित्तिक कर्मों के करने के अतिरिक्त भक्त को किसी कठिन पद्धति की शरण नहीं लेनी पड़ती थी। यदि इस उपासना पद्धति से किसी का विरोध था तो वह योग (हठयोग आदि) की कठिन पद्धति से। सूरदास, नंददास तथा अन्य वैष्णव कवियों के भ्रमरगीतों के अध्ययन करने से सगुण भक्तों की योग के प्रति विरोध भावना का पता चलता है। अपनी उपासना, पद्धति के कारण ही सगुण भक्त एक ओर अव्यक्त के उपासक सतों और दूसरी ओर हठयोगियों को उपालम्भ दिया करते थे।

उपासना की इस सहज पद्धति में कामी, क्रोधी, मोही, लोभी आदि सभी प्रकार के मनुष्यों को स्थान मिल जाता है सूरदास ने कहा है—

काम क्रोध में नेह सुहृदता काहू विधि कहै कोई ।
धरै ध्यान हरि को जे दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई ॥

सूर० सा० स्कंध १० पद ६४

यही कारण था कि वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग की अपील अन्य सगुण सम्प्रदायों से अधिक हुई। रामोपासना में साधारण श्रेणी से उच्च श्रेणी का मनुष्य दीक्षित हो सकता था। मर्यादा उसका आवश्यक अंग था। तुलसी के राम धर्म में दीक्षित हो जाने पर भक्त दास्य भाव से राम की उपासना करता था। उसके लिये यह आवश्यक था कि वह अपने को अधिक से अधिक शुद्ध करके अपने स्वामी के योग्य बनाये। पुष्टिमार्ग का भक्त कृष्ण का सखा था। अनेक दोषों दुर्बलताओं और अवगुणों के रहते हुये भी उसे भगवान का अनुग्रह प्राप्त हो सकता था। राधा-कृष्ण और गोपियों के संबंध से वह भगवान की प्रेम लीला का वर्णन करके अपनी अतृप्त वासनाओं को भी प्रकाशित होने का मार्ग दे सकता था। वास्तव में वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग और सूरसागर द्वारा स्थापित राधा-कृष्ण लीला युग की चारित्रिक दुर्बलता के कारण ही अधिक प्रिय हुई। परन्तु

साथ ही इस उपासना-पद्धति ने अपने युग के चरित्र को ईश्वर की ओर विकसित करके थोड़ी मात्रा में परिष्कृत भी किया और उसकी रसिकता को परिमार्जित किया ।

सूरदास की भक्ति-पद्धति में स्त्री-पुरुष दोनों को बराबर स्थान मिला^१ । भक्ति द्वारा ईश्वर की प्राप्ति के सिद्धान्त को वल्लभाचार्य ने अदभुत रीति से विकसित किया था । समस्त सूरसागर इन्हीं के सिद्धान्तों की प्रतिध्वनि है । वास्तव में भक्ति का स्थान भगवान से भी बड़ा हो गया था ।

प्रीति के वश्य में हैं मुरारि ।

प्रीति के वश्य नटवर वेप धार्यो प्रीति वश करज गिरिराजधारी ॥

पृ० १६१ पद २१

भगवान का अनुग्रह उतना ही अदभुत है जितना भगवान, उसकी महिमा भी नहीं जानी जाती^२ । वास्तव में पुष्टिमार्ग की भक्ति की कल्पना रहस्यात्मक है^३ ।

सूरदास ने भक्ति और योग में जो संबंध स्थापित किया है उसका वर्णन भ्रमरगीत के अन्तर्गत किया जायगा । यहाँ केवल यही कह देना चाहते हैं कि सगुण उपासकों में निर्गुणवाद और योग मार्ग का दार्शनिक विरोध उपस्थित करने वाले सर्व प्रथम भक्त सूरदास हैं । उन्होंने अव्यक्त को समझा है परन्तु वह व्यक्त सगुण ब्रह्म के लीलामय कृष्ण रूप पर आस्था और भक्ति रखते हैं । वास्तव में उनका सिद्धान्त कुछ इस प्रकार है । जब “ अवगत गति कछु समझि न परै^४ ” और “ या निर्गुण सिन्धुहि कौन सकै अवगाहि^५ ” तो भक्त कहने लगता है—

१. भज जेहि भाव जो हरि मिलै ताहि ल्यो भेद भेदा नहीं पुरुष्य नारि
सूरसागर स्कं० १० पद ६५

२. सूरदास प्रेम कथा सब ही ते न्यारी स्कं० १० पद २६

३. निगम ते अगम हरि कृपा न्यारी पृ० १६१ पद ७५०

४. सूरसागर स्कं० ६ पद १७१

५. ,, वियोगी हरि पृ० ३२६ पद ४२१

“जिनि बोरहि निर्गुण समुद्र में” और “कौन काज या निर्गुण सो चिर जीवहु कान्ह हमारे” ।

सूरदास के मत में भक्ति का स्थान योग-वैराग्य से ऊँचा है, वह इन दोनों से स्वतंत्र है। ज्ञान और वैराग्य भक्ति के बिना भगवान तक नहीं पहुँच सकते परन्तु भक्ति ज्ञान और वैराग्य के बिना भी भगवान तक पहुँचने का पूर्ण साधना है। सूरदास की मुक्ति की कल्पना शुद्धाद्वैत की मुक्ति की कल्पना है। वे सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते। उन्हें सान्निध्य मुक्ति चाहिये जिसका अर्थ है कि मुक्ति के बाद भक्त भगवान के गोलोक में निवास करे, उनकी लीला में भाग ले।

वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों के अध्ययन में यह लिखा गया था कि उन्होंने केवल काल का वर्णन किया है दिक्
दिक् और काल का नहीं। सूरदास के संबंध में भी यही बात ठीक है। उन्होंने केवल काल ही का वर्णन किया है। श्रीमद्-भागवत में काल को सर्प के रूपक द्वारा उपस्थित किया गया है^१। वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी टीका में काल का वर्णन इस प्रकार किया है।

सात्विकेषु तु कल्पेषु, यः शेते सलिले हरिः । बासुदेवः स विज्ञेयस्त-
स्यांशोऽनन्त उच्यते । कालात्मा स च विज्ञेयो भूभारहरणे प्रभुः ।
१०—१—२४

भक्त के दृष्टिकोण से काल का बहुत बड़ा महत्व है। मनुष्य-जन्म के बिना भक्ति हो ही नहीं सकती। परन्तु काल मानव-जीवन को ग्रास बना लेता है। संसार में काल से भयानक कोई वस्तु नहीं और केवल भगवान के अनुग्रह से उससे छुटकारा मिल सकता है। इसी लिये भक्त सूरदास ने बार-बार भगवान से प्रार्थना की है कि वह काल-व्याल के दंशन से उन्हें बचाये—

सूर काल बलि व्याल असत है श्रीपति सरन परत क्यों न फरहरि२ ।

१. भागवत १०—३—२६

२. सूरसागर १—पद १३४

सूरदास भगवन्त भजन विनु काल व्याल लै आप डसायो^१ ।

इहि कलिकाल व्याल मुख ग्रासित सूर शरण उवरे^२ ।

व्याल के अतिरिक्त सूरदास ने काल की उपमा अग्नि और नदी की तीक्ष्ण धार से भी दी है । काल के प्रवाह में मानव-जीवन तिनके के समान बह जाता है और दावानल में पड़े हुये बन की तरह जल उठता है । वास्तव में इन दोनों उपमाओं से काल की भयंकरता बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है । भक्त काल के प्रहारों से बचने के लिये भगवान के शरण के सिवाय और सहारा नहीं पाता क्योंकि काल स्वयं माया का रूप है और वह शेषनाग के रूप में भगवान की शैय्या है । भगवान ही अनुग्रह करे तो काल के दंशन से भक्त बच सकता है^{३-४} । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास काल की कल्पना केवल दार्शनिक उपमा (काल-शेषनाग) तक ही करके नहीं रह जाते परन्तु वे अन्य और भी सार्थक उपमाओं द्वारा काल की भयंकरता दिखलाते हैं ।

वल्लभाचार्य ने दिक् की अधिक विवेचना नहीं की है । सूरदास ने भी दिक् के संबंध में कुछ नहीं लिखा है । कदाचित् उनकी माया की कल्पना इतनी विशाल है कि उसमें दिक् को स्थान ही नहीं मिलता ।

सूरदास के मत में संसार की उत्पत्ति माया के कारण हुई है । माया त्रिगुणात्मक है । सत्, रज, तम उसके तीन गुण हैं ।

सृष्टि उनसे पहिले महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है और फिर महत् तत्त्व से अहंकार का जन्म होता है । एक दूसरे स्थान पर सूरदास लिखते हैं कि सृष्टि रहट की तरह है, वह बार-

१. सूरसागर १—पद २०६

२. ,, १—१८

३. काल नदी की धार

४. काल अग्नि सब ही जग जारत सूरसागर स्कं० १ पद १६३

बार उत्पत्ति और विनाश को प्राप्त होती है । सृष्टि की प्रलय चार प्रकार से होती है ।

राजा प्रलय चतुर्विधि होई ।
आवत जात चहुँ में लोई ॥
युग परलय तो तुम सों कही ।
तीन और कहिवे को रही ॥
चतुर्युगी बीतै इकहत्तर ।
करै राज तब लागि मन्वन्तर ॥
चौदह मनु ब्रह्मा दिन मांहीं ।
बीतत तासों कल्प कहांहीं ॥
रात होइ तब परलय होई ।
निशि मय्यादा दिन सम होई ॥
प्रात भये जब ब्रह्मा जागै ।
बहुरो सृष्टि करन को लागै ॥
दिन सौ तीन साठ जब जाँही ।
सो ब्रह्मा को बरस कहाँही ॥
वर्ष पचास परारध गये ।
पलय तीसरी या विधि लये ॥
बहुरो ब्रह्मा सृष्टि उपावै ।
जब लौ परारध दूजो आवै ॥
शत संवत् भये ब्रह्मा मरै ।
महा प्रलय नित प्रभुजू करै ॥
माया माहिं नित्य ले पावै ।
माया हरि पद माहिं समावै ॥

(८४)

हरि को रूप कह्यो नहिं जाइ ।
अलख अखण्ड सदा इक भाइ ॥
बहुरि जब हरि की इच्छा होय ।
देखे माया के दिसि जोय ॥
माया सब तब ही उपजावै ।
ब्रह्मा सो पुनि सृष्टि उपावै ॥

सूरसागर स्कं०—पृ० ६०० पद ६४

सूर के चरित्र

सूरदास के कृष्ण लीला-पुरुष हैं। सूरसागर की समस्त लीलाएँ
 उन्हीं से संबंधित हैं। वही इन लीलाओं के केन्द्र
 कृष्ण हैं। किन्तु वे जैसे पूर्ण हैं, उनकी उनमें से किसी से
 भी लाग नहीं। वे एक लीला से निकल कर दूसरी
 लीला में चले जाते हैं। पुरानी लीला की केवल एक क्षीण स्मृति मात्र
 उनके मन में रहती है परन्तु इसके साथ ही उनकी प्रत्येक लीला पूर्ण
 है। अतः उनके चरित्र का अध्ययन करने के लिए हमें यह देखना होगा
 कि प्रत्येक लीला में उनका चरित्र किस प्रकार विकसित हुआ है।

बाल-लीला का अध्ययन यशोदा के चरित्र की दृष्टि से महत्व पूर्ण है
 परन्तु उसमें कृष्ण का चरित्र प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। उनका बाल
 चरित्र एक साधारण बालक का बाल चरित्र है यद्यपि अनेक प्रसंगों
 द्वारा सूरदास यह बतलाना नहीं भूलते कि यह चरित्र भी एक अलौकिक
 अतिप्राकृत सत्ता का चरित्र है। इस प्रकार के प्रसंगों में कोई विशेषता
 भी नहीं है क्योंकि ये प्रसंग भागवत में भी हैं। सूरसागर के इन्हीं प्रसंगों
 में श्रीकृष्ण के शौर्य की व्यंजना हुई है। भागवत में इन प्रसंगों के
 अतिरिक्त समस्त दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में कृष्ण का शौर्यपूर्ण और
 ऐश्वर्यशाली चरित्र विकसित हुआ है परन्तु सूरसागर के दशम स्कंध का
 उत्तरार्द्ध अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया है और इस प्रकार जिस शौर्य की
 व्यंजना बाल लीला में हुई है उसका विकास नहीं हो पाया है। कृष्ण
 का चरित्र हमारे सामने स्पष्ट रूप से उनके प्रथम माखन चोरी के समय
 से आरम्भ होता है। वे अत्यन्त चतुर, मुखर एवं कौतूहल-प्रिय बालक

के रूप में मिलते हैं। साधारण बालकों के सदृश चोरी करके मुकर जाते हैं। अत्यन्त चतुराई से बातें भी बनाने लगते हैं। तत्पश्चात् चकई भौंरा खेलते कृष्ण के दर्शन होते हैं। यहाँ भी कृष्ण सामान्य बालक हैं। वास्तव में कृष्ण के चरित्र का सामान्य होना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। सूरदास का ध्येय कृष्ण की लीला का वर्णन है। वे कृष्ण के रूप-सौन्दर्य के वर्णन में ही अधिक लिप्त रहते हैं। इन दोनों कारण से कृष्ण के चरित्र में अनेक दिशाएँ नहीं मिलती।

कृष्ण अभी बालक ही हैं कि राधिका से उनका परिचय होता है। इसी समय से सूर उन्हें चतुर नायक की तरह चित्रित करने लगे हैं।

सूरसागर के एक बड़े भाग में नायक कृष्ण का चित्रण हुआ है। नायक के रूप में उनका चरित्र इतना पूर्ण है कि उनसे अधिक चतुर नायक की कल्पना नहीं की जा सकती। रास, जलक्रीड़ा, मान आदि संयोग वियोग की सभी अवस्थाओं में वह पूर्ण नायक है।

इसके पश्चात् अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं और एक प्रकार से सूरदास के सामने से हट जाते हैं। उसके बाद ब्रज में गोपियों, ग्वालों एवं नन्द-यशोदा के विरह का विस्तृत वर्णन हुआ है। इसके बाद उद्धव के मथुरा-गमन तक कृष्ण हमारे सामने नहीं आते। परन्तु ब्रज की सारी विरह वेदना उन्हीं को लक्ष्य करके उमड़ती है और भ्रमर गीत के प्रसंग में वे अपरोक्षरूप से विद्यमान हैं। विरहाकुल गोपियों ने उनके हास-विलासमय युवावस्था के चंचल मनोमोहक चरित्र का स्मरण किया है। उनके तारुण्य की प्रेम-केलि भी उनके सामने आती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के पूर्व भाग को छोड़कर सारे स्कंध में कृष्ण का चंचल कैशोर अथवा विलास-पूर्ण तारुण्य व्याप्त है। उद्धव के प्रसंग में कृष्ण के योगिराज रूप का निर्देश होता है परन्तु वह कृष्ण के चरित्र पर कोई प्रभाव डालता दृष्टिगत नहीं होता।

दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में कृष्ण अनेक पात्रों के सम्पर्क में आते हैं लेकिन कथा का अधिक विकास न होने के कारण उनका शक्तिशाली

और शौर्य पूर्ण चरित्र विकसित होने नहीं पाता। अंत में रुक्मिणी के साथ ब्रज में लौटते हैं। उनके चरित्र के संबंध में एक नई बात मालूम होती है। वे अब भी उसी प्रकार प्रेमी तरुण हैं किन्तु उनमें गौरव के कारण गरिमा आ गई है। अब वे चंचल तरुण न रहे। उनका व्यक्तित्व महाराज का व्यक्तित्व बन गया है। इसके बाद हम उनके चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं पाते।

समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर कृष्ण का चरित्र हमारे सामने निम्नांकित रूपों में आता है।

- १ अत्यन्त मुखर बालक के रूप में।
- २ चंचल किशोर के रूप में।
- ३ किशोर प्रेमी के रूप में।
- ४ क्रीड़ा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।
- ५ तरुण नायक के रूप में।

६ अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो अनेक आश्चर्यमय लीलाएँ करती हैं; जो भक्तों की रक्षा करती हैं।

- ७ गौरव गम्भीर महाराज के रूप में।

यद्यपि कृष्ण के ज्ञानी एवं राजनीतिज्ञ रूप का भी निर्देश हुआ है परन्तु कृष्ण के चरित्र के ये अंग भागवत और महाभारत में ही मुख्य हैं। सूरदास को वह केवल लीलामय शिशु, चंचल किशोर प्रेमी के रूप में ही अधिक प्रिय हैं।

संक्षेप में सूरसागर में अंकित कृष्ण के चरित्र के दो भाग किये जा सकते हैं। (१) कृष्ण असामान्य और अलौकिक हैं। (२) वे सामान्य और चिरपरिचित हैं एवं उनका चरित्र मानवीय है। इसमें पिछले प्रकार के चरित्र में सूरदास ने कोई विशेषता उपस्थित नहीं की। उन्होंने काव्य और पुराणों के रूढ़ चरित्र को ही प्रकाशित किया। दूसरे प्रकार का चरित्र-चित्रण सर्वाङ्ग मौलिक है। सूर ने एक ऐसे चरित्र की कल्पना की

जो सभी दिशाओं में साधारण मनुष्य के समतल में चलता है। सूर कृष्ण के ऐश्वर्य को सहन ही नहीं कर पाते। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र से ब्रज आने पर कृष्ण को अपने महाराज के सिंहासन से उतर कर राधा के पास सामान्य प्रेमी के रूप में जाना पड़ा, उसी प्रकार अलौकिक कृष्ण चरित्र सूरदास के लिए एक सामान्य मनुष्य का सामान्य चरित्र बन गया था। इस प्रकार के दो चरित्र सूरदास ने अलग अलग प्रगट नहीं किये। उन्होंने सामान्य से असामान्य का इतना सुन्दर ग्रन्थि बंधन किया है कि उसमें भक्ति और काव्य के विकास के लिए एक साथ ही स्थान मिल सका है। परवर्ती कवियों ने कृष्ण के सामान्य रूप को ग्रहण कर लिया किन्तु असामान्य की व्यंजना भी नहीं कर सके। इसी कारण उनके काव्य में कुत्सित शृङ्गार और रसिकता को स्थान मिल सका है।

सूरदास की राधा न चंडीदास की राधा की तरह परकीया है, न विद्यापति की राधा की तरह प्रेयसी है। वह न सूर की राधा साधारण गोपी है, न असाधारण गोपी। वह कृष्ण की पत्नी है। नायिका भेद की परिभाषा में हम उन्हें स्वकीय कहेंगे।

राधा और कृष्ण से जिस आध्यात्मिक तत्त्व की व्यंजना सूरदास ने की है उसके विषय में हम सूरसागर के दार्शनिक सिद्धान्त वाले अध्याय में विचार कर चुके हैं। यहाँ पर केवल राधा-कृष्ण के उस ऐहिक संबंध के विषय में लिखा जायगा जो सूरसागर में चित्रित किया गया है।

एक दिन कृष्ण चकई भौरा खेलने चले। वहाँ पहिली वार उन्हें राधिका के दर्शन हुए^१। राधा को देखते ही कृष्ण मुग्ध हो गए। यह

१. गये श्याम रवि तनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी।
 औचकि ही देखी तहाँ राधा नयन विशाल भान्न दिये रोरी।
 नील वसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुचिर रुक्मोरी।

किशोर-किशोरी का मिलन था। इसमें आसक्ति की मात्रा अधिक नहीं, केवल कैशोर की चंचलता और उत्सुकता है जो तरुण वय की लज्जा को बहुत पीछे छोड़ आती है। श्याम राधा से परिचय पूछते हैं^१। राधिका भी उतनी ही निर्भीक है उसमें यौवन-जन्य लज्जा का अभाव है। एक मुखर बालिका के समान वह कृष्ण के प्रश्न का उत्तर देती है— हम तुम्हारे ब्रज क्यों आते, अपने यहाँ खेलते रहते हैं। हाँ! यह अवश्य सुनते हैं कि नंद का डोटा दही माखन की चोरी करता रहता है। सूरदास के कृष्ण नागर (चतुर) हैं। वे भी उत्तर देने में चूकते नहीं— हम तुम्हारा क्या चुरा लेंगे। चलो, जोड़ी-जोड़ी मिलकर खेलने चलें। इस समय दोनों के मन में जो भाव उदय होता है उसे प्रेम न कह कर सूरदास ने स्नेह का नाम दिया है। कृष्ण राधिका से कहते हैं—हमारे ब्रज गाँव में नंद के घर खेलने आना, द्वार पर आकर मुझे पुकार लेना। तुम्हें वृषभानु बाबा की सौगन्ध। सुवह सांभ एक फेरा अवश्य करना। देखो तुम सूधी हो इसी से तुम्हारे साथ खेलता हूँ^२। इस पद के अन्त में

संग लरिकिनी चली इत आवति दिन थोरी अति छविजन गोरी ।
सूर श्याम देखत ही रीकं नैन नैन मिलि परी डगौरी ।

सूरसागर स्कं० १०—पद ६२

१. बृम्हत श्याम कौन तू गोरी ।

कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहुँ ब्रज खोरी ।
काहे को हम ब्रज तन आवति खेजति रहति आपनी पौरी ।
सुनति रहति श्रवणन नंद डोटा करत रहत माखन दधि चोरी ।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेजनि चकौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रमिक शिरोमणि बातन भुरइ राधिका भोरी ।

सूरसागर स्कं० १०—पद ६३

२. प्रथम स्नेह दुहुन मन जानी ।

सैन सैन कीनी सब बातें गुप्त प्रीति शिशुता प्रगटानी ॥

सूरदास ने राधा-कृष्ण के संबंध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है। राधा और कृष्ण बालक बालिका नहीं हैं। वे नागर नागरी हैं। वस्तुतः कुमार-वय के कृष्ण और कुमारी राधिका को इस प्रकार नागर नागरी कहने से और उनके व्यवहार को इसी के अनुसार बनाने से लीला में अलौकिकता का आविर्भाव हो जाता है। सूरदास यह स्पष्ट कहते हुये जान पड़ते हैं—यह अलौकिक की लीला है। यह मानवीय नहीं।

इसके बाद सैन चलने लगते हैं। राधा सकुचने लगती हैं। श्याम के वचन सुनकर 'राधा कुँवरि' लजा भी जाती है। अब दोनों के हृदय में प्रथमवार प्रीति का जन्म होता है। इसको सूरदास ने बहुत कवित्व पूर्ण ढंग से चित्रित किया है^१। सूरदास ने राधा और कृष्ण के मानसिक और लौकिक व्यवहारों के भेद को बड़ी सतर्कता से अंकित किया है। दोनों अपने मन में प्रेम छिपाये हुये हैं। बाहर से प्रयत्न करते हैं कि कोई इस बात को जान न सके। राधा कहती है—इनके घर कौन जायगा। मैं तो घर जाती हूँ। यमुना आये देर हुई। मैया खीभती होगी। धीरे-धीरे राधा-कृष्ण का प्रेम अधिक प्रगाढ़ होता जाता है, विरह की उत्पत्ति

खेजन कबहुँ हमारे आवहु नंद सदन ब्रज गाँव ।
द्वारे आइ टेरि मांहि लीजा कान्ह है मेरे नाऊँ ॥
जो कहिरा घर दूरि तुम्हारो बोलत सुनिए टेर ।
तुम्हहिँ सौँह वृषभानु बवा की प्रात साँफ एक फेर ॥
सूधी निपट देखियत तुमकौँ ताते करियत साथ ।
सूरश्याम नागर उत नागरि राधा दोउ मित्रि गाथ ॥

सूरसागर स्क० १० — पद ६४

- १ कनक वदन सुदार सुन्दरि सकुच मुख मुसकाइ ।
श्याम प्यारी नैन राचै अति विशाल चलाइ ॥
गुप्त प्रीति जु प्रगट कीन्धो हृदय दुहुन छिपाइ ।
सूर प्रभु के वचन सुनि सुनि रही कुँवरि लजाइ ॥

होने लगती है। राधा का मन कृष्ण को घेर कर सदैव उनके चारों ओर घूमना चाहता है, उसे घर बिलकुल नहीं सुहाता है ऐसा जान पड़ता है मानो कृष्ण ने उसपर मोहिनी डाल रखी है। वह कभी हँसती है कभी सकुचकर लजा जाती है। माता पिता से उसे डर लगने लगता है^१। उधर कृष्ण भी राधिका से मिलने को व्याकुल होते हैं। माँ से दोहनी माँगते हैं—कहते हैं मुझे गैया दुहना है। दोहनी लेकर वे 'घरिक' में आते हैं। उधर से राधिका भी आती है। संकोच के मारे वह कृष्ण के सामने आ नहीं पाती। इतने में नंद आ जाते हैं। वे राधिका को इस तरह खड़ी देखकर कहते हैं—जाओ, तुम दोनों खेलो। देख, वृषभानु की बेटी, इस कान्ह को खिला ला। देखती रहियो। कोई गाय इसे मार न दें^२। नंद चले गये। राधिका को अच्छा अवसर मिला। उसने कृष्ण को पकड़ लिया और कहा—सुनी तुमने नंद बच्चा की बात। अब जो मुझे छोड़कर कहीं गये तो पकड़ लाऊँगी। भला हुआ कि तुम्हें सौंप गये। अब मैं तुम्हें छोड़ूँगी नहीं। श्याम बहुत कहते हैं, अरी राधा मेरी बाँह छोड़, इस तरह बात न बना। सूरदास जानते हैं, यह सब प्रेम की बातें हैं।

इस प्रसंग तक बाल-केलि और प्रेम-लीला का ऐसा मिश्रण कर दिया है कि सूरदास के कौशल पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। वही कृष्ण यशोदा, नंद तथा अन्य परिजनों के लिये बालक हैं परन्तु राधिका के लिए वे

१ सूरसागर स्कं० १० पद ६७

२. नंद गये खरिके हरि लीन्हें ।

देखि तहाँ राधिका ठाढ़ी श्याम बुलाइ लइ तहँ चीन्हें ॥

मइर कियो खेलहु तुम दोऊ दूरि कहँ जनि जैहो ।

× × × ×

सुनु बेटी वृषभानु महरि की कान्हहिं लिए खिलाइ ।

सूरश्याम को देखे रहिहौ मारै जनि कोइ गाइ ॥

वयस्क प्रेमी हैं। लोक-व्यवहार में ऐसी बात नहीं होती। बाल-केलि में यौवन-व्यवहार को चित्रित करके एक बार फिर सूरदास ने कृष्ण-चरित्र की श्रद्धा-किराना की व्यंजना की है। इसके बाद एक दिन जब आकाश पर काली घटाएँ छाई थीं आँधी-पानी को देखकर नंद कृष्ण की चिंता से भयभीत हो उठे। उन्होंने राधा को बुलाकर कहा—जा राधिका, कृष्ण को घर पहुँचा दे।

यहाँ से कृष्ण और राधा के साथ सूरदास रस के नये क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। उनकी प्रतिभा विद्यापति और चंडीदास से होड़ लेने लगती है। सूरदास की विशेषता यह है कि उन्होंने जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास की तरह राधिका को प्रथम से ही वय-प्राप्त, यौवन-प्राप्त नायिका अथवा प्रेयसी के रूप में चित्रित नहीं किया। उन्होंने कुमार-कुमारी के असंकोची मिलन से प्रारम्भ करके स्नेह के अंकुर को अंत में प्रेम के रूप में परिणत किया है। यौवन-समागम के साथ प्रेम भी अपना सच्चा स्वरूप प्रगट करता है। दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने राधा और कृष्ण के क्रमिक विकास को ब्रज की लीला-भूमि और उसकी प्रकृति की वीथिका देकर हमारे सामने उपस्थित किया है। राधा-कृष्ण के प्रेम के विकास में प्रकृति सहायता देती है। बादल धिर आते हैं। वर्षा होने लगती है। मधुवन भयानक हो जाता है। डर कर नंद कृष्ण को राधिका को सौंप देने हैं। तीसरी विशेषता यह है कि राधा-कृष्ण का प्रेम उनके घरेलू और कौटुम्बिक व्यवहारों के बीच में प्रतिष्ठित हुआ है। प्रेम में विभोर होने पर भी दोनों प्रेमी अपना अपना काम-काज

१. गगन गरजि घहराई घटा जुरीकारी ।

पवन ऋक्कोरि चपला चमकि चहुँ ओर सुवन तन चितै नंद डरत मारी ।

कह्यो वृपभानु की कुँवरि सो बोलिकै राधिका कान्ह घर लिपु जारी ॥

करते चले जाते हैं भले ही वे उसमें बार बार भूल करें और पकड़े जायँ। इस प्रकार हम देखते हैं कि अब तक सूरदास ने राधा कृष्ण के चरित्र का विकास अत्यन्त नैसर्गिक ढंग पर किया है। वह मानवीय है यद्यपि उसपर अलौकिकता की छाप है।

परन्तु जिस दिन घटा घिरी और नंद ने राधिका के साथ कृष्ण को बिदा किया उस दिन एक नई घटना घटी। राधिका ने यौवन प्राप्त किया और कृष्ण भी तरुण होगए। दोनों के मन में नए नेह ने जन्म लिया और दोनों एक नये रस से भीग गये^१। इस प्रसंग से आगे सूरदास शृंगार रस के क्षेत्र में पूरी तरह पहुँच गए हैं^२।

इस प्रसंग के बाद भी श्रीकृष्ण राधा का प्रेम चलता रहता है परन्तु अन्य लीलाएँ भी होती रहती हैं। इन लीलाओं में भी कृष्ण राधा को नहीं भूलते और न राधा कृष्ण को। यशोदा राधिका को संवार देती है और कृष्ण को उसके साथ खेलने की आज्ञा देती है यद्यपि वह जानती है कि दोनों प्रेम के रंग में रँगे हैं। राधा कृष्ण की मुरली चुरा लेती है। अनेक बार दोनों मान कर बैठते हैं परन्तु फिर वही माखन की बँटाई और आँखों की लड़ाई। राधा की माँ उसे उलाहना देती है—

काहे को तुम जहँ तहँ डोलति हमको अतिहिँ लजावति ।
अपने कुल की खबरि करौ धौँ सकुच नहीं जिय आवति ॥

१. नयो नेह नयो गेहु नयो रस नवलकुँवरि वृषभानु किशोरी ।
नयो पिताम्बर नई चुनरी नई नई बूंदन भीजति गोरी ।
सूरदास प्रभु नवरस विलसत नवल राधिका यौवन भोरी ।

सूरसागर स्कं १० पद ७४

२. चूमत अंग परसपर जनु जुग चंद करत हितधार ।
रसन हसन भरि चापि चतुर अति करत रंग विस्तार ॥

अथवा—

कुँवरि सों कहति वृषभानु धरनी
नेक नहीं घर रहति तोहि कितनो कहति, रिसनि मुहि दहति बन भई हरनी
लरिकिनी सवनि घर तोसी नहि कोउ निडर, चलती नभ चितै जो तकै धरनी
बड़ी करवर टरी सॉप सो ऊवरी, बात के कहत तोहि लगत जरनी ।
लिखी मेटै कौन, करता करै जौन, सोइ हूँहै होनहारी करनी ।
सुता लई उर लाय तन निरखि पछिताय डरनि गई कुम्हिलाई सूर बरनी ।

इसके अनन्तर अनेक गोपियाँ कृष्ण की प्रेम-लीला में भाग लेने लगती हैं। सूरदास ने गोपियों की प्रेम-लीला का वर्णन विस्तार-पूर्वक किया है। गोपियों के साथ कृष्ण अनेक लीला-प्रसंग चलाते हैं। मुरली की ध्वनि गोपियों को मोह लेती है। वे सबकाम-काज छोड़ कर कृष्ण के पास पहुँचती हैं और उनकी लीला में भाग लेने लगती हैं। इस युवती-मण्डली में राधिका ही प्रधान है। वही कृष्ण की प्रधान नायिका है। सूरदास ने रास-वर्णन इस प्रकार किया है—

रास मंडल मध्य श्याम राधा ।

मनों घन बीच दामिनी कौंधति सुभग एक है रूप द्वै नाहि बाधा ।

नायिका अष्ट अष्टहु दिशा सौहही बनी चहुँ पास गोप कन्या ।

मिले सब संग नहिं लखति कोउ परस्पर बने षष्टदस सहस कृष्ण सैन्या ।

सजे शृङ्गार नवसात जगमग रघ्यो अंग भूषण रैनि बनी तैसी ।

सूर प्रभु नवल गिरिधर नवल राधिका नवल ब्रजसुता मंडली जैसी ।

सूरदास गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम-लीला और रास का वर्णन करते हुये भी दाम्पत्य प्रेम केवल राधा कृष्ण में ही दिखाते हैं। जब कृष्ण रास के वश में होकर राधिका को हृदय से लगा लेते हैं। तो अन्य गोपियाँ उनकी लीला देखकर आनंदित मात्र होती हैं^१। इसके बाद कवि

१. गान करति नागरि रीके पिय लीनो अंकम जाई ।

रस बस हुये लपटाय रहे दोउ सूर सखी वलि जाई ।

ने राधा-कृष्ण के संयोग शृङ्गार का विस्तृत वर्णन किया है। संयोग शृङ्गार का इतना विशद वर्णन किसी कवि ने नहीं किया है। इस शृङ्गार में मान और मिलन के अनेक अवसर आते हैं। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि उनसे राधा-कृष्ण का प्रेम अधिक विकसित और शुद्ध हो जाता है। राधा-कृष्ण का मिलन आदर्श मिलन है उसमें विरह की तनिक भी चिन्ता अथवा आशंका नहीं^१।

सूरदास की राधिका का व्यक्तित्व अत्यन्त निखरा हुआ है। वह चण्डीदास की राधा के समान कृष्ण के मनाने पर एकदम पिघल नहीं जाती। कृष्ण राधा के विरह में आकुल हो जाते हैं भाँति-भाँति से राधा को मनाना चाहते हैं। परन्तु राधा मानती नहीं—

भरि भरि अँखियन नीर लेति पै ढारति नाही अति रिस
कांपति अधर करकि करि भृकुटि तानति ।

अंत में कृष्ण मूर्छित हो जाते हैं^२ परन्तु राधा का मान नहीं टूटता परन्तु इस सारे मान में भी राधा को विश्वास है कि कृष्ण उसके हैं, वह इस विषय में थोड़ी भी शंकित नहीं होती। संयोग की प्रत्येक अवस्था का वर्णन सूरदास ने इस प्रकार किया है कि हम उन्हें प्रेम-मनोविज्ञान का सबसे बड़ा पण्डित कह सकते हैं। उन्होंने प्रेमी-प्रेमिका की मानसिक उथल-पुथल का बड़ा अच्छा चित्रण किया है। जो राधा कृष्ण की मूर्च्छा की बात सुनने पर भी मान नहीं तोड़ती वही जब सुनती है कि कृष्ण द्वार से लौटे जा रहे हैं तो प्रेम से आकुल हो जाती है, उसका मान टूट जाता है किन्तु उसे अपनी आन भी निवाहना है। वह ज़रा ठहरकर अपना

१. चण्डीदास के इस पद से तुलना कीजिये—

एह भये उठे मने एह भय उठे ।

ना जानि कानूर प्रेम तिले जनि छुटे ।

२. नाहिं हठ पर्यो प्राण वल्लभ सो छूटत नहीं छुड़ाये ।

देखो मुरझि पर्यो मनमोहन मनहूँ भुवंगिनि खाये ।

शृङ्गार करने लगती है और सखी के हाथ यह संदेश भेज देती है कि वह पीछे आरही है^१। वास्तव में संयोग शृङ्गार के वर्णन में सूरदास अद्वितीय हैं।

परन्तु राधिका का चरित्र विप्रलम्भ में और अधिक खिल जाता है। अक्रूर कृष्ण को मथुरा लिवा जाते हैं। गोपियों और राधा का कृष्ण से विछोह हो जाता है। उस रात राधा को नींद नहीं पड़ती है।

आजु रैनि नहिं नींद परी।

जागत गनत गगन के तारे रसना रटत गोविंद हरी।
वह चितवनि वह रथ की बैठनि जब अक्रूर की बाँह गही।
चितवति रही ढगी सी ढाढ़ी कहि न सकी कल्लु काम दही।
इतने मन व्याकुल भई सजनी आरज पंथ हुते विडरी।
सूरदास प्रभु जहाँ सिधारे कितिकि दूरि मथुरा नगरी।

भ्रमरगीत के प्रसंग में राधिका का उल्लेख नहीं मिलता। यह नहीं जान पड़ता कि उन गोपियों में जिन्होंने उद्धव को जाते ही घेर लिया राधा भी थीं या नहीं। परन्तु ब्रज से लौटने पर उद्धव कृष्ण से जो कहते हैं उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके आगमन की बात सुनकर राधा द्वार तक अवश्य चली आई थी। परन्तु भ्रमरगीत के प्रसंग में उसने अवश्य भाग नहीं लिया। द्वार पर खड़ी राधा का वर्णन उद्धव ने इस प्रकार किया है—

देखी मैं लोचन चुवत अचेत।

मनहुँ कमल शशि भास ईश को मुक्ता गनि गनि देत।
द्वार खड़ी इक टक मग जोवत ऊरध श्वास न लेत।
मानहुँ मदन मिले चाहति हैं मुञ्चंत मरुत समेत।
श्रवण न सुनत चित्र पुतरी लौं समुभावत जितनेत।
कहुँ कंकन कहुँ गिरि मुद्रिका कहुँ ताटक कहुँ नेत।

१. ताहि कइयो सुख दे चलि हरि को हौं आवतिहौं पाछे।

मनहूँ विरहदव जरत विश्व सम राधा रुचिर निकेत ।
धुज होइ सूखि रही सूरज प्रभु बैधी तुम्हारे हेत १ ।

राधिका ने अपनी तन्मयता में समझा, कृष्ण आगये । परन्तु उनके स्थान पर उद्धव को देखकर उनका हृदय निराशा से भर गया । वे अन्य गोपियों की तरह अपना संदेश भी न दे सकीं । विलास-केलि की मुखर राधिका अब प्रेम में इतनी डूब चुकी थी कि उसका मौन ही स्वयं उसका संदेश बन गया । प्रेम जब इस गम्भीरता तक पहुँच जाता है तब वह आँखों से प्रगट होता है जिह्वा से नहीं । राधिका का कंठ भर आता है—

जब संदेशा कहन सुंदरि गवन मोतन कीन ।
खसि द्रुमावलि चरन अरुभी गिरि धरनि बलहीन ।
कंठ वचन न बोल आवै हृदय परिहसि भीन ।
नैन जल भरि रोइ दीनो असित आपद दीन ।
उठी बहुरि सम्हारि भट ज्यों परम साहस कीन ।

और जब उसने कुछ संदेश भी दिया तो केवल इतना ही—

इतनी बिनती सुनो हमारी ।
बारकहू पतिया लिख दीजै ।

चरन कमल दरसन तव नौका कवणासिंधु जगत जस लीजै ।
सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै ।

वास्तव में भ्रमर गीत के केन्द्र में राधिका प्रतिष्ठित है यद्यपि वह सन्मुख नहीं आती । उसको सामने न लाकर सूरदास ने एक प्रकार से उत्कृष्ट काव्य-कला का प्रदर्शन किया है क्योंकि इससे राधा के विरह की उत्कृष्टता की व्यंजना हो जाती है । गोपियों और राधा के विरह में मूलतः अन्तर है । कृष्ण गोपियों के प्रेमी हैं किन्तु पति नहीं । राधा-कृष्ण

१. इस प्रसंग के अन्य पद—नैननि होइ बदी वर्षा सों । पद ५७ पृ० ७२०

उमगि बले दोउ नैन विशाब्ज—पद ५३ पृ० ७१३

की पत्नी हैं। गोपियाँ कृष्ण को दोष भी देसकती हैं। यद्यपि राधा का हृदय उनके बिना फटा जा रहा है तो भी वे उनको दोष देने की बात मन में भी नहीं लातीं^१। इस प्रेम के मूल में भक्त की अनन्य प्रेम भावना है जो पत्नी की पति के प्रति शुभ कामना के रूप में प्रगट हुई है। राधा अपने को ही दोषी मानकर संतोष कर लेती हैं। अपनी कल्पना के एक ही स्पर्श से सुरदास ने विनोदिनी राधा को अनन्याश्रिता विरह विदग्धा पत्नी बना दिया। राधा का यह रूप भी कृष्ण-साहित्य में नहीं मिलता। इतना विश्वास न चण्डीदास की राधा में है न विद्यापति की, न परवर्ती कवियों की। उन्होंने राधा के पत्नी-रूप पर विचार ही नहीं किया।

इसके बाद राधा के दर्शन दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में होते हैं। भगवान् कृष्ण कुरुक्षेत्र से लौट रहे हैं। उनके साथ उनकी पत्नी रुक्मिणी भी है। राधिका को शुभ सगुन होने लगते हैं। राधा को विश्वास नहीं होता। उनका विरह-दुःख उनके लिए इतना स्वाभाविक हो गया है कि वे कृष्ण के निकट आने पर भी उनकी प्रतीक्षा से अधीर हो जाती हैं एवं मिलन के भी विश्वास नहीं करतीं^२। सब ब्रजवासी अपने अपने शकट सजा कर स्वागत के लिए आगे बढ़ते हैं परन्तु राधा उनके साथ नहीं जाती। वह अपने घाम में ही उनकी प्रतीक्षा करती है। रुक्मिणी कृष्ण से पूछती हैं कि इन युवतियों में राधा कौन है ? राधा युवतियों में खड़ी है^३। लेकिन वह आगे बढ़कर अपने गौरव को कम करना नहीं चाहती। कृष्ण अब

-
१. सखी री हरि को दोष न देहु ।
ताते मन इतनो दुख पावत मेरोइ कपट सनेह ॥
 २. राधा नैन नीर भरि छाई ।
कब धौं मिलै श्याम सुन्दर सखि यद्यपि निकट है आई ॥
 ३. वह देखो युवति शृंद में ठाढ़ी नीज बसन तनुगोरी ।
सुरदास मेरो मन बाकी चितवनि देखि हरयो री ॥

महाराज हैं, उनका ऐश्वर्य बाधा डालता है। तत्पश्चात् कृष्ण अपने गौरव शिखर से नीचे उतरते हैं और यह बाधा दूर हो जाती है—

विरहिनी विकल विलोकि सूर प्रभु धाइ हृदय करलाये ।

कलु मुसुकाइ कह्यो सारथि सुनु रथ के तुरंग लुगाये ।

रुक्मिणी राधा को अपना लेती है एवं उसे अपने साथ ले जाती है। दोनों इस प्रकार बैठी हैं जैसे दो बहनें हों। इतने में कृष्ण आ पहुँचे। सूरदास ने यह नहीं लिखा कि रुक्मिणी उठकर चली गई लेकिन रुक्मिणी अवसर पहचान गई होगी। इस प्रकार एकान्त में राधा माधव की भेंट हुई।

सूरदास ने इस प्रसंग को आगे नहीं बढ़ाया है केवल इतना ही कह दिया है कि कृष्ण ने राधा को ब्रज भेज दिया और वहाँ नित्य राधा-माधव विहार करने लगे। राधा के हृद्गत भावों के प्रति सूरदास ने महाकवियों की भाँति एक बार फिर मौन धारण कर लिया। उन्होंने केवल एक पद में राधा के चरित्र का अंत कर दिया है। वास्तव में यही पद राधा के चरित्र की कुंजी है—

करत कलु नाही आज बने ।

हरि आये हौं रही ठगी सी जैसे चित्त धनी ।

आसन हर्षि हृदय नहिं दीनों कमल कुटी अपनी ।

नेवह्नावरि उर अरघन अंचल जलधारा जो बनी ॥

राधा के चरित्र की विशेषता है—सर्वस्व-समर्पण। संयोग-वियोग के सभी अवसरों पर उसने पूरा विश्वास किया है। हिन्दू पत्नी की तरह उसने अपने पति और प्रेमी के समस्त दोषों को अपने ऊपर ओढ़ लिया है। उसके चरित्र-चित्रण इतना सुंदर हुआ है कि मध्य काल की किसी स्त्री नायिका का चित्र उसके सामने ठहर नहीं सकता। वह हमारे सामने मुखर बालिका के रूप में आती है। उसमें यौवन का विकास होता है और उसके साथ कृष्ण के प्रति उसका बालपन का स्नेह, प्रेम में विकसित हो जाता है। वह हमारे सामने केलि-कौतूहलप्रिय नायिका के दूसरे रूप में

आती है। वह अपने प्रेमी के प्रति इतना विश्वास लेकर आई है कि आश्चर्य होता है। किन्तु जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं तो उसका रूप भी बदल जाता है। इस बार वह प्रगल्भा, विरहविदग्धा एवं प्रोषित पतिका है। अतः में वह कृष्ण की पत्नी के रूप में आती है। संयोग में वह पूर्णतः संयोग का अनुभव करती है और वियोग में पूर्णतः वियोगिनी है। राधा का यह चरित्र सूरदास की सब से उत्कृष्ट मौलिक कल्पना है।

इस चरित्र के संबंध में एक काल दोष भी है। राधा से कृष्ण का मिलन कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद होता है—इस पर कवि ने विचार नहीं किया ऐसा जान पड़ता है। उस समय राधा वही युवती न रही होगी जिसे कृष्ण मथुरा छोड़ आए थे। सूरदास का भक्त हृदय इन छोटे-मोटे काव्य दोषों की ओर नहीं जाता। वे उसे अब भी “नील वसन तनु गोरी” युवती मात्र मानते हैं। उन्होंने राधा के साथ कृष्ण के दाम्पत्य संबंध की व्यंजना करके राधा के चरित्र को पूर्ण कर दिया है। ऐसा करने में उन्होंने किसी काव्य-मर्यादा का उल्लंघन किया, इस पर वे ध्यान न दे सके। शायद इसका कारण यही है कि सूरदास के लिए राधा-कृष्ण की सभी लीलाएँ अलौकिक हैं। उनकी इस युगल जोड़ी पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता।

गोपों का चरित्र किसी विशेष दिशा में प्रस्फुटित नहीं हुआ है। उनमें जो प्रौढ़ हैं वे वात्सल्य भाव से कृष्ण की लीला में भाग लेते हैं, जो युवा अथवा किशोर हैं वे कृष्ण-सखा के रूप में हमारे सामने आते हैं। पिछले एक अध्याय में इस बात को लिख चुके हैं कि वे देवताओं के अवतार हैं और उनका जन्म लीला में भाग लेने के लिए ही हुआ है एवं इसी में सफल है। वे सब कृष्ण के भक्त हैं। तरुण गोपों में यह भक्ति सख्य का प्रच्छन्न रूप धारण कर लेती है।

यशोदा के पुत्र-जन्म का समाचार सुनते ही नंद के द्वार पर गोप-गोपियों की भीड़ लग जाती है। तरुण, वृद्ध और बालक दही लुटा लुटा

र नाचते हैं। वे आरम्भ से ही श्री कृष्ण को कुछ अलौकिक ही समझते और उनकी पूजा-बंदना करते हैं। कृष्ण के अलौकिक चमत्कारों को ख कर उनका भक्ति-भाव और भी गहरा हो जाता है। गोवर्धन प्रसंग में द्र को उनके द्वारा पराजित होते देखकर उनकी भक्ति और भी बढ़ती है। अन्ततः कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं, तो यह भक्ति धीरे-धीरे न्ययतासक्ति का रूप धारण कर लेती है।

कृष्ण के साथ अनेक गोप-ग्वाल खेलते हैं। सुबल और श्री दामा नके बहुत निकट के मित्र हैं। उन्हें श्याम के संग ही में सुख है^१। किन ये किशोर बालक भी जानते हैं कि कृष्ण उनमें से नहीं हैं—

ग्वाल सखा कर जोरि कहति है हमहि श्याम तुम जिनि विसरावौ ।
जहाँ-जहाँ तुम देह धरत हौ तहाँ-तहाँ जनि चरण छुड़ावौ ॥

उनकी इस प्रार्थना पर कृष्ण भी अपने अलौकिक शक्ति की बात उनसे त नहीं रखते। वे कहते हैं —

ब्रज ते तुमहि कहीं नहिं टारौ इहै पाइ मैं हूँ ब्रज आवत ।
यह सुख नाहिं भुवन चतुर्दश यही ब्रज यह अवतार बतावत ॥

ष्ण का वियोग होने पर ग्वाल-बाल सखा भी अधीर हो जाते हैं।

सूरदास ने गोपियों का चरित्र एक अत्यन्त विशाल चित्रपट पर खींचा है। इस चित्रपट की वीथिका ब्रजभूमि ने बनाई गोपियों हैं। सूर का सारा काव्य आदि से अंत तक अनेक गोपियों को साथ लेकर चलता है। उनकी संख्या हीं-कहीं सोलह हज़ार कही गई है। उनके अनेक चित्र हमारे सामने पस्थित होते हैं। उसका कारण यह है कि वे सब अवस्थाओं में कृष्ण की लीला का साथ देती हैं। कृष्ण का जन्म होने पर गोपियाँ अनेक प्रकार

१. कन्हैया हेरि दे सुभग सांवेरे गात की मैं शोभा कहत उजाऊँ ।
मोर पंख शिर मुकुट की मुख मटकनि की बलि जाऊँ ॥

का मंगलाचार करती हैं। उस समय उनका हृदय माता का हृदय बन जाता है। सूरदास कहीं-कहीं यह भी इंगित कर देते हैं कि उन्हें कृष्ण की अलौकिकता का ज्ञान है। धीरे-धीरे कृष्ण बालक होते हैं। गोपियों कृष्ण को इस छोटी अवस्था से ही प्रेम करने लगती हैं। यह प्रेम-व्यवहार स्वाभाविक न भी हो, किन्तु सूरदास इसका उल्लेख बार बार करते चलते हैं। इस प्रेम के मूल में यौवन-भाव है। तदनन्तर जब कृष्ण कैशोर प्राप्त करते हैं तब यह भाव अधिक प्रस्फुटित हो जाता है। तत्पश्चात् गोपियों का चित्रण विशेषरूप से हुआ है। सारे संयोग शृङ्गार में राधा के साथ-साथ एवं उससे अलग भी गोपियों और कृष्ण का प्रेम-संबंध चित्रित किया गया है। गोपियों और राधा का संबंध द्विचित्र है। वे उनकी सह प्रेमी हैं परन्तु उनमें प्रतिपक्षिता कहीं भी नहीं है। वे राधा-माधव की लीला को भी तटस्थ रूप से नहीं देख सकतीं। अनेक रूपों से उनके प्रेम-संबंध को दृढ़ करने में सहायक होती हैं। उनका चित्रण अत्यन्त सरल, अत्यन्त मुखर तथा परस्पर-कपट-विहीन नायिकाओं के रूप में हुआ है।

सूरदास की नायिकायें इतनी अधिक हैं लेकिन न हम उनके विशेष रूप, वस्त्र तथा आयु से ही परिचित होते हैं और न उनके मनोविज्ञान में ही कोई विभिन्नता पाते हैं। जहाँ सूरदास ने कुछ गोपियों के नाम दिये हैं और उनके चित्र उपस्थित किये हैं वहाँ भी उन्होंने किसी प्रकार का वर्गीकरण नहीं किया। सारे दानलीला के समय गोपियों और कृष्ण में प्रश्नोत्तर चलता रहता है लेकिन नाम केवल कुछ ही का आता है। ये हैं चन्द्रावली, ललिता एवं विशाखा। इनमें कौन बड़ी थी, कौन छोटी तथा कौन श्री कृष्ण को अधिक प्रिय थी कौन कम, इसका कोई भी उल्लेख नहीं है। सब एक ही प्रकार से कृष्ण की सखियाँ हैं। राधा भी उन्हीं में एक हैं। वे सब समान रूप से कृष्ण को पाने के लिये व्रत करती हैं। स्थान-स्थान पर सूर ने यह संकेत किया है कि वे लौकिक भावना से परकीया हैं यद्यपि आत्मरूप से स्वकीया हैं। राधिका से कृष्ण का विवाह होता है, अन्य गोपियों से इस प्रकार का कोई संबंध नहीं।

राधा की सखियों में सब से अधिक स्पष्ट चित्र ललिता तथा विशाखा का है। सूरदास ने ललिता को धीर-स्वभाव का चित्रित किया है। वह दूती कर्म बड़ी निपुणता से करती है। वह कृष्ण के पास पहुँचती है और उनके मन में राधा के प्रति उत्सुकता और फिर लालसा उत्पन्न करती है^१। सूरदास ने राधा और गोपियों में भी विशेष अन्तर नहीं रक्खा है। उनके चित्रण में कहीं भी राधा विशेष गोपी चित्रित नहीं होती यद्यपि वह कृष्ण की पत्नी होने के कारण अलौकिक अवश्य है। राधा के समान उनका प्रेम भी इतना ऊँचा है कि वे कृष्ण की मुरली और वन माला से भी ईर्ष्या करती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूरदास ने गोपियों का सामूहिक चित्रण किया है। सब मिलाकर उनका एक व्यक्तित्व है। अलग-अलग गोपी का व्यक्तित्व प्रस्फुटित नहीं हुआ है। एक के स्थान पर हम दूसरी गोपी रख सकते हैं। संयोग शृङ्गार की मुखर, विलासिनी तथा चंचल गोपिकाएँ वियोगावस्था को पहुँच कर कृष्ण के प्रेम की इस गहराई पर पहुँच जाती हैं कि उनका सामूहिक व्यक्तित्व हमें प्रभावित करने लगता है। ब्रज की सारी प्रकृति उनके विरह में साथ देती है। उन्हें कालिन्दी काली दीख पड़ती है। जब वे मधुवन को हरा देखती हैं तो आश्चर्य होता है कि कृष्ण के विरह ने उसे जला क्यों न दिया। इस तटस्थता के लिये वे उसे क्षमा नहीं कर सकतीं।

१. (क) ललिता मुख चितवत मुसुकाने ।

आपु हँसी पिय मुख अवलोकत दुहुन मनहिं मन जाने ।

× × × ×

तब बोली वह चतुर नागरी अचरज कथा सुनाऊँ ।

सूरश्याम जो बल्लो सुरत ही नयनन जाय दिखाऊँ ।

(ख) अद्भुत एक अनूपम बाग ।

युगल कमल पर गज क्रीडत हैं तापर सिंह करत अनुराग ।

इन गोपियों की एक बात जो हमें सबसे अधिक प्रभावित करती है, वह है उनका सारल्य । भ्रमरगीत में उनके चरित्र का यह पक्ष भी सतकता से अंकित किया गया है । वे प्रेम में भी भोली है और उपालम्भ देने में भी । उन्हें तर्क करना आता ही नहीं । उनकी बातों में युक्ति और तर्क है ही नहीं यह बात नहीं परन्तु उनमें कोई क्रम नहीं । वे ज्ञान की खड्ग के आगे ठहर नहीं सकती । उनका एक ही तर्क है—‘ ऊधो कहा हमारी चूक’ । वे कुल-लज्जा की भी बात नहीं सोच सकती । विरह-रुदन में उन्हें इतना अवकाश ही नहीं । कुवजा की याद भी उनको उतनी नहीं आती । वे एक दो बार उसका नाम लेकर फिर अपना पुराना रोना आरम्भ कर देती हैं । वे उसे उपालम्भ भी नहीं देती । दोष उनके भाग्य का है ।

ऊधो के योग के तर्क के आगे सूरदास की सरल गोपियाँ निरुत्तर हो जाती हैं, उनका उत्तर वही रहता है जो प्रत्येक अवसर पर अवला प्रेमिकाओं का उत्तर रहा है । उन्हें वही कृष्ण चाहिये जिन्होंने उनके साथ प्रत्यक्षरूप से केलि की है । उनके उत्तर हृदय के उत्तर हैं मस्तिष्क के नहीं^१ । उनका तो एक ही उत्तर है—

राखो यह सब योग अटपटो ऊधो पाँइ परौं ।

कहाँ रस रीति कहाँ तन सोधन सुनि सुनि लाज मरौं ॥

सूरदास के चरित्र-चित्रण में एक विशेषता यह है वे अपने चरित्रों के विरोधी अंग को भी अत्यन्त पूर्णता से चित्रित करते हैं जो गोपियाँ

१. ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये ।

जेहि उपदेश मिलें हरि हमको सो व्रत नेम बतैये ।

मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनत दुख पैये ।

जेहि सिर केस कुसुम भरि गूथे तेहि कैसे भस्म चढ़ैये ।

और भी—

ऊधो मन न भयो दस बीस ।

एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस ?

संयोग शृङ्गार में अद्वितीय थी वह वियोग में भी उतनी ही अद्वितीय है । उनमें न किसी के प्रति ईर्ष्या है न द्वेष । वे तो केवल प्रेम जानती हैं ।

यशोदा के चरित्र में सूरदास ने मातृ हृदय का अभूतपूर्व चित्र

यशोदा उपस्थित किया है । उनकी यशोदा वात्सल्य रस में डूबी हुई है । उससे माता शब्द सार्थक हो जाता

है । वह कृष्ण की बाल-लीला में अपने अस्तित्व को भुला देती है । कृष्ण के अलौकिक रूप का भी परिचय उसे मिल गया है किन्तु उसे वह भूल गई है । उसके लिये वही कृष्ण उसके सर्वस्व हैं जिन्हें वह पालने में भुलाती है । इस क्रिया में वह सब कुछ भूल जाती है । उसे केवल एक ही चिन्ता है—किसी प्रकार उसके लाल को नींद आ जाय^१ । उसका प्रत्येक क्षण बाल-कृष्ण में केन्द्रित है । उसी के लिए वह उठती, बैठती, जागती तथा सोती है । कृष्ण जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं उसके आनन्द का कोई ठिकाना ही नहीं रहता । बालक कृष्ण का उलटा हो जाना उसके लिए एक महत्वपूर्ण घटना है^२ । उसे यही चिन्ता है—कब कृष्ण घुटने चलने लगेंगे, कब उनके दाँत निकलेंगे और कब वे अपने तोतली वाणी से बोलेंगे^३ । उसे यह उत्कट अभिलाषा है कि उसका बालक उसे माँ कह कर कब पुकारेगा ।

१. यशोदा हरि पालने मुझावै ।

हलरोवै दुल्लरावै जाइ सोइ कछु गावै ।

मेरे बालक को आऊ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।

तू काहे न वेगी सी आवै तोकां कन्ह बुझावै ।

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।

सोवत जानि मौन हूँ रहि रहि करि करि सैन बतावै ।

२. एक पाख त्रय मास को मेरो भयो कन्हार्ई ।

पटकरानि उखटे परे मैं करौं बघार्ई ।

३. कबहिं घुटुरुवनि चलाहिंगे यहि कहि विधिहिं मनावै ।

आज कृष्ण का अन्नप्राशन है। नंद यशोदा ज्योनार कर रहे हैं। यशोदा कृष्ण को नहलाती है। उनके बदन पर भंगुली डालती है सिर पर लाल टोपी देती है और हाथ पैर में चूड़े पहनाती है। नंद उन्हें अपने गोद में बैठाकर खीर से भरे सोने की थाल के आगे बैठते हैं और उनका मुँह जुठारते हैं। यशोदा उनके साथ बैठने के लिये बाल मंडली इकट्ठी करती फिरती हैं। इस प्रकार के अनेक चित्र हैं जो यशोदा के चरित्र का निर्माण करते हैं। इस चरित्र में कोई विशेषता नहीं, यही इसका सबसे बड़ा गुण है। सूरदास जहाँ सामान्य हो जाते हैं और अपने चरित्र को सामान्य स्त्री-पुरुष बालक-बालिका अथवा तरुण के रूप में उपस्थित करते हैं वहाँ उनकी सृष्टि अद्भुत हो जाती है। अन्य कवि अपने चरित्रों को इतना सामान्य नहीं बना सकते। यशोदा सब प्रकार से एक सामान्य माता है। वह कृष्ण के प्रत्येक क्रिया-कलाप से सुख पाती है। यही नहीं, उसे कृष्ण की प्रत्येक वस्तु प्रिय हो जाती है। खान-पान के संबंध में वह अनेक भुलावे कृष्ण को दे देती है^१। कृष्ण उन भुलावों को समझकर हठीले प्रश्न करते हैं, तो भी वह प्रसन्न होती है। कृष्ण के वन जाने पर बार बार उसे आशंका होती है कि किसी की गाय उसके बालक को मार न दे। वह प्रत्येक गोप-ग्वाल को कृष्ण को सौंपती फिरती हैं। उनके

कबहिं दंतुली द्वै दूध की देखौं इन नैननि ।

कबहिं कमल मुख बोलिहैं सुनिहौं इन बैननि ।

१. कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बाढ़ै :

सब लरिकन में सुन सुन्दर सुत तो श्री अधिक चढ़ै ।

जैसे देखि और व्रज बालक त्यों बल वेप बढ़ै ।

और कृष्ण का हठ—

मैया कबहिं बढ़ैगो चोटी ।

कित्ती बार मोहि दूध पियत भई यह अजहू है/छोटी ।

२. दूर कहुँ जनि जाहु लला रे मारेगी काहु की गैया ।

लौटने तक द्वार पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा करती रहती है^१ । उसका वह रूप तो अनूप है जब कृष्ण ने मिट्टी खाली है—

मोहन काहे न उगिलो माटी ।

बार बार अनरुचि उपजावत महरि हाथ लिये सांटी ।

महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ढाटी ।

वदन पसारि दिखाई आपने नाटक की परिपाटी ।

बड़ी वार भईं लोचन उधरे भ्रम जामिनि नहिं फाटी ।

सूरदास नंदरानि भ्रमित भईं कहत न मीठी खाटी ।

अपरोक्ष रूप से यशोदा का चित्रण इन दोनों पंक्तियों में पूर्ण हो जाता है—

लाला हौं वारी तेरे मुख पर ।

कुटिल अलक मोहन मन विहँसत भृकुटि विकट नैननि पर ।

सूरसागर के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के आरम्भ से लेकर मथुरा जाने के प्रसंग तक की समस्त लीलाओं के पीछे यशोदा का व्यक्तित्व छिपा रहता है । बाहर किशोर और फिर वयस्क कृष्ण लीला करते हैं और गोपियों और राधा से प्रेम प्रसंग चलाते हैं परन्तु घर में एक मातृहृदया उन पर अपना सब कुलु निछावर करने के लिये प्रतीक्षा करती रहती है । प्रथम कुलु पृष्ठों के बाद कृष्ण की अनेक लीलाओं में यशोदा हमारी दृष्टि से छिप जाती है परन्तु उनकी पृष्ठभूमि में वह उपस्थित है यह बात पाठक नहीं भूल पाता । इन तमाम लीलाओं और प्रसंगों में अनेक छोटी बड़ी आशंकाओं के रहते हुये भी यशोदा पूर्णतः आनंदमयी है । उसका प्रेम इतना पूर्ण है कि उसे वियोग की थोड़ी सी भी कल्पना नहीं । उसे किसी प्रकार की अमंगल आशंका भी नहीं । उसने कृष्ण के संयोग का परिपूर्ण अनुभव किया है । दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के उत्तर भाग

१. आवहु काहू सौंरु की बिरियां ।

गाहन मांरु भये हो ठाढ़े कहत जननि यह बड़ी कुबेरियां ।

में हमें जिस राधा के चित्र मिलते हैं वह पूर्व भाग से अलग है । वहाँ वह पूर्णतः वियोगिनी हैं ।

अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा जा रहे हैं । यह उसके लिये असह्य है । उसका मातृहृदय रो देता है—

मोहन नेक बदन तन हेरो ।

राखो मोहिं नात जगनी को मदन गोपाल लाल मुख फेरो ।

परन्तु जब कृष्ण की ओर से उसे ब्रज में रह जाने का आश्वासन नहीं मिलता तो वह दुःख में पागल हो जाती है । वह चिल्ला कर कहती हैं कि कोई गोपाल को रोक रक्खे —

गोपालहिं राखो मधुवन जाति ।

लाज गये कल्लु काज न सरिहैं बिछुरत नंद के तात ।

रथ आरूढ़ होत वलि वलि गई होइ आयो परभात ।

कृष्ण को मथुरा छोड़कर नंद जब ब्रज लौटते हैं, यशोदा उन्हें धिक्कारती है^१ । इस स्थल का काव्य-प्रसंग सूरदास ने अत्यंत सर्तकता से निवाहा है । पति-पत्नी दोनों पुत्र-वियोग में आकुल हैं एक दूसरे को उलाहना देता है^२ । अंत में दोनों मूर्च्छित हो जाते हैं^३ । इसके बाद के

१. बार बार महरि कहति जनम धिक कहाये ।

कहूँ कहनि सुनी नहिं दशरथ की करनी ।

यह सुनि नंद व्याकुल हुये परे मुरछि धरनी ।

२. (क) यशोदा कान्ह कान्ह के बूझे ।

फूटि न गई तिहारी चारो कैसे मारग सूझै ।

इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीन्हें खूब ।

यह छतियां मेरो कुँवर कान्ह बिनु फाटि न गये दो दूक ।

(ख) तब तू मारिवोई करति ।

रिसनि आगे कहि जो आवत अब लै भौंड़े भरति ।

३. राम कृष्ण कहि मुरछि परी धर यशुदा देखत लोगनि ।

पुत्र-विरहाकुल चरित्र ने यशोदा का हिन्दी साहित्य में अनुपम बना दिया है। नंद-यशोदा राम कृष्ण की बातें करते हुये सबेरा कर देते हैं^१। यशोदा को यह पछितावा होता है कि उन्होंने अपने मातृ-कर्तव्य में कहीं भूल कर दी अथवा उनसे कोई अपराध बन पड़ा? वह बराबर नंद से लड़ती रहती है —

सराहौ तेरो नंद हियो ।

मोहन सो सुत छाड़ि मधुपुरी गोकुल आनि जियो ।

कहा कहौ मेरे लाड़ लड़ैते जब नू बिदा कियो ।

जीवन प्राण हमारे ब्रज को वसुदेव छीनि लियो ।

कह्यो पुकार पारि पचहारी वरजत गमन कियो ।

वह नंद से विनती करती है—

ले आवहु गोकुल गोपालहिं ।

पायन परि के बहु विनती करि वलि छलि बाहु विशालहिं ।

उसे कृष्ण की बाल-लीला का स्मरण हो आता है—

है कोउ इतनी भौंति दिखावै ।

किंकिन शब्द चलत धुनि रुनभुन ठुमुकि ठुमुकि गृह आवै ।

कल्लुक विलास वदन की शोभा अरुण कोटि गति पावै ।

कंचन मुकुट कंठ मुकतावलि मोरपुच्छ छवि पावै ।

धूसर धूरि अंग अंग लीने ग्वाल वाल संग लावै ।

उसे केवल एक ही चिंता है—

यद्यपि मन समुभावत लोग ।

शल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख योग ।

१. एक दिन नंद चलाई बात ।

कहत सुनत गुन राम कृष्ण के हूँ आय परभात ।

२. चूक परी हरि कौ सेवकाई ।

यह अपराध कहाँ जौँ कही एकहि कहि नंद महर पछिताई ।

प्रातकाल उठि माखन रोटी को विनु मांगे देइहै ।

अबु वोहि मेरे कुंवर कान्ह को छिनछिन अंकन लेइहै ।

कृष्ण के वियोग का दुःख उसे इतना दीन कर देता है कि वह देवकी के सम्मुख कृष्ण की धाय बन लेना भी स्वीकार कर लेती है^१ । उसकी प्रार्थना यही है कि देवकी उसके बालक की प्रकृति पहचान ले जिससे उसे कष्ट न होने पावे । उसकी लालसा कृष्ण के बाल-चरित्र के चारों ओर मंडराती रहती है^२ ।

सूरदास ने यशोदा और राधा का चित्र एक ही तूलिका से खींचा है । दोनों के प्रेम के प्रकार में अंतर है लेकिन दोनों के प्रेम की विशेषतायें एक सी हैं । दोनों कृष्ण के सम्मुख रहने पर वियोग की तनिक भी आशंका नहीं करतीं और वियोग हो जाने पर उनके लिये अपनी वही दशा सत्य हो जाती है । उनका संयोग और वियोग दोनों पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है । संयोग में कहीं-कहीं व्याकुलता का आभास मिलता है किन्तु उसका कारण अविश्वास और अमंगल की आशंका नहीं वरन्

१. संदेशो देवकी सो कहियो ।

हौं तो धाय तिहारो सुत की मया करति ही रहियो ।

यद्यपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहिं कहि आवै ।

प्रातहि उठत तुम्हारे कान्ह को माखन रोटी भावै ।

× × × ×

सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन बढ़ो रहत उर सोच ।

मेरो अलक लड़ैतो मोहन हूँ है करत संकोच ।

२. मेरो कान्ह कमल दल खोचन ।

अबकी बेर बहुरि फिरि आवहु कहा जगो जिय सोचन ।

यह जानसा होत जिय मेरे बैठी देखत रहिहौं ।

गाय चरावन कान्ह कुँवर सो भूजि न कबहूँ कहिहौं ।

प्रेम की वह गहराई है जिसका दोनों एक समान अनुभव करती हैं। कृष्ण पूर्ण मानव हैं। उनकी लीला भी पूर्ण है। उसमें दुःख, विषाद और हर्ष आनन्द के दर्शन होते हैं किन्तु कृष्ण का इनसे अधिक संबंध नहीं। वे अपनी सारी लीला में उदासीन जैसे रहते हैं। परन्तु उनकी यही उदासीनता राधा और यशोदा के चरित्रों को उज्ज्वल कर देती है। राधा और यशोदा एक महान समुद्र के दो छोरों के दो भंवर हैं। उनके कारण ही उस समुद्र की विशालता का परिचय प्राप्त हो सकता है। उन दोनों के चरित्र में विरह तन्मयासक्ति की उच्चतम दशा चित्रित की गई है।

सूरदास ने नंद के चरित्र-चित्रण की ओर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया है परन्तु यशोदा के चरित्र-चित्रण में एक प्रकार से नंद का भी चरित्र-चित्रण हो जाता है। नंद दोनों में एक ही प्रकार के वात्सल्य भाव का विकास हुआ है। परन्तु जिस प्रकार यशोदा और नंद की प्रकृति में नैसर्गिक भेद है उसी प्रकार उनके चरित्र में भी भेद हो गया है। यशोदा माता और नारी होने के कारण कुछ अधिक भावुक है। उसकी वियोग-वेदना उसके शब्दों और उसकी चेष्टाओं में स्पष्ट होती है। वह उसे छिपा ही नहीं सकती। नंद पिता और पुरुष हैं इसलिये वे कृष्ण के वियोग के समय भी कुछ कठोर ही बने रहते हैं। यशोदा उन्हें देखकर यह नहीं जान पाती है कि उनके हृदय में भी उतनी ही गम्भीर वेदना है जितनी स्वयं उसके हृदय में। वह उन्हें अत्यंत कठोर उलाहना देती है। उस समय केवल एक बार नंद विचलित हो उठते हैं। उन्हें मूर्च्छा आ जाती है।

इसके बाद हमें नंद की इस प्रकार की विह्वलता के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते। वे कृष्ण के वियोग-दुःख को अत्यंत गरिमा से सहन कर लेते हैं यद्यपि उनका दुःख यशोदा, गोपियों और अन्य ब्रजवासियों के दुःख से और भी अधिक दुस्सह हो जाता है। सूरदास ने नंद का चित्रण करते

समय उनकी धीर प्रकृति और गम्भीरता को कभी हाथ से ले जाने नहीं दिया है ।

उद्धव कृष्ण के सखा हैं । उनका पहिला चित्र हमारे सामने उस समय उपस्थित होता है जब कृष्ण उनके ज्ञान-गर्व को उद्धव तोड़ने के लिए उद्यत होते हैं । उस समय कृष्ण उद्धव के बारे में जो चिन्ता करते हैं उससे यह प्रगट होता है कि उद्धव योगाभ्यासी पंडित हैं । उन्हें अपने ज्ञान का गर्व है । वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं । सगुण ब्रह्म को अधिक महत्व नहीं देते । वे कृष्ण से भेद-भाव रखते हैं । गोपियों और कृष्ण के संबंध में व्यंग करने से भी नहीं चूकते । उद्धव की प्रकृति इस पद से स्पष्ट हो जाती है—

हंस काग को संग भयो ।

कहाँ गोकुल कहाँ गोप गोपिका विधि ये संग दयो ॥

जैसे कंचन कांच संग ज्यों चंदन संग कुगंधि ।

जैसे खरी कपूर एक सम यह भइ ऐसी संधि ॥

जल बिनु मीन रहत कहूँ न्यारे यह सो रीति चलावत ।

जब ब्रज की बातें यहि कहियत तबहिं तबहिं उचटावत ॥

कृष्ण ऊधो से ब्रज की चर्चा चलाते हैं । उद्धव उनकी बातों पर मुस्करा देते हैं । ज्ञान के घमंड में उद्धव कृष्ण का चातुर्य नहीं समझ पाते । अपनी प्रशंसा सुनकर उनका अभिमान और भी बढ़ जाता है^१ । वे प्रसन्न होकर गोकुल जाना स्वीकार कर लेते हैं^२ ।

ऊधो केवल ज्ञानी पंडित हैं, सांसारिक व्यवहार की बातें कम जानते

१. ऊधो मन अभिमान बढ़ायो ।

यदुपति योग जान जिय साँचो नैन अकाश चढ़ायो ।

नारिन पै मोको पढ़वत हैं कहत सिखावन जोग ॥

२. तुम पढ़वत गोकुल को जैहों ।

जो मानि हैं ब्रह्म की बातें तो मैं उनसे कहिहों ॥

सूर-साहित्य का काव्य पक्ष

कला मानवीय चेष्टा है। चेष्टा यही है कि एक मानव ज्ञानपूर्वक कुछ किंतों द्वारा उन भावों को प्रगट करता है जिनका उसने अपने जीवन में साक्षात्कार किया है। इन भावनाओं का दूसरों पर प्रभाव पड़ता है। वे भी उनको अनुभूत करते हैं^१।

यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो सूरदास की कविता का कला पक्ष भी प्रत्यंत पुष्ट है। सूर ने अपने काव्य के विषय का साक्षात्कार किया था, उसके अत्यंत निकट थे, यह सूरसागर का कोई भी पाठक भुला नहीं सकता। स्वयम् महाप्रभु ने यह बात कही थी^२। उनके प्रभाव के संबंध में तो परवर्ती साहित्य और आज भी मनुष्य-हृदय साक्षी है। सूर की कला के वाह्य और आन्तरिक दोनों रूप पुष्ट हैं। इस अध्याय में उनके वाह्यांगों (रस, अलंकार, चित्रमयता और सौन्दर्योत्कण्ठ, भाषा और लृंद) पर विचार करेंगे। कला के आन्तरिक रूप का संबंध अनुभूत भावनाओं से है जो नैतिक, शक्तिप्रद और पूत होनी चाहियें; जिनका उद्देश्य आनंद द्वारा पाठक के भाव-जगत के उत्कर्ष पर पहुँचाना तथा उसे परिष्कृत करना है। सूर के काव्य के इस अंग पर अन्यत्र विचार किया जायगा।

मध्ययुग के भक्ति-काव्य की विवेचना करते हुये हम यह भूल जाते हैं कि किसी भी युग में कोई भी धारा स्वतंत्र रूप से नहीं बह सकती। उसके

१. टॉल्स्टाय - कला क्या है ? Tolstoy's—What is Art ?

२. देखिये चौरासी वार्ता—सूरदास की जीवनी। सूरसागर पर विहंगम (पृष्ठ शीर्षक के नीचे हमने महाप्रभु के शब्द उद्धृत किये हैं)।

साथ अनेक धाराओं का मेल हो जाना ही अधिक सम्भव है। मध्य-युग में केवल भक्ति की धारा ही प्रधान नहीं थी। इस समय दो अन्य धारायें भी बल प्राप्त कर चुकी थीं। इनका संबंध धर्म से नहीं, साहित्य से था। ये थीं शृङ्गार रस और रीति की धारायें जिन्होंने भक्ति काल के बाद प्राधान्य प्राप्त कर लिया और रीति-काल का प्रादुर्भाव किया। सूर के काव्य-विषय (कृष्ण-भक्ति) को इन साहित्य-धाराओं और उनके अतिरिक्त युग की सामान्य प्रवृत्ति (विलासप्रियता अथवा शृङ्गारप्रियता) ने भी प्रभावित किया। यही कारण है कि सूर-साहित्य के भाव-पक्ष में हमें भक्ति और शृङ्गार के दर्शन होते हैं और कला-पक्ष में रीति (रस और अलंकार निरूपण) के। इस सत्य को भुला कर सूर-साहित्य पर अनैतिकता का दोष लगाया जाता है और उसमें हमें ऐसे पदों को स्थान प्राप्त करते हुये देखकर आश्चर्य होता है जो कूट, रस-निरूपण और अलंकारों के प्रदर्शन के लिये लिखे गये। परन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। सूर-साहित्य पर अनेक प्रभाव पड़े हैं। इन प्रभावों की दृष्टि से सूर-साहित्य का विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है—

- (१) विनय के पद (भक्ति की साधारण भावना—दास्य और आत्म समर्पण—का प्रभाव)।
- (२) सामान्य रूप से सारे ग्रंथ को प्रभावित करने वाला भाव (कृष्ण की मधुर रूप की भक्ति)।
- (३) कृष्ण की बाल लीला का प्रसंग (वल्लभ-सम्प्रदाय की धर्म भावना का प्रभाव)।
- (४) राधा-कृष्ण प्रसंग (मधुर भक्ति और युग की सामान्य प्रवृत्ति का प्रभाव अतः शृङ्गार-रस की प्रधानता)।
- (५) कूट-रस-निरूपण, नायिका-भेद, और अलंकारों को स्पष्ट करने वाले पद (पूर्ववर्ती साहित्य और तत्कालीन रीति धारा का प्रभाव)।

इस स्थल पर हम सूर-साहित्य के रीति-प्रधान अंग पर प्रकाश डालने वाली कुछ पंक्तियाँ लिखना आवश्यक समझते हैं। इसके पश्चात् हम उसके बाह्यांग की विस्तृत विवेचना करेंगे।

सूरदास के बहुत पहले संस्कृत-काव्य में रीति की प्रतिष्ठा हो गई थी और मध्य युग के कवियों को संस्कृत का जो काव्य-साहित्य उपलब्ध था उसमें उसकी प्रधानता थी। जयदेव के समय में संस्कृत का रीति काव्य पुष्ट हो रहा था। इसलिये हिन्दी के आदि-कवियों पर भी रीति-विवेचना की प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ा। हिन्दी का रस निरूपण संबंधी सर्व-प्रथम ग्रंथ १५६८ (सं० १५४१ ई०) के प्रारम्भ में कृपा-राम ने लिखा। उसी समय के लगभग चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने शृङ्गार-सागर-नामक एक ग्रंथ शृङ्गार-संबंधी लिखा। करनेस के तीन अलंकार-संबंधी ग्रंथ भी इसी समय लिखे गये^१। यह ध्यान रखना चाहिये कि सूरदास की जन्म तिथि सं० १५४० है। रीति-ग्रंथों के प्रणयन का प्रचलन केशवदास ने किया। उन्होंने सं० १६४८ (१५६१ ई०) में रसिक प्रिया लिखी और सं० १६५८ (सन् १६०१ ई०) में रामचंद्रिका और कवि-प्रिया। इस ऐतिहासिक विवेचना से यह स्पष्ट हो जायगा कि रीति ने उस युग को सूरदास के जन्म के समय ही प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था। धीरे-धीरे पचास-साठ वर्षों में रीति ने साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। इस वीथिका को ध्यान में रखने पर सूरदास और तुलसीदास के काव्य में रस और अलंकार का निरूपण मिलने पर हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। ये लोग कवि भी थे और उनके काव्य को उस समय की काव्य प्रवृत्ति ने प्रभावित किया, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सूर के बाह्यांग में वैयक्तिकता, सरलता और सच्चाई^२ के तीन आवश्यक गुण मिलते हैं। इन गुणों ने उनके भाव पद को पुष्ट और

१. करणाभरण, भुति-भूषण और भूप-भूषण।

२. Individualism, Simplicity and Sincerity.

प्रभावशाली बनाया है। उन्होंने सूर-साहित्य में आत्मीयता की उत्पत्ति की है।

१ रस सूर के काव्य के वाह्यरूप का अध्ययन हम रस से आरम्भ करेंगे।

सूर-साहित्य में अनेक रसों की वर्णछटा होते हुये भी उसकी आत्मा-शान्त-रस है। वहाँ भक्त सूरदास अपने प्राकृतिक रूप में हमारे सामने आते हैं। उस समय वे कवि अधिक नहीं होते, केवल विनय-शील भक्त और अध्यात्म-पारखी मात्र होते हैं।

सूरदास की विनय-पत्रिका के नाम से जो अंश प्रसिद्ध है उसमें शान्त-रस की ही प्रधानता है। इन पदों में आत्म-निवेदन और प्रार्थना, दैन्य-प्रकाश और कृपा भिन्ना-भक्ति और दर्शन का सामंजस्य है। इनकी भाषा सरल है, अलंकारों का भी प्रयोग बहुत कम हुआ है। शान्त-रस को प्रगट करने के लिए अधिक आडम्बर की भी आवश्यकता नहीं है अतः इन पदों में सूरदास ने जो कुछ कहा है वह काव्य-कला के प्रकाशन के लिए नहीं; उन्होंने प्रत्यक्ष और स्पष्टरूप से अपनी आत्मा को प्रकाशित कर दिया है। सूरदास कवि, भक्त तथा कथाकार एक साथ ही हैं। शान्त-रस मुख्यतः उनके भक्त और कथाकार रूप में प्रस्फुटित हुआ है। काव्य की छटा न होने के कारण इस प्रकार के पद काव्यालोचकों को अधिक प्रिय नहीं है परन्तु सूरसागर की सारी कथा और उसके अनेक रसों के मूल में यही पद और उनमें सन्निहित शान्त भाव है। संसार की अनित्यता के विषय में सूरदास का एक पद है—

हरि बिनु कोऊ काम न आयो ।

यह माया भूँडी प्रपंच लागि रतन सों जनम गँवायो ॥

कंचन कलस विचित्र चित्र करि रचि पचि भवन बनायो ।

तामें तेहि छिनही काढ्यो पल भर रहन न पायो ॥

तेरे संग जरौंगी यहि कहि, त्रिया धूत धनि खायो ।
 चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो ॥
 बोलि-बोलि सुत स्वजन मित्र जन, लीनों सो जिहि भायो ।
 पद्यो काज अब अंत की विरियाँ, तिन ही आनि बंधायो ॥
 आसा करि-करि जननी जायो कोटिक लाड़ लड़ायो ।
 तोरि लयो कटिह को डोरा, तापर बदन जरायो ॥
 कोटि जनम भ्रमि-भ्रमि हम हार्यो, हरिपद चितन लगायो ।
 और पतित तुम बहुत उधारे, सूर कहा विसरायो ॥

कृष्ण के संबंध में विनय के पदों में शान्त रस का विकास अच्छी प्रकार हो पाया है—

गोविंद पद भज मन बच क्रम करि ।

रुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ दीनबंधु कर्णामय उरधरि ।

मिथ्यावाद विवाद छांडि सठ विषय लोभ मद मोहै परिहरि ॥

चरन प्रताप आनि उर अन्तर और सकल मुख या मुख तरहहि ।

वेदनि कह्यो स्मृति इमि भाष्यो पावन पतित नाम है निजुहरि १ ॥

सूरसागर के प्रत्येक स्कंध के प्रारम्भ में हरि-स्मरण संबंध के पद^२ मिलते हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि सूरदास ने अन्य रस केवल शान्त रस के पुष्टि के लिये ही उपस्थित किये हैं । सूरसागर का प्रथम पद भी इसी और इंगित करता है । यह पद इस प्रकार है—

चरण कमल बंदौ हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरिल्यै अंधे को सब कुछ दरशाई ॥

वहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै शिर छत्र धराई ।

सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बंदौ तेहि पाई ॥

१. अन्य उदाहरणों के लिए देखिये सूर पंच रत्न, विनय पद २८, २९, ३१, ३२ ।

२. हरि-हरि हरि-हरि सुमिरन करौ, हरि चरनार विंद उर धरौ आदि ।

सूरदास ने ब्रज की महिमा के संबंध में जो पद कहे हैं उन्हें भी हम शान्त-रस के अंतर्गत रख सकते हैं क्योंकि उससे कवि का अभिप्राय अपनी भक्ति-भावना की पुष्टि ही थी। इन पदों को हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं^१। इन स्थलों के अतिरिक्त हमें अनेक प्रसंगों के बीच में भी ऐसे पद मिलते हैं जिनमें यही रस प्रधान है।

सूरसागर में कृष्ण भक्ति संबंधी जो पद हैं उन्हें साधारणतया शान्त रस के अंतर्गत ही रक्खा जाता है परन्तु वास्तव में उन पदों में एक नये रस का विकास हुआ है। इसे हम 'भक्ति-रस' कह सकते हैं। पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'उज्ज्वल-रस' का नाम दिया है। रसों की कल्पना एवं उनकी विवेचना का इतिहास बहुत प्राचीन है और उसके आधार संस्कृत नाटक और काव्य-ग्रंथ हैं। मध्य-युग में भक्ति और काव्य का ऐसा संगम हुआ कि उसके कारण काव्य में कुछ नये रसों का विकास हुआ। इनमें से दो 'वात्सल्य' और 'भक्ति-रस' हैं। भक्ति-रस का एक उदाहरण इस प्रकार है—

अब के माधव मोहिं उधारि ।
 मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि ।
 नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग ।
 लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ।
 मीन इन्द्रिय अतिहिं काटत मोर अध सिर भार ।
 पग न इत उत धरन पावत उरभि मोह सेवार ।
 काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति भूकभोर ।
 नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर ।
 थक्यो बीच बेहाल विह्वल सुनहु करुनामूल ।
 स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु सूर ब्रज के कूल ।

वल्लभाचार्य ने बाल-कृष्ण को इष्टदेव के रूप में उपस्थित किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने कृष्ण-लीला पर इतना वात्सल्य रस बल दिया जितना और किसी सम्प्रदाय ने नहीं दिया । उनके लिये लीला का गान करना ही भक्ति था । इस लीला से तादात्म्य स्थापित करना ही उनकी साधना थी । कृष्ण की बाल-लीला का संबंध यशोदा और नंद से विशेष रूप में था । इसमें भी यशोदा नारी और माता थीं । अतएव उनका और कृष्ण का संबंध अधिक मधुर और पूर्ण था । इसीलिये जब काव्य में कृष्ण का बाल चरित्र सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ तब हिन्दी साहित्य में एक नये रस की प्रतिष्ठा हुई । यह रस वात्सल्य रस था ।

यशोदा और कृष्ण के संबंध की कथा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं, (१) कथा का वह भाग जब कृष्ण यशोदा के सम्मुख थे, अपनी लीलाओं से उन्हें सुखी करते थे । (२) कथा का वह भाग जिसमें कृष्ण मथुरा चले गये हैं, नंद-यशोदा उनके विरह में व्याकुल हैं । इन दोनों कथा-प्रसंगों को संयोग और वियोग कहा जाता है यद्यपि इस प्रकार की परिभाषा शृङ्गार रस के संबंध में प्रयुक्त होती है । इस प्रकार सारी कथा से जिस वात्सल्य रस की सृष्टि हुई है उसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं, एक संयोग-वात्सल्य; दूसरे वियोग-वात्सल्य ।

सूरदास वात्सल्य रस के दोनों अंगों का प्रकाशन करने में सिद्धहस्त हैं परन्तु उन्होंने संयोग-वात्सल्य का ही अधिक चित्रण किया है । वियोग-वात्सल्य के संबंध में उनके पद इतने अधिक नहीं हैं । वास्तव में सूर संयोग-वात्सल्य के चित्रण में अपूर्व हैं, उन्होंने माता के हृदय की प्रत्येक परिस्थिति का बड़ा रसपूर्ण सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण किया है । जिस प्रकार राधा-कृष्ण के संयोग शृङ्गार से सूरदास ने मधुर एवं सख्य भाव द्वारा कृष्ण की भक्ति साधना की है, उसी प्रकार यशोदा-कृष्ण का संयोग वात्सल्य भी उनके लिए एक मधुर साधना है । उन्होंने अपने व्यक्तित्व को यशोदा के व्यक्तित्व में मिलाकर कृष्ण की बाल-लीला में भाग लिया

है। यशोदा-कृष्ण के प्रसंग में उनके भी वात्सल्यपूर्ण हृदय का चित्रण हो गया है। संयोग-वात्सल्य के आलम्बन कृष्ण हैं, उनकी लीलाएँ उद्दीपन हैं। यशोदा का प्रसन्न होकर हँसना, मुसकराना और अन्य चेष्टाएँ अनुभाव हैं।

सूरदास ने अपने संयोग-वात्सल्य के चित्रण को स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा पुष्ट किया है। उनका बाल मनोविज्ञान का ज्ञान उन्हें वात्सल्य रस की सृष्टि में सहायता देता है। यद्यपि बाल-लीला के प्रसंग में कहीं कहीं अद्भुत रस का निरूपण भी हुआ है जो वात्सल्य-रस के विकास में बाधा डाल सकता है परन्तु वात्सल्य-रस पूर्ण स्थलों की अधिक प्रधानता होने के कारण ऐसा नहीं होता। बाल-कृष्ण और यशोदा-नन्द के प्रसंग में केवल एक ही रस प्रस्फुटित होता है, वह है वात्सल्य-रस। अद्भुत-रस प्रासांगिक और गौण है।

सूर के आलम्बन का सौन्दर्य वात्सल्य-रस के प्रादुर्भाव में विशेष भाग लेता है। उस सौन्दर्य को यशोदा के साथ साथ सूरदास ने इस प्रकार देखा है—

लाला, हौं वारी तेरे मुख पर ।
कुटिल अलक, मोहन मन विहँसन,
भ्रुकुटि विकट नैननि पर ॥
द्वै द्वै दमकि दँतुलियाँ विहँसति
मनु सीपज घर किय बारिज पर ॥
लघु लघु सिर, लट धूँषर धारी
रहीं लटकि लौने लिलार पर ॥
नूतन चंद्र-रेख मधि राजति
सुर-गुरु सुक्र उदोत परस्पर ॥
लोचन लोल, कपोल ललित अति,

नासिक को मुक्ता रद-छद पर ॥
सूर कहा नौछावरि करिए
अपने लाल ललित लर ऊपर ॥

यह सौंदर्य अनेक रूपों से हमारे सामने उपस्थित किया जाता है । इस पुनरावृत्ति के कारण वात्सल्य-रस की उद्भावनना में अधिक कठिनाई नहीं होती । बालक का सौन्दर्य ही उसकी क्रीड़ा की ओर इंगित कर सकता है और इस प्रकार केवल सौन्दर्य चित्रण से ही रस-व्यंजना हो जाती है ।

परन्तु इस अदभुत-सौन्दर्य-पूर्ण बालक की संख्या भी अनेक दंग से चित्रित की गई है । उनकी संख्या भी कम नहीं है । उद्दीपन की यह अधिकता रस की वृद्धि में सहायक होती है । वात्सल्य-रस के उद्दीपन के लिये बाल-कृष्ण की जो लीलाएँ उपस्थित हो सकती हैं वे ये हैं, घुटने चलना, पाँव चलना, कलेवा, चंद्र प्रस्ताव, खेलना, माखन-चोरी, गाय दुहना सीखना । इन सब लीलाओं में से प्रत्येक के संबंध में बहुत से पद मिलते हैं । इन लीलाओं के अतिरिक्त किशोर राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला में भी यशोदा ने मधुरस्मित द्वारा साथ दिया है और इसने उसकी वात्सल्य भावना में और भी अधिक माधुर्य का प्रवेश कर दिया है ।

- (१) कान्ह चलत पग दै दै धरनी
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नँद-धरनी ॥
रुनुक भुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मनहरनी ।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छुवि जाय न बरनी ।
- (२) मेरो माई ऐसो हठी बाल गोविंदा ।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को माँगे चंदा ।
वासन के जल धर्यो यशोदा हरि को आनि दिखावै ।
रुदन करत ढूँढे महीं पावत धरणि चंद्र कैसे आवै ।

- दूध दही पकवान मिठाई जो कछु माँग मेरे छौना ।
भौरा चकई लाल पाट को लेंडुवा मागु खिलौना ।
- (३) खेलन अब मेरी जात बलैया ।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिभत बलभैया ।
मोंसो कहत पूत वसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लियो कुछ दै वसुदेव को करि करि जतन बढ़ैया ।
अब बाबा कहि कहत नंद सो जसुमति को कहै मैया ।
ऐसे कहि सब मोहि खिभावत तब उठि चलौं खिसैया ।
पाछे नंद सुनत है ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।

सूरदास ने अपने संयोग-वात्सल्य के वर्णन में बालकों की भाषा और उनके प्रति स्नेह-सूचक शब्दों के प्रयोग से रसोद्रेक में सहायता ली है। वास्तव में सूर की भाषा की मौलिकता, नैसर्गिकता और रस-परिपाक के लिये उसकी उपयोगिता बाल-लीला के पदों में ही स्पष्ट होती है।

वियोग-वात्सल्य के चित्रण ने वात्सल्य रस को पूर्ण कर दिया है। वियोग-वात्सल्य में कृष्ण आलंबन है और उनकी बाल-क्रीड़ा की स्मृतियों एवं वे वस्तुयें जिनसे उनका संबंध रहा है (मुरली, लकुट आदि) उद्दीपन हैं—

- (१) मेरे कुँवर कान्ह विनु सब कछु वैसेहि धरयो रहै ।
कोई उठि प्रात होत लै माखन को कर नेत गहै ॥
सूने भवन यशोदा सुत के गुनि-गुनि शूल सहै ।
- (२) निशि वासर छतियाँ ले ल्याऊँ,
बालक लीला गाऊँ ।
वैसे भाग बहुरि फिरि है हैं,
मोहन मोद खवाऊँ ॥

यशोदा का वात्सल्य इतना पूर्ण है कि संयोग और वियोग दोनों में कृष्ण ही उसके प्राण हैं। दोनों अवस्थाओं में वह उनमें इतनी तन्मय रहती है कि उसका अपना व्यक्तित्व कृष्ण के व्यक्तित्व के सिवा कुछ नहीं

रहता। संयोग के अवसर पर उसे वियोग की तनिक भी आशंका नहीं रहती। वियोग के अवसर पर वह पिछले संयोग को भूल नहीं पाती, यद्यपि उसका वियोग भी उसके लिये कृष्ण की क्रीड़ाओं की स्मृति के कारण अत्यन्त मधुर हो गया है। उसका वात्सल्य जिस समय परिपूर्णता प्राप्त कर लेता है उस समय वह पति-प्रेम के भी ऊपर उठ जाता है। यशोदा नंद को उलाहना देती है कि उन्होंने दशरथ के पथ का अनुसरण क्यों नहीं किया। ऐसा वह केवल वात्सल्य की अन्यतम अनुभूति के कारण कहती है। यशोदा के वात्सल्य-पूर्ण हृदय के वियोग-दुख की अनुभूति वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त का लक्ष्य था^१। सूरदास इस वियोग दुख की गम्भीरता को अभिव्यक्त करने में सफल हुये हैं।

सूरदास के वात्सल्य रस के चित्रण के बाद नवीनता, व्यापकता और रस की अनेक दशाओं के निरूपण की दृष्टि से शृङ्गार रस शृङ्गार रस का स्थान है। उसका विस्तार तो वात्सल्य रस से भी अधिक है। बाल लीला के प्रसंग को छोड़कर सारे दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में शृङ्गार-रस के ही दर्शन होते हैं।

शृङ्गार-रस गोपियों और कृष्ण एवं राधा-कृष्ण को लेकर अभिव्यक्त हुआ है। दोनों प्रेम-प्रसंगों के दो अंग हैं, संयोग तथा वियोग। गोपियों और कृष्ण के प्रेम-प्रसंग में अलौकिकता का समावेश हुआ है। कृष्ण अभी बालक ही हैं। गोपियों के मन में विकार उत्पन्न होने लगा^२। कृष्ण का अद्भुत सौन्दर्य और उनकी बाल क्रीड़ा उनके विकार को स्थायी कर देते हैं। माखन-चोरी प्रसंग से गोपियों की प्रेम-भावना में विकास होता है। दान लीला, चीर हरण और इसी प्रकार के अन्य प्रसंग

१. यच्च दुखं यशोदायां—तद् दुःखं स्यान् मम क्वचित् । (जो दुख यशोदा को हुआ वह दुख मुझे कब होगा)—वरलभाचार्य ।

२. मेरं हियरे मारु लगे मनमोहन जे गये मन चोरी ।

अबहीं इहि मारग है निकसे छबि निरखत तृन तोरी ॥

इसमें सहायक होते हैं। अन्त में इस प्रेम के संयोग-पक्ष की पूर्णता रास-लीला में प्रगट होती है।

गोपियों के प्रेम के वियोग-पक्ष का चित्रण राधा के विरह-चित्रण से कहीं अधिक विस्तारपूर्वक हुआ है। उसके दो भाग किये जा सकते हैं (१) उद्धव के आने से पहिले की गोपियों की विरह दशा का वर्णन (२) उद्धव के सम्मुख गोपियों की वियोगावस्था का चित्रण (भ्रमरगीत प्रसंग)।

राधा-कृष्ण का प्रेम-पूर्ण रूप से मानवीय है; उसमें अलौकिकता को अधिक स्थान नहीं मिला है। गोपियों का व्यक्तित्व सामूहिक है इसलिये यद्यपि उनके प्रेम-प्रसंग से प्रेमानुभूति की गम्भीरता की व्यंजना भली भाँति हुई है तथापि प्रेम के विकास का चित्रण सम्पूर्ण रूप से नहीं हो पाया। राधा के चरित्र-चित्रण के संबंध में लिखते हुये हमने राधा-कृष्ण के प्रेम की सभी अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है। पूर्ववर्ती कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रतिष्ठा कुटुम्ब के भीतर नहीं की थी। उनकी राधा कैशोर और यौवन की संधि के समय अथवा यौवन-प्राप्त-रूप में ही उपस्थित होते हैं। सूरदास की राधा का व्यक्तित्व अधिक पूर्ण है। उसमें कैशोर-चांचल्य के साथ साथ प्रेम का विकास हुआ है। वह पुत्री और सखी के रूप में भी हमारे सामने आती है। संयोग की अवस्था में उसका स्थान अन्य गोपियों से ऊँचा रहता है। रास-लीला का प्रसंग उसी को केंद्र बना कर चलता है। गोपियाँ जानती हैं कि वे (राधा) कृष्ण के प्रेम की विशेष अधिकारिणी हैं। संयोगावस्था में राधा ने सबसे अधिक आनंद पाया है। अक्रूर के साथ कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं तो गोपियों की विरह-दशा का विस्तृत चित्रण होता है। राधा भी उनमें एक है परन्तु उनका प्रेम अन्य गोपियों की अपेक्षा अधिक गम्भीर है। इसीलिये उनकी उक्तियों उतनी ऊहात्मक नहीं हैं जितनी अन्य गोपियों की। वह अन्य गोपियों की तरह कृष्ण को दोष नहीं देना चाहती, वह अपने को ही दोषी मान लेती है और अपने व्यक्तित्व को कृष्ण के साथ की हुई लीलाओं में केन्द्रित

कर देती हैं । तात्पर्य यह है कि विरहावस्था को प्राप्त राधा और गोपियों में भेद है । भ्रमरगीत के प्रसंग में राधा को चित्रपट से हटा कर सूरदास ने यह भी व्यजित कर दिया है कि उनका प्रेम कृष्ण के अधिक निकट है और वह अन्य गोपियों के प्रेम से अधिक गम्भीर है ।

इन संयोग-वियोग की अवस्थाओं में अनेक मानसिक दशाओं के चित्रण हुये हैं । संयोग शृङ्गार की इतनी दशाओं का सूर के पूर्ववर्ती किसी कवि ने इतनी विशदता से वर्णन नहीं किया है यद्यपि जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास सबों ने संयोग-शृङ्गार को नाना रूपों में उपस्थित किया है ।

(१) नंदकुमार कहा यह कीनो ।

बूझति तुमहिं कहौं धौं हमसों

दान लियो कि मन हरि लीन्हों ॥

कछुक दुराव नहीं हम राख्यो

निकट तुम्हारे आई ।

देते पर तुम ही अब जानौ

करनी भली दुराई ॥

(२) घर तनु मनहिं बिना नहिं जात ।

आपु हँसि-हँसि कहत हौं नू, चतुराई की वात ॥

तनहिं पर हँसि मनहिं राजा, जोई करे सो होइ ।

कहो घर हम जाहिं कैसे, मन धर्यो तुम गोइ ॥

(३) विहरत है यमुना जल श्याम ।

राजत हैं दोउ बाँहा जोरी दम्पति अरु ब्रजवाम ॥

कोउ ठाढ़ी जल जानु जघ लौ कोउ कटि हृदय श्रीव ।

यह सुख वरणि सकै ऐसे को सुन्दरता की सीव ॥

(४) द्विडोरना माई भूलत हैं गोपाल ।

संग राधा परम सुन्दरि चहुँछा ब्रज बाल ॥

(५) मान कर्यो तिय बिनु अपराधहि ।

तनु दाहति बिनु काज आपनो कहत डरत जिय वादहिं ॥
कहा रही मुँख मुँदि भामिनी मोहिं चूक कछु नाहीं ।
भलकि रही क्यो चतुर नागरी देखि आपनी छांहीं ॥

(६) गति सुगन्ध नृत्यति ब्रज नारी ।

हाव भाव सैन नैन दै-दै रिभ्रवति ब्रज नारी ॥
पग-पग पटकि भुजनि लटकावति फंदा करनि अनूप ।
चंचल चलत भूमिये अंचल, अद्भुत है वह रूप ॥
दुरि निरखत अंग रूप परस्पर दोउ मनहिं मन रिभावत ।
हँसि-हँसि वदत वचन रस प्रगटत, स्वेद अंग जल भीजत ॥

वियोग-शृङ्गार के अंतर्गत भी सूरदास ने अनेक दशाओं का वर्णन किया है । उद्धव के ब्रज में आने से पूर्व के वियोग-चित्रण में विरह की एकादश दशाओं का वर्णन हुआ है । बाद के प्रसंग (भ्रमरगीत) में प्रेम की अनन्य तन्मयता ही सर्वत्र प्रतिध्वनित होती है ।

(१) गोपी अति आनंद भरी ।

माखन दधि हरि खात प्रेम सो निरखति नारी खड़ी ॥
करलै, लै मुख परस करावत उपमा बड़ी सुभाई ।
मानहूँ कंज मिलत हूँ ससि को लिये सुधाकर आई ॥

(हर्ष)

(२) ग्वालिन प्रगटयो पूरन नेह ।

दधि भाजन सिर पर धरे कहत गुपालहिं लेहु ॥
बन वीथिन निजपुर गली जहीं तहीं हरि नाऊ ।
समुभाई समुभूत नाहीं, सिख दै विथक्यो गाऊँ ॥
कौन सुनै काकै श्रवणन काकी सुरति सकोच ।
कौन निडर डर आपको को उत्तम को पोच ॥

(आवेग)

(३) करन दे लोगन को उपहास ।

मन क्रम बचन नंद नंदन को नेकु न छाड़ौं दास ॥
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ मेरे भाए घाँस ।
आवत तौ इहै बसी री माई नहिं मानूंगी त्रास ॥
कैसे रह्यो परै री सजनी एक गाँव को वास ।
श्याम मिलन की प्रीति सखी री जानत सूरजदास ॥

(अमर्ष)

(४) जो पै राखै हौं पहिचानि ।

तौ अब कै वह मोहन मूरति मोहिं दिखावहु आनि ॥
नुम रानी बसुदेव गेहनी हौ गँवारी ब्रज वारि ।
पैटै देहु मेरे लाल लड़ैतो वारौ ऐसी हाँसि ॥

× × ×

खान-पान परिधान राज मुख जो कोउ कोटि लड़ावै ।
तदपि सूर मेरो वारो कन्हैया माखन ही सचु पावै ॥

(दैन्य व चिन्ता)

(५) एक दिन नवनीत चौरन हौं रही दुरि जाइ ।

निरखि मम छाया भजे मैं दौरि पकरे धाइ ॥
पोंछि कर मुख लिए कनियां तब गई रिसि भागि ।
वह मुरति जिय जाति नाहीं रह्यो छाती लागि ॥ (स्मृति)

(६) सुपने हरि आये हौ किलकी ।

नींद जो सौति भई रिपु हमको सहि न सकी रति तिलकी ॥
जो जागो तो कोऊ नाहीं रोके रहति न दिल की ।
तब फिर जानि भई नख-शिख तें दिया वाति जनु मिलकी ॥

(स्वप्न व विबोध)

(७) चलन चहति पग चलति न घर को ।

छाँड़त वनत नहीं कैसे हू मोहन सुन्दर वर को ॥

(जड़ता)

(८) सखियन मिलि राधा घर लाई ।

देखहु महरि सुता अपनी को कहूँ यहि कोर खाई ॥
हम आगे आवति यह पाछे धरणि परी महराई ।
शिर तें गिरी दोहनी ढरि कै आपु रही मुरभाई ॥
श्याम भुजंग डस्यो हम देखत ल्यावहु गुनी बुलाई ।
रोवत जानि कंठ लिपटानी सूर श्याम गुहराई ॥

(व्याधि)

सूरदास ने अनेक स्थलों पर हास्यरस की सुंदर सृष्टि की है किन्तु
हास्यरस उनका हास्य कहीं भी स्मित हास्य से आगे नहीं
बढ़ता । वह सदैव शिष्ट और मर्यादित रहता है ।

हास्यरस के सर्व प्रथम अवतरण हमें बाल-कृष्ण और यशोदा के
संबंध में मिलते हैं । सूरदास का हृदय अत्यंत सरस था । वे अनेक हास
परिहास के मौलिक प्रसंगों की कल्पना कर सके हैं जिनमें वात्सल्य रस
की पुष्टि हो जाती है एवं बाल मनोविज्ञान का भी चित्रण हो जाता है ।
कृष्ण बलदाऊ द्वारा खिभाये जाने पर इस प्रकार कहते हैं —

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिभायो ।

मोसो कहत मोल को लीन्हो तू यशुमति कब जायो ॥

कहा कहाँ एहि रिस के मारे खेलन हौं नहीं जातु ।

पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु ॥

गोरे नंद यशोदा गोरी, तुम कत श्याम शरीर ।

चुटकी दै-दै हंसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ॥

तू मोहीं को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीकै ।

मोहन को मुख रिस समेत लखि यशुमति सुनि-सुनि रीकै ॥

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत ।

सूर श्याम मों गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

कृष्ण की बाल-लीला में माखन और दधि चोरी के दो प्रसंग हैं

उनमें भी हास्य का सुन्दर विकास हुआ है । भक्त पाठक कृष्ण लीला के भेदों को जानता है और वह उन्हें चोरी से मुकरता हुआ देखकर मुसकरा देता है । गोपी यशोदा के पाम जाकर कृष्ण की चोरी का उपालम्भ देती है—

मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो जानि ।
सोई जाइ तुम्हारे लरिका लानो है पहिचानि ॥
बूझी ग्वालनि घर मे आयो नेकु न शंका मानि ।

तो उत्तर में कृष्ण कहते हैं कि मैं तो पानी में पड़ी हुई चींटियों निकाल रहा था^१ । सूरदास ने कृष्ण के बाल-मुलभ उत्तरो में प्रच्छन्न रूप से हास्य की सुन्दर अवतारणा की है । कृष्ण कहते हैं—

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सँदे मिलि मेरे मुख लपटायो ।
देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैमे कार पायो ।
मुख दधि पोछे कहत नंद नंदन दोना पीठ दुरायो ।

अथवा—

भूटेहि मोहि लगावति ग्वारो ।
खेलत में मोहि बोलि लिया है, दो भुज भरि दीनी अँकवारी ॥
मेरे कर अपने कुच धारति आपुहि चोली फारी ।
माखन आपुहि मोहि खवायो मैं कव दीनो ढारी ।
कहा जानै मेरो वारो भोरो भुकी महरि दे दे मुख गारी ।

राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग में भी सूरदास ने स्मितहास्य की व्यंजना अनेक स्थानों पर की है । बाबा नंद की बात का सहारा लेकर राधा-कृष्ण

१. (अ) सूरश्याम तब उतर बनायो चींटी काढ़त पानी ।

(ब) सुनु मैया याके गुण मोसों इन मोहिं लियो बुलाई ।

दधि में परी सेति की चींटी मोंपै सबै कड़ाई ॥

को रोक रखती हैं^१, प्रेम के कारण असावधान होकर कृष्ण-राधा की ओढ़नी ओढ़े अपने घर चले आते हैं^२ । सूरदास को हास्य-रसिकता इतनी प्रिय है कि वे स्थान-स्थान पर मौलिक कल्पना करने से नहीं चूकते । उनके इस प्रकार की मौलिक कल्पना का एक उदाहरण यह है—

मेरे आगे महरि यशोदा मैया री तोहि गारी दीन्ही ।
वाकी बात सवै मैं जानति वै जैसी तैसी मैं चीन्ही ।
तोको कही पुनि कह्यो बवा को बड़ो धूर्त वृपभानु ।
तब मैं कह्यो ठग्यो कव तुमको हंसि लागी लपटान ।

परन्तु हास्य-रस के सबसे अधिक उत्कृष्ट पद भ्रमरगीत में मिलते हैं । भ्रमरगीत आदि से अंत तक एक उपालम्भ काव्य है और इसलिए उसकी प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि उसमें हास्य-रस का परिपाक भली भाँति हो सकता है । भ्रमरगीत के हास्य-रस के अनेक उत्कृष्ट पद हैं ।

अद्भुत रस के प्रसंग सीधे भागवत से ले लिये गये हैं । उनमें कवि ने कोई विशेष मौलिक उन्मादना नहीं की है परन्तु अद्भुत रस जहाँ-जहाँ ये प्रसंग आये हैं वहाँ-वहाँ उन्होंने रस का परिपाक बड़ी निपुणता से किया है ।

(१) कर गहि पग अंगूठा मुख मेलत ।

प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि हरषि अपने रंग खेलत ।

सिव सोचत विधि बुद्धि विचारत बट वाढ़यो सागर जल फेलत ।

विड़रि चले घन प्रलय जानि के दिगपति दिग दंतिय न सकेलत ।

१. नंद बबा की बात सुनो हरि ।

मोहि छांदि के कबहुँ जाआगे ल्याऊँगी तुमको धरि ।

भब्यो भईं तुम्हें सौंप गये मोहि जान न दैहों तुमको ।

बाँह तुम्हारी नेक न छुडिहों महरि खीम्हिहैं हमको ।

२. श्यामहि देखि महरि मुसुकानी ।

पीताम्बर काके घर विसरयो बाबु दिगन की सारी आनी ।

(२) मो देखत यशुमति तेरो ढोटा अब ही माटी खाई ।

× × × ×

अखिल ब्रह्माण्ड ग्वंड की माया देखरायो मुख माहीं ।
सिंधु सुमेरु नदी वन पर्वत चकृत भई मनमाहीं ।
करते साटि गिरत नहिं जानी भुजा छाड़ि अकुलानी ।
सूर कब्यो यशुमति मुख मूदहु बलि गई सारंग पानी ।

मुरली-प्रसंग में सूरदास ने मुरली के अलौकिक प्रभाव को दिखाकर भी अद्भुत रस की सृष्टि की है ।

मुरली सुनत अचल चले ।
थके चर जल भरत पाहन विफल वृक्षहि फले ।
पय स्रवत गोधननि थन तें प्रेम पुलकित गात ।
भुरे द्रुम अकुरित पल्लव विटप चचल पात ॥
सुनत खग मृग मौन साध्यो चित्र किय अनुहारि ।
धरनि उमॅगि न माति घर मैं जती जोग विसारि ॥

सूरदास ने अद्भुत रस को उत्पन्न करने के लिये उन्हीं स्थलों पर प्रयास किया है जहाँ कथानक द्वारा अद्भुत रस की सृष्टि नहीं होती और कवित्व शक्ति को प्रयोग में लाने का अवसर मिलता है । बाल-कृष्ण के असुरवध, गोवर्धनधारण, कालीदमन और इंद्र-गर्वहरन आदि प्रसंगों में कथानक से ही अद्भुत रस की सृष्टि हो जाती है । इन स्थलों में से असुरवध जैसे स्थलों पर सूर की प्रतिभा का अद्भुत रस को प्रगट करने का अधिक अवकाश नहीं मिला है । अन्य काव्यमय स्थलों पर उन्होंने अद्भुत रस का निरूपण सफलतापूर्वक किया है ।

इन रसों के अतिरिक्त सूरसागर में अन्य रस भी आए हैं, परन्तु गौण रूप से ।

(१४८)

भयानक रस

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत ।
उल्लसत सिंधु धराधर कौण्यो, कमठ पीठि अकुलाइ ।
सेस सहस्रफन डोलन लागे हरि पीवत जव पाइ ।
बढ्यो वृच्छवर सुर अकुलाने गगन भयो उत्पात ।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात ।

वीर रस

(१)

सैन साजि ब्रज पर चढ़ि धावहिं ।
प्रथम बहाइ देऊँ गोवर्धन ता पाछे ब्रज खोदि बहावहिं ।
अहिरन करी अवज्ञा प्रभु की सो फल उनके तुरत देखावहिं ।
इन्द्रहि पेलि करी गिरिपूजा सलिल वरपि ब्रज नाँव मिटावहिं ।
वल समेत निशिवासर वरसहु गोकुल बोरि पताल पठावहिं ।

(२)

मुन मेघवर्तक साजि सेन ले आये ।
जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त ब्रजवर्त आगिवर्तक जलद संग ले आये ।
घहरात तरतरात गरात हहरात भहरात पररात माथ नाये ।
कितक ब्रज के लोग रिस करत किहि योग गिरि लियो भोग फल तुरत पैहैं ।
सूर सुरपति मुन्यो बयो जैसे लुन्यो प्रभु कहा गुन्यो गिरि सहित वैहैं ।

(३)

गह्यां कर श्याम भुज मल्ल अपने धाइ भटकि लीन्हों तुरत पटकि धरनी ।
भटक अति शब्द भयो खुटक नृप के हिये अटक प्राणन पर्यो चटक करनी ।
लटकि निखन लग्यो मटक सब भूलि गयो हटकि गयो गटक सब मीचु जागी ।
मुष्टिकै मरदि चाणूर चुरुकुट कर्यो कंस को कंप भयो उई रंगभूमि अनुराग रागी ।

इस रस का प्रसंग उस समय उपस्थित हुआ है, जब राधा व गोपियाँ कृष्ण के मथुरा से न लौटने पर निराश-सी हो करुण रस जाती हैं। राधा का चित्रण विशेष करुणापूर्ण हुआ है।

अति मलीन वृषभानु कुमारी।

हरि श्रम जल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति जो गथ हारे थकित जुवारी।
छटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि संदेश सुनि सहज मृतक भई इक विरहिन दूजे अलि जारी।
सूर स्याम विनु यों जीवति है व्रज बनिता सब श्याम दुलारी।

सूरदास के रस निरूपण पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने कोमल रसों के उद्घाटन में ही अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है। कृष्ण-कथा में पुरुष-रस-संबन्धी अनेक स्थल आते हैं परन्तु सूरदास उन्हें या तो आँख की ओट करते चले जाते हैं अथवा अनमने मन से एक दो छंद उस रस के भी लिख देते हैं। रौद्र एवं वीभत्स रस के पदों को सूरसागर में से खोज निकालना कठिन काम है। जहाँ रौद्र रस की अवतारणा हो सकती थी वहाँ उन्होंने केवल क्रोध का उल्लेख मात्र करके काम चला लिया है। राम-कथा के परशुराम-संवाद और कृष्ण-कथा के शिशुपाल-वध प्रसंग में उन्होंने रौद्र रस को स्थान ही नहीं दिया यद्यपि भागवत और वाल्मीकि उनका पथ-प्रदर्शन करते थे। वीभत्स रस सौन्दर्य भावना में आघात पहुँचाता है और कदाचित् इसीलिये सौन्दर्य-क्षणा सूरदास की प्रकृति ने उसकी उपेक्षा कर दी।

सूर की प्रकृति कोमल थी इसीलिये वे वात्सल्य रस की इतनी उच्च कोटि की उद्भावना उपस्थित कर सके। उसमें रसिकता की मात्रा भी थी जिसने उन्हें शृङ्गार रस के विशद चित्रण और उसके अन्तर्गत अनेक दशाओं के रसपूर्ण उद्घाटन में सहायता की। उनकी प्रकृति में परुष

भाव नहीं जान पड़ता। परुष रस उनकी रचना में बहुत गौण स्थान रखते हैं।

सम्भव है इसका एक और कारण भी हो। तुलसी और सूर दोनों ने राम-कथा को भी पद-वद्ध किया है। तुलसी की इस प्रकार की रचना में परुष-रसों का उद्घाटन नहीं हो सका यद्यपि उनकी प्रवृत्ति इस प्रकार के रस-निरूपण में भी उनका साथ देती थी। उन्हें भी राम के बाल-जीवन के कोमल प्रसंगों की ओर झुकना पड़ा। इसमें अनुमान यह होता है कि कदाचित् सूरदास ने जिन विशेष छंदों (पदों) का प्रयोग अपने चरित्र-नायक की कथा कहने के लिये किया उनमें प्राकृतिक रूप से परुष रसों का उद्घाटन नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त सारी कथा एक सूत्र में बँधी भी थी तथा उसकी उत्पत्ति कीर्तन के प्रसंग में हुई। यह गीतात्मकता भी परुष रसों की उपेक्षा में सहायक रही हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं।

परन्तु जिन भी रसों का उद्घाटन सूरदास ने किया है उनमें उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन पूर्ण रूप से किया है। उसमें उनकी मौलिकता का समावेश हो गया है। वियोग की जितनी अन्तर्दशायें हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है वे सब सूर के विप्रलंभ में उपस्थित हैं^१। शास्त्र में वर्णित इन दशाओं के अतिरिक्त भी अनेक दशायें सूर ने उपस्थित की हैं जिनको खोजकर श्रेणी बद्ध करने से विप्रलंभ की दशाओं की संख्या-वृद्धि की जा सकती है। मनोवैज्ञानिकता के साथ रस का पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने में सूरदास तुलसीदास से किसी प्रकार कम नहीं हैं यद्यपि उनका क्षेत्र केवल शृङ्गारिक जीवन तक ही सीमित है^२। बाल-मनोविज्ञान के

१. पं० रामचंद्र शुक्ल—भ्रमरगीत सार की भूमिका।

२. डा० रामकुमार वर्मा।

साथ वास्तव्य रस का सामंजस्य बिठाना सूरदास की मौलिकता का सबसे सुन्दर उदाहरण है ।

काव्य के गुणों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१ वर्ण-सौन्दर्य (उच्चारण सौन्दर्य), २ रूप-
२ अलंकार सौन्दर्य (छन्द), ३ भाव-सौन्दर्य (इसके अन्तर्गत भाव, रस, विचार अथवा अर्थ आते हैं) । इनमें से पहले दो का संबंध वास्तव में पठित कविता से है, तीसरे का संबंध मोटे रूप में अर्थ से है जिसे पढ़कर भी उपलब्ध किया जा सकता है ।

साधारण बात में किसी प्रकार का सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये अलंकार का प्रयोग होता है । यह बात किसी भाव, गुण (विशेषण) अथवा क्रिया के संबंध में हो सकती है^१ । शब्दालंकार वर्ण-सौन्दर्य को प्रस्फुटित करते हैं । रूप-सौन्दर्य में कुछ ऐसे शब्दालंकारों द्वारा कुछ थोड़ी सी विशेषता अवश्य आ जाती है जिनमें किसी विशेष पद अथवा उसके किसी भाग की पुनरुक्ति के साथ-साथ छंद की गति पर भी प्रभाव पड़ता है । परन्तु यों साधारणतया रूप-सौन्दर्य छंद का विषय है । २ अर्थालंकार द्वारा भाव-सौन्दर्य की पुष्टि अथवा उत्पत्ति होती है ; रस और अर्थ दोनों से ही उसका संबंध है ।

शब्दालंकारों में सूरदास ने यमक, अनुप्रास और वीप्सा का विशेष प्रयोग किया है ।

१—यमकालंकार का प्रयोग सूरदास के दृष्टिकृत संबंधी पदों में

१. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।

असौ न मन्यते वस्त्रादनुष्ठानमलंकृती । (चंद्रालोक)

अनपर्थमलंकारं

(महाराज भोज की अलंकार की परिभाषा)

२ किसी वाक्य में जब एक ही वर्ण समूह का भिन्न अर्थों में या कहीं कहीं बिना अर्थ के ही कई बार प्रयोग होता है तो यमक अलंकार होता है ।

अधिकता से मिलता है। उसके प्रयोग से वे राधा और कृष्ण के सौन्दर्य की रहस्यात्मक व्यजना कर सके हैं।

उदाहरण —

हरि सम आनन हरि सम लोचन हरि तह हरिवर आगी ।
हरिहि चाहि हरि न सोहावण हरि हरि कए उठि जागी ।

अथवा—

सारंग सम कर नीक नीक सम सारंग सरस बखाने ।
सारंग बस भय भय बस सारंग सारंग बिसमै माने ।
सारंग हेरत उर सारंग ते सारंग सुत टिग आवै ।
(अर्थ की दृष्टि से इस पद में उपमालंकार है)

२—अनुप्रास^१ ।

सूर ने अनुप्रास का प्रयोग बहुत स्वाभाविक रूपसे किया है। काव्य में ध्वन्यात्मक सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये अथवा वातावरण की सृष्टि करने के लिये।

(१) सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये

अल्प दशन कल बल कर बोलनि

(ल-कार का बाहुल्य और अधोप अल्प-प्राण वर्णों का प्रयोग)

‘ अर बराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पइया ’ ।

‘ अरवर डगमग धरधर ’

(२) (क) वातावरण की सृष्टि के लिये

बरत बन बाँस धर हरत कुश कॉम जरि उड़त है बाँस अति प्रबल वायो
अति अगिनि झार भार धुंधार करि उच्चटि अंगार भंभार छायो
वात बन पात भहरात भहरात अररात तरु महाधरणी गिरायो ।

(ख) भिरकि कै नारि दै गारि गिरिधारि तब पृष्ठ पर लातदै अहि जगायो
उठयो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि बालक गर्व अति बढ़ायो

१. एक ही ध्वनि को बार बार दुहराने से अनुप्रास अलंकार होता है।

पूँछ लीनी झटकि धरनि सों गहि पटकि फूँ कह्यो लटकि करि क्रोध फूले
करत फन घात विष जात अनुरान अति नीर जरि जात नहिँ गात परसै ।

३—वीप्सा^१ का प्रयोग भी राधा-कृष्ण के अंग-वर्णन के संबंध में हुआ है । इसके द्वारा सुन्दर वस्तु के साधारण सौन्दर्य के सहारे अधिक सौन्दर्य की व्यंजना हुई है ।

उदाहरण—

‘ राजिवदल, इन्दीवर सतदल कमल कुमेसय जाति ’

अथवा—

‘ जानु जंघ सुवरनि करभा नाहीं रम्भा तूल ’

अर्थालंकार का प्रयोग शब्दालंकार से कहीं अधिक हुआ है । सूर ने सादृश्य धर्ममूलक अलंकारों का ही प्रयोग विशेष किया है । इनमें उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप मुख्य हैं । विरोधमूलक अलंकारों के उदाहरण बहुत कम उपस्थित किये जा सकते हैं । इनमें विभावना और वक्रोक्ति आदि हैं । स्मृति-मूलक अलंकारों का प्रयोग विरोधमूलक अलंकारों से अधिक मिलता है । इनमें संदेह और स्मरण प्रधान हैं । इनके अतिरिक्त गूरदास के काव्य में मनोविज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान मिलने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का भी प्राचुर्य है ।

१—उपमा^२—गूरदास की कल्पना चित्र प्रधान होने के कारण इस अलंकार का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है । सूरसागर से इसके सहस्रों उदाहरण दिये जा सकते हैं—

१. जहाँ पर किसी बात पर विशेष बल देने के लिए अथवा अधिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए शब्द की कई अवृत्तियाँ होती हैं वहाँ वीप्सा अलंकार माना जाता है ।

२. जहाँ प्रकृत अर्थान् वणनीय विषय के किसी गुण का उत्कर्ष बढ़ाने के लिये तुलना द्वारा उसकी किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु से समानता दिखाई जाती है वहाँ उपमालंकार होता है ।

चन्द्र कोटि प्रकास मुख अचतस कोटिक भान ।
कोटि मन्मथ वारि छवि पर निरखि दीजत दान ।
भृकुटि कोटि कुदंड रुचि अवलोकनी मंधान ।
कोटि वारिज नयन वक कटाच्छ कोटिन वान ।
कंबु ग्रीवा रतन हार उदार उरमनि जान ।

अथवा—

बने हैं विसाल कमल दल नैन ।

अथवा—

भृकुटि विकट नयन अति चंचल ।
यह छवि पर उपमा इक धावत ।
धनुष देखि खजन जिमि डरपत ।
नाहिं सकत उठिवे अकुलावत ।

अथवा—

चपल मनोहर चितवनी राजहैं भ्रुव भग ।
धनुष वान बस डारि कै, होत कोटि अनंग ।

२—रूपक^१—अलंकार भी गूर को बहुत प्रिय है । इसके एक विशेष भेद सांग रूपकर का प्रयोग करने में तो सूरदास तुलसी के ही समान निपुण हैं । सांग-रूपक में एक पूरा मंश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया जाता है और इस प्रकार रूप का निर्माण होता है । सूरदास की कल्पना चित्र प्रधान होने के साथ-साथ रूप-प्रधान भी है । इसीलिये उनके काव्य में अनेक उत्कृष्ट सांग-रूपक मिलते हैं । उदाहरण —

१. जब उपमेय और उपमान का सादृश्य इतना अधिक बढ़ जाता है कि दोनों हमको एक मालूम होने लगते हैं और उसके फल स्वरूप हम उपमेय पर उपमान का आरोप कर देते हैं तो रूपक होता है ।

२. सांग रूपक में अनेक रूपक होने हैं जिनमें एक रूपक तो मुख्य रहता है और दूसरे उसके अंग-स्वरूप होते हैं ।

देखो माई सुन्दरता को सागर ।
 बुधि विवेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर ॥
 तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटिपट पत तरंग ।
 चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अँग ॥
 मोन नैन मकराकृत कुंडल भुजवल सुभग भुजंग ।
 मुकुत माल मिलि मानों सुरसरि द्वै सरिता लिये मग ॥

अथवा—

नेद नंदन वृंदावन चंद ।
 जदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद ।
 जठर कुहू ते बहिर बारि पति दिसि मधुपुरी सुछंद ।
 वसुदेव सभु सीस धरि आने गोकुल आनंद कंद ।
 ब्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरद सरस ऋतु नद ।
 उडगन सकल सखा संकरपन तम दनु कुलज निकद ।
 गोपी जन तहँ धरि चकोर गति निरखि मेटि पल द्वंद ।
 सूर सुदेस कला पोड़स परिपूरन परमानंद ।

कृष्ण के रूप-वर्णन के अतिरिक्त सूरदास ने सागर-रूपक का प्रयोग

१. राधा के वर्णन में भी इस प्रकार के रूपकों का प्रयोग हुआ है —

राधे तेरे नैन किंधी मृग वारे ।
 रहत न युगल भौह जुग जोते भजत तिलक रथडारे ।
 जदपि अलक अंजन गहि बंधे तऊ चपल गति न्यारे ।
 घंघट पर वागर ज्यों विउवन जवन करत ससहारे ।
 खुटिजा युगल नाक मोती मनि मुक्तावलि प्रवे हारे ।
 दोऊ सौंवलिये दीपिका मानों करे जात उजियारे ।
 मुरली नाद सुनत कलु धीरज जिय जानत चुचकारे ।
 सूरदास प्रभु शीक रसिक प्रिय उमग प्रान धन वारे ।

इस पद में उत्पत्ता और विभावना का समावेश है । प्रथम पंक्ति में संदेहालंकार भी है ।

रसोद्रेक के लिये भी किया है। यह रूपक का नया प्रयोग है। कालिन्दी को विरह-क्षीण गोपी का रूपक देकर सूरदास ने विरह की तीव्रता की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना की है और वियोग शृङ्गार रस को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया है—

देखियत कालिन्दी अति कारी ।

कहियो पथिक ! जाय हरि सों ज्यो भई विरह जु र जारी ।
मनो पलिका पै परी धरनि धँसी तरँग तलफ तनुभारी ।
तट वारू उपचार चूर मनो स्वेद प्रवाह पनारी ।
विगलित कच कुस कास पुलिन मनो पंकज कञ्जल सारी ।
भ्रमर मनो मति भ्रमता चहुँ दिसि फिरति है अंग दुखारी ।
निमि दिन चकई व्याज बकन मुख किन मानहुँ अनुहारी ।
सूरदास प्रभु जो जमुना गति सो गति भई हमारी ।

इसके अतिरिक्त सूर ने तुलसी की भाँति ही धार्मिक विश्वासों में समंजस्य दिखाने के लिये रूपक का प्रयोग किया है। उनके काव्य में भी 'हरिहर' पद मिलते हैं जिनमें विष्णु (कृष्ण) और शिव का चित्र एक साथ उपस्थित किये जाने की प्रणाली ही मिलती है। तुलसीदास और विद्यापति में भी इस प्रकार के पद मिलते हैं।

वरनों वाल वेप मुरारि ।

थकित जित तित अमर मुनिगन नंदलाल निहारि ।
केस सिर विन पवन के चहुँ दिसा छिटके भारि ।
भीम पर धरे जटा मानो रूप किय त्रिपुरारि ।

अथवा—

मखीरी नंद नंदन देखु ।

धूरि धूसर जटा जूटनि हरि किये हर भेषु ।
नील पाट पिरोइ मनगन फनिस धोखो जाइ ।
खुनखुना कर हँसत मोहन नचत डमरु बजाइ ।

जलज माल गोपाल पहिरे कहीं कहा बनाइ ।

मुंड माला मनोहर गर ऐसि शोभा पाइ ।

इस प्रकार के पदों से यह प्रगट होता है कि उस युग में धर्म और दर्शन के सामजस्य की एक प्रवृत्ति चल रही थी ।

जिस प्रकार दृष्टिकूट के पदों में सूरदास ने रहस्यात्मक सौन्दर्य की व्यंजना यमक के द्वारा की है, उसी प्रकार रूपक द्वारा भी उन्होंने सौन्दर्य की रहस्यमय सृष्टि की है और उसकी अलौकिकता की ओर इंगित किया है । राधा का अनुपम वाग के रूप में यह साग-रूपक देखिये—

अदभुत एक अनूपम वाग ।

जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग ।

हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।

रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ।

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक, पिक मृगमद काग ।

खजन धनुष चद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ।

अंग अंग प्रति और और छुवि, उपमा ताको करत न त्याग ।

सूरदास प्रभु, पियहु सुधारस, मानहुँ अधरनि के बड़ भाग ।

परन्तु सांग रूपक का सबसे उत्कृष्ट प्रयोग दार्शनिक विचारों को स्पष्ट करने में हुआ है—

अब के माधव मोहिं उधारि ।

मगन हौ भव अबु निधि में कृपा सिधु मुरारि ।

नोर अति गंभीर माया लोभ लहरि तरंग ।

लिये जात अगाध जलमें गहे ग्राह अनंग ।

मीन इन्द्रिय अतिहिं काटत मोट अध सिरभार ।

पग न इत उत धरन पावत उरभि मोह सेवार ।

काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति भकभोर ।

अथवा—

अब मोहिं भोजत क्यों न उबारो ।
दीन बंधु करुनामय स्वामी जन के दुःख निवारो ।
ममता घटा मोह की वृद्धे सलिता मैंन अपारो ।
बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत गुरु जन ओट अधारो ।
गरजन क्रोध लोभ को नारो सूभत कहूँ न उबारो ।

सूर ने स्वयं अपने को भी सांग-रूपक बनाकर उपस्थित किया है^१ ।

३—अतिशयोक्ति^२—रूपकातिशयोक्ति^३ का प्रयोग अनेक प्रकार से किया गया है ।

(क) राधा कृष्ण के नख शिख वर्णन में—

नँद नदन मुख देखो माई ।

खजन मीन कुरंग भृङ्ग वारिज पर अति रुचि पाई ।

(ख) मुरली के प्रभाव वर्णन में—

जब मोहन मुरली अधरधरी ।

दुरि गये कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि विसरी ॥

उड़पति, विद्रुम, विम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी !

१ (क) द्रौपदी का रूपक—

माया कपट रूप कौरव दल लोभ मोह मदभारी ।

काम दुशासन गहे लाज पट मरन अधिक पति मेरी ।

(ख) नर्तक का रूपक

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल ।

२. जहाँ प्रकृत के वर्णन में अतिरंजना की जाय वहाँ अतिशयोक्ति होती है ।

३. रूपकातिशयोक्ति में किसी वस्तु के रूप के संबंध में अतिशयोक्ति की जाती है । रूपक की आरोप क्रिया में ही अतिशयोक्ति उपस्थित होती है ।

(ग) विरह चित्रण में—

तब ते इन सवहिन सचु पायो ।
जब ते हरि सन्देश तिहारो सुनत तवारी आयो ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।
फूले मिरगा चौंकि चखन ते हुने जो बन विसरायो ।
ऊंचे वैटि विहंग सभा विच कोकिल मंगल गायो ।
निकसि कदरा ते केहरि हू माथे पूछु हिलायो ।
गहवर ने गजराज निकसि कै अग अंग गर्व जनायो ।
सूर' बहुरि हौ कह राधा कै करिहौ वैरिन भायो ।

४—उत्प्रेक्षा^१ - सूर-साहित्य उत्प्रेक्षाओं से भरा पड़ा है। उपमा के बाद उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। उत्प्रेक्षा उपमा से कुछ अधिक कठिन-साध्य है चूँकि उसमें उपमान और उपमेय में बल-पूर्वक संबंध स्थापित करना पड़ता है। परन्तु सूर के लिये यह साधारण बात है। सूर ने राधा-कृष्ण के नेत्रों के संबंध में सबसे अधिक उत्प्रेक्षाएँ की हैं। और उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जिसमें नवीनता न हो—

(१) मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुखदेत ।
मनु ससि स्रवत मुधानिधि मोती उडगन अरवलि समेत ॥

(२) नीरे निरजन लोचन राता ।
सिन्दुर-मण्डित (जनु) पंकज पाता ॥

(३) चचल लोचन, वंक निहारनि,
खंजन शोभा ताय ॥
जनु इन्दीवर, पवने ठेलल, अली भरे उलटाय ।

(४) लोचन जनु थिर भृङ्ग अकार । मधुमातल किये उड़इ न पार ॥

१. जहाँ कल्पना द्वारा उपमेय में उपमान की बलपूर्वक सम्भावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है ।

इसके अतिरिक्त सूर ने कृष्ण के अन्य अंगों पर भी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ कही हैं—

(१) सुन्दर कर आनन समीप अतिराजत इहि आकार ।

मनु सरोज बिधु नैर बंचि करि लिये मिलत उपहार ॥

गिरि-गिरि परत बदन तें उर पर द्वै द्वै दधिसुत विंदु ।

मानहुँ सुभग सुधाकन बरपत लखि गगनागन इन्दु ॥

(२) कटि तट पीत बसन सुदेस ।

मनहुँ नवघन दामिनी तजि रही सहज सुभेस ॥

कनक मनि मेखला राजत सुभग स्यामल अंग ।

मनहुँ हंस रसाल पंगति नारि बालक संग ॥

५—व्यतिरेक १

देखि रे हरि के चंचल नैन ।

राजिव दल, इन्दीवर, सतदल, कमल कुसेसय जाति ।

निंसि मुद्रित प्रातर्हि वे विकसत, ये विकसत दिन राति ॥

६—प्रतीप २

(१) उपमा हरि तन देखि लजाने ।

कोऊ जल कोउ बन में रहे दुरि कोउ गगन समाने ॥

मुख निरखत ससि गयो अम्बर को तड़ित दसन छुवि हेरो ।

नील कमल कर चरन नयन उर जल में कियो बसेरो ॥

१. जहाँ उपमेय उपमान में से उपमेय को बढ़ा कर या उपमान को छोटा कर कहा जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है ।

२. प्रतीप अलंकार में भी उपमेय और उपमान का उसी प्रकार संबंध स्थापित किया जाता है जिस प्रकार व्यतिरेक में परन्तु उसमें सादृश्य को छिपाने की चेष्टा की जाती है जिसके कारण एक अंग दूसरे अंग के अयोग्य समझाया जाता है ।

भुजा देखि अहिराज लजाने विवरनि पैठे आइ ।
कटि निरखत कै हरि उरमान्यो वरु वन रहे दुराइ ॥

× × × ×

७—विभावना^१

(१) मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।

सुनरी सखी जदपि नद नंदन नाना भांति नचावति ॥

(२) जाकी कृपा पंगु गिरि लंगै अंधरे को सब कुछ दरसाई ।

बहिरौ सुनै गंगू पूनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई ॥

८—निदर्शना^२—विनय-संबंधी पदों में इस अलंकार का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है ।

(१) सो बल कहाँ गयो भगवान ।

जेहि बल मीन रूप जल चाह्यो लियो निगम हरि असुर पुरान ॥

(२) स्याम कमल पद नख की सोभा ।

जे नख चंद्र इद्र सिर परसे सिव विरंचि मन लोभा ॥

जे नख चंद्र सनक मुनि ध्यावत नहिं पावत भरमाहीं ।

ते नख चंद्र प्रगट ब्रज युवती निरखि निरखि हरखाहीं ॥

× × × ×

सूरस्याम नख चंद्र विमल छवि गोपी जन जिमि दरसत ।

१. जहाँ पर कारण न होने पर भी उसका फल दृष्टिगोचर होता है वहाँ विभावना अलंकार होता है ।

२. जहाँ दो ऐसी वस्तुओं का जिनमें परस्पर संबंध असम्भव प्रतीत होता है वाचक की सहायता से अथवा वाचक के बिना ही इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि उन दोनों में समानता अथवा संबंध प्रतीत होने लगे वहाँ निदर्शना अलंकार होता है ।

६—सन्देह^१ (सौन्दर्य की अलौकिकता की व्यंजना के लिये प्रयोग हुआ है) ।

(१) हँसत-दसन एक सोभा उपजति उपमा जात लजाई ।

किधौं वज्र कन लाल नगन खचि तापर विद्रुम पाति ॥

किधौं सुगम वंधूक सुमन पर भूलकत जलकन काँति ।

किधौं अरुन अंबुज बिच वैठी सुन्दरताई आइ ॥

(२) हरि मुख किधौं मोहिनी माइ ।

१०—स्वभावोक्ति^२ इस अलंकार का प्रयोग कथा-वस्तु के प्रकाशन में विशेष रूप से हुआ है । बाल-लीला के सारे प्रसंग का काव्य स्वभावोक्ति मात्र है । उसमें बाल-कृष्ण तथा माता यशोदा के स्वभाव का प्रदर्शन उनकी उक्तियों द्वारा सफलता से किया गया है । स्वभावोक्ति का संबंध मनोविज्ञान से है । जहाँ-जहाँ कोई मनोविज्ञानिक प्रसंग आया है वहाँ रस का परिपाक इसी अलंकार द्वारा हुआ है ।

(१) किलकत कान्ह घुटुखन आवत ।

मनिमय कनक नंद के आंगन मुख प्रतिविंब पकरिवे धावत ॥

कवहुँ निरखि हरि आप छाँई को पकरन को चित चाहत ।

किलकि हँमत राजत द्वै दँतिया पुनि-पुनि तिह अवगाहत ॥

(२) जँवत कान्ह नंद इक ठौरे ।

कळुक खात लपटात दुहूँ कर बालक हैं अति भोरे ॥

बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टुक टोरे ।

तीछन लगी नयन भरि आये रोवत बाहर दोरे ॥

फूँकति बदन रोहिनी माता लिये लगाइ अँकोरे ।

१. जहाँ किसी वस्तु को देखकर उसमें उसी के सादृश्य अन्य अनेक वस्तुओं का सन्देह होता है ।

२. व्यक्ति अथवा पदार्थ की किसी विशेषता के स्वाभाविक वर्णन को ही स्वभावोक्ति कहते हैं ।

ऊपर हम कह चुके हैं कि सूरदास ने सादृश्य-मूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है उनमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक प्रधान हैं। इसके अतिरिक्त उनका स्वभावोक्ति का प्रयोग भी अद्वितीय है। सूरदास के काव्य के सहज सुगम होने का मूल कारण यही है कि उन्होंने अनेक कठिन अलंकारों का प्रयोग नहीं किया।

अलंकारों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि सादृश्य मूलक अलंकारों का जन्म पहिले हुआ। वे ही मनुष्य के लिये सबसे अधिक नैसर्गिक हैं। प्राचीन महाकाव्यों में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक आदि इन्हीं सरल और सामान्य अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इसी में वे प्रत्येक युग के मनुष्य को प्रभावित करते रहे हैं। सरल अलंकारों का प्रयोग सूर के काव्य को जन-साधारण के निकट जल्द पहुँचा देता है। उसका विशेष आनन्द लेने के लिये रीति का पाठ पढ़ने की आवश्यकता नहीं। स्वभावोक्ति अलंकार भी जन-साधारण को सहज है क्योंकि उसका प्रदर्शन प्रत्येक दिन के परिचित जीवन-चित्रों के निर्माण करने में होता है।

परन्तु केवल नाम और उदाहरण दे देने से ही सूरदास के अलंकारों का पूरा-पूरा मूल्य आँका नहीं जा सकता। इसके लिये हमें यह भी देखना होगा कि उनके द्वारा किस प्रकार के चित्र उपस्थित होते हैं, उनसे किस प्रकार स्थिरता और गति का प्रदर्शन किया गया है, वे किस प्रकार चित्रपटी को विशाल बना देते हैं, और वे किस प्रकार अनेक प्रकार के रंगों और रूपों का मेल उपस्थित करते हैं।

उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ उपस्थित की जाती हैं—

(१) लकुटि के डर डरन जैसे सजल शोभित डोल ।
नील नीरज दृग लसैं मनौँ ओसकन लोल ॥

(२) मुख लुवि देखिहे नंदघरनि ।

शरद-निशि के अश्रु अगनित इन्द्र आभा हरनि ॥

(३) जलज मंजुल लोल लोचन सरद चितवन दीन ।

मनहुँ खेलत हैं परस्पर मकरधुजहैं मीन ॥

सूर की कविता की एक विशेषता उसकी चित्रमयता है । इसके संबंध में हम अन्यत्र विशेष रूप से कह चुके हैं । यहाँ ३ रूप सौन्दर्य सूरदास के द्वारा उपस्थित किए हुये रूप के विषय में विचार किया जायगा ।

कवि ने अधिकतर राधा-माधव के ही सौन्दर्य के ही संबंध में लिखा है । वही उनके उपास्य भी हैं । दूसरों से प्रयोजन ही क्या ? परन्तु राधा-कृष्ण के वर्णन से सारा सूरसागर ही भरा पड़ा है ।

सूर के कृष्ण सुन्दरता और सौकुमार्य के सागर^१ हैं । उनके अंगों की शोभा का वर्णन करते हुए सूरदास कहते हैं ।

तरणी निरखि हरि प्रति अंग ।

कोउ निरखि नख इदु भूली कोउ चरण युग रंग ।

कोउ निरखि वपु रही थकि कोउ निरखि युग जानु ।

कोउ निरखि युग जंघ शोभा करति मन अनुमान ।

कोउ निरखि कटि पीत कल्लनी मेखला रुचि कारि ।

कोउ निरखि हृद नाभि की छवि डारि मन तन वारि ।

रुचिर रोमावली हरि की चारु उदर सुदेश ।

मनों अलि सेनी विराजत बने एकहि भेष ।

रही एक टक नारि ढाढ़ी करत बुद्धि विचार ।

सूर आगम कियो नभते यमुन सूळम धार ।

इस पद में हम सूर के रूप वर्णन के सभी अंगों से परिचित हो जाते हैं । सूर का रूप-वर्णन

(१) उपमा के द्वारा,

(२) उत्प्रेक्षा के द्वारा,

१. देखो माई सुन्दरता को सागर ।

(३) प्रभाव के चित्रण द्वारा,

और (४) साधारण वर्णन के द्वारा हमारे सामने उपस्थित होता है । जिस पद को उद्धृत किया गया है उसमें कृष्ण का सौन्दर्य विशेषतः तरुणियों पर पड़े हुए प्रभाव के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है ।

इन ढंगों के अतिरिक्त एक और ढंग का प्रयोग भी कवि करता है । निम्नलिखित पद में उसने कृष्ण के वचनों की माधुरी का वर्णन करके कृष्ण के सौन्दर्य की व्यंजना की है :—

सुन्दर बोलत आवत नैन ।

ना जाने तेहि समय सखीरी सब तन सवन की नैन ।

रोम रोम में शब्द सुरति की नख सिख ज्यों चख ऐन ।

एते मान बनी चंचलता सुनी न समझी सैन ।

जब तकि जकि है रही चित्र-सी पल न लगत चित चैन ।

सुनहु सूर यह साँच कि विभ्रम सपन किधौं दिन रैन ।

इस संभ्रम की अवस्था को द्रष्टा में उपस्थित करके अथवा अंगों में देखने वाली की तन्मयता का वर्णन करने से भी रूप की उत्कृष्ट सुन्दरता की व्यंजना हो जाती है :—

(१) ऐसी दशा भई री इनकी स्याम रूप में मगन रये री ।

सूरदास प्रभु अगनित सोभा ना जानौं केहि अंग छये री ।

(२) जो जेहि अंग सो तहाँ भुलानी ।

सूर श्याम गति काहू न जानी ॥

परन्तु सूरदास के अधिकांश पदों में रूप-सौन्दर्य उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा ही प्रगट हुआ है । वह इसलिए प्रभावशाली है कि, एक, उसमें अंग-प्रत्यंग का विस्तृत वर्णन है ; दूसरे, अनेक अवस्थाओं में अनेक पदों में सहस्रों बार एक ही तरह का वर्णन है, केवल उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ बदल दी गई हैं ; तीसरे, इस संबंध में सूर ने जो उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ की हैं वह अत्यंत सजीव, चित्रमय और प्रभावशाली हैं । सूर-सागर के दशम स्कंध से अनेक उदाहरण लिए जा सकते हैं :—

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी ।
कटि कल्लनी पीताम्बर ओढ़े हाथ लिए भौरा चकडोरी ।
मोर मुकुट कुंडल श्रवणन वर दशन दमक दामिनि छवि थोरी १ ।
कृष्ण की भाँति राधा का भी इसी प्रकार का वर्णन देखिए :—
.....नयन विशाल भाल दिए रोरी ।
नील वसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुचिर भूकभोरी ।

परन्तु सूर जय उपमा उत्प्रेक्षाओं में राधा-माधव का वर्णन करते हैं तो वह इससे भा उत्कृष्ट सौन्दर्य की रचना करते हैं । पिछले दो पद हमने इस स्थान पर इसलिए दिए हैं जिससे आगे आने वाले पदों के साथ उनकी तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाए कि सूर चाहे साधारण वर्णन द्वारा निरलंकार भाषा में सौन्दर्य की रचना करें, चाहे उपमाओं-अलंकारों के घटाटोप से ढक कर, वह सदैव सफल होते हैं । उनके चित्र सदैव उज्ज्वल, स्पष्ट और अलौकिक-से होते हैं ।

उत्प्रेक्षा द्वारा उपस्थित राधा का एक चित्र इस प्रकार है—

वरणों श्रीवृषभानु कुमारी ।
चित दे मुनहु श्याम सुन्दर छवि रति वाहीं अनुहारि ।
प्रथमहिं सुभग श्याम बेनी की शोभा कही विचारि ।

१. अन्य उदाहरण ।

कन्हैया हेरि दे सुभग सांवरे गात की शोभा कहत लजाऊँ ।
मोरपंख सिर मुकुट की मुख मटकनि की बलि जाऊँ ।
कुंडल लोल कपोलनि माँई विहसति चितहिं चुरावै ।
दशन दमक मोतिन्ह सर ग्रीवा शोभा कहत न आवै ।
उर पर पदिक कुसुम बनमाला घंग धुकधुकी विराजै ।
चित्रित वाहु पौंचिआ पाँचे हाथ मुरलिया छाजै ।
कटि पट पीत मेखला मुक़लित पाहन नूपुर सोहै ।
आस पास बर ग्वाल मण्डली देखत त्रिभुवन मोहै ।

मानो फनिंग रह्यो पीवन को शशि मुख सुधा निहारि ।
कहिए कहा शीश सेंदुर को कितौ रही पचि हारि ।
मानो अरुन किरनि दिनकर की पसरी तिमिर विहारि ।
भ्रकुटी विकट निकट नैननि के राजत अति वर नारि ।
मनहुँ मदन जग जीति जेरकरि राख्यो धनुष उतारि ।
ता विच बनी आइ केसरि की दीन्ही सखिन सँवारि ।
मानो बंदि इंदु मंडल में रूप सुधा की पारि ।
चपल नैन नासा विच शोभा अधर सुरंग सुनारि ।
मनो मध्य खंजन शुभ वैद्यो लुब्धो विष विचारि ।
तरिवन सधर अधर नक वेसरि चिबुक चारि रुचि कारि ।
कंठसरी दुलरी तिलरी पर नहिँ उपमा कहूँ चारि ।
सुरंग गुलाब माल कुच मण्डल निरखत तन मन वारि ।
मानो निशि निर्धम अग्नि के तप बैठो त्रिपुरारि ।

सूरसागर स्क० १०—पद ८३

दूसरा चित्र देखिए :—

प्रिय मुख देखो श्याम निहारि ।
कहि न जाइ आनन की शोभा रही विचारि विचारि ।
क्षीरोदक धूँघट हातो करि सन्मुख दियो उधारि ।
मनो सुधाकर दुग्ध सिंधु ते करयो कलंक पखारि ।
मुक्ता मांग शीश पर शोभित राजत दुहि आकारि ।
मानो उडगन जानि नवल शशि आये करन जुहारि ।
भाल लाल सेंदूर विंद पर मृग मद दियो सुधारि ।
मनो वंधूक कुसुम ऊपर अलि बैठो पंख पसारि ।
चंचल नैन चहूँ दिशि चितवत युग खंजन अनुहारि ।
बेसरि के मुक्ता में भाई करन विराजत चारि ।
मानो सुर गुरू शुक्र भौम शशि चमकत चंद्र मभारि ।

इस प्रकार के चित्रों से सूरसागर भरा पड़ा है। रूप-सौन्दर्य की इतनी सुन्दर सृष्टियाँ संसार के किसी भी महाकाव्य में विरल हैं। सूरदास को भगवान के विभिन्न रूपों से इतना प्रेम है कि वह उनकी प्रत्येक मुद्रा का विस्तृत वर्णन करते हैं और अपनी सारी सहृदयता और प्रतिभा का प्रयोग करते हैं। उन्होंने भगवान के त्रिभंगी रूप को सैकड़ों पदों में अंकित किया है। राधा-माधव के परस्पर प्रेम-प्रदान करते हुये अनेक उत्कृष्ट चित्र कदाचित् सूरदास ने इसीलिए लिखे हैं कि उनकी कल्पना नए-नए रूपों की सृष्टि करने हुये थकती नहीं। सूर की सौन्दर्यात्मक प्रवृत्ति का कारण एक कवि-आलोचक ने इस प्रकार दिया है—

“पुष्टि मार्ग का रूप बाल-कृष्ण की आराधना में होने के कारण कला-प्रियता ही पुष्टि मार्ग की कविता की प्रवृत्ति हो गई है। गीत गोविंद का कृष्ण-चित्रण भी शृङ्गार रसात्मक होने के कारण सूर की कविता पर कलात्मक प्रभाव डालता है। अकबर के राज्य काल की कला प्रियता ने भी संभवतः सूर को सौन्दर्य की उपासना में सहायता दी हो”^१। परन्तु यदि यह सच सिद्ध किया जा सके कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, बाद में अंधे हो गए थे तो इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी उपस्थित किया जा सकता है। अंधे सूर ने चित्रों, रूपों और रङ्गों में कृष्ण काव्य को उपस्थित करके नेत्र सुख की पूर्ति की। इसके अतिरिक्त काव्य के नायक-नायिका का विशद वर्णन वाञ्छनीय भी था। सूरदास के नायक-नायिका तो अद्वितीय थे इससे उन्होंने अपने ऊपर पुनरुक्ति का बंधन भी नहीं लादा।

उधर कृष्ण का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसके वर्णन का अंत ही नहीं हो सकता। प्रत्येक क्षण में उसमें नई सुन्दरता का विकास होता है—

१. डा० रामकुमार वर्मा : हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास
पृ० ६४५।

सखीरी सुंदरता को रंग ।

छिन छिन माहिं निरख परियत है कमल नयन को रंग ।

श्याम सुभग के ऊपर वारों आली कोटि अरंग ।

सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई मति पंग ।

सूरदास के कृष्ण सौकुमार्य की मूर्ति हैं । बालक कृष्ण का वर्णन करते हुये सूरदास लिखते हैं—

अति सुकुमार डोलत अगन ही परिकाहू न जनावै हो ।

इस प्रकार की सुकुमारता श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में आदि में अंत तक मिलती है । कृष्ण वयस्क हो जाते हैं परन्तु सूरदास उन्हें सुकुमार किशोर के आगे और कुछ नहीं सोचते । गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में बंदी हो गईं और कृष्ण उनसे छेड़ छाड़ करने लगे परन्तु यशोदा के साथ सूरदास यह भी नहीं मानते हैं—

मेरो हरि कहँ दशहि बरस को तुम्हरी यौवन मद उदमाती^१ ।

पुष्टिमार्ग में कृष्ण का बाल और कैशोर चरित्र ही गेय और ध्येय था, अतः सूरदास ने जीवन भर बाल-कृष्ण की उपासना की । सच तो यह है कि उनके कृष्ण आयु भर बालक रहे और वह (सूरदास) स्वयम् जीवन भर बालक बने रहे । यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी हुई है कि कृष्ण चारणुर मुष्टिक के सामने खड़े होते हैं, तब भी वे सुकुमार बालक हैं, सयाने नहीं—

ये तो बालक अजान देखौं उनके सयान । काल यवन की सेना को नष्ट करके जब वह मुचकुन्द के सामने आते हैं तब भी उनके रूप से शौर्य और ऐश्वर्य के स्थान पर सुन्दरता और सुकुमारता ही फूटती है^२ ।

१. तुम तरुणी हरि तरुण नाहिं मन अपने गुनि लेहु ।

तथा अन्य पद—

२. तब पूछ्यो तुम कौन रूप हो कौन देव अवतार ।

अब लौं कहुँ देखे नाहीं मैं तुम अति हो सुकुमार ॥

सूरदास की कवि-प्रतिभा प्रेम, सौन्दर्य और सौकुमार्य के चित्रण के लिए अद्वितीय है। उन्होंने कृष्ण को अपने मन के अनुसार गढ़ा है। भागवतकार ने कृष्ण के व्यक्तित्व को किसी प्रकार ढाला हो, सूरदास को इससे कोई मतलब नहीं। उनके कृष्ण बालकों की लीला करते हैं। किशोर होने पर सखाओं के साथ लड़ते-भगड़ते-खेलते-खाते हैं और उसी अवस्था में तरुण प्रेमियों की तरह गोपियों और राधा से प्रेम करते हैं पर वे किशोरावस्था से आगे नहीं बढ़ते। किशोर कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये सूरदास अघाते नहीं। मध्ययुग के उपासकों, भक्तों और कवियों के सामने सूरदास ने राधा-कृष्ण के युगल-चरित्र कथा-कीर्तन और काव्य के विषय के लिए उपस्थित किये थे। सूरदास के चरित्र-चित्रण के संबंध में हम अन्यत्र विचार कर चुके हैं। परन्तु चरित्र-चित्रण के साथ ही सूरदास ने अन्य अनेक प्रकार से भी राधा-कृष्ण के व्यक्तित्व को पुष्ट किया। जहाँ राधा-कृष्ण की लीला भक्तों और कवियों के लिए मनोहारिणी थी वहाँ सूरदास का उपस्थित किया हुआ उनका रूप-सौन्दर्य भी कम आकर्षक नहीं था। सूरदास के रूप-वर्णन ने चरित्र-चित्रण को भी और विशेष रूप से पुष्ट किया। तत्पश्चात् वह स्वयं कविता का विषय बन गया। परवर्ती कवियों ने राधा-कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते समय बार-बार सूरदास की ओर मुड़ कर देखा है। वस्तुतः सूरदास के चित्र इतने पूर्ण भी हैं कि यदि उनके नायक की लीला के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा जाता तो भी उनका व्यक्तित्व पुष्ट रहता। उदाहरण के लिए कृष्ण का एक चित्र इस प्रकार है—

मोहन वदन विलोकत अँखियन उपजत है अनुराग ।
 तरनि ताप तलफत चकोरगति पिवत पियूप पराग ।
 लोचन नलिन नये राजत रति पूरन मधुकर भाग ।
 मानहु अलि आनंद मिले मकरंद पिवत रति फाग ।
 भँवरि भाल भृकुटि पर कुमकुम चंदन विंद विभाग ।
 चातक सोम सक्रधनु धन में निरखत मनु वैराग ।

कुंचित केस मयूर चंद्रिका मंडल सुमन सुपाग ।
 मानहुँ मदन धनुष-सर लीन्है बरसत है बन बाग ।
 अधर विंब विहँसान मनोहर मोहन मुरली राग ।
 मानहु सुधा-पयोधि घेरि घन ब्रज पर बरसन लाग ।
 कुंडल मकर कपोलनि झलकत श्रम सीकर के दाग ।
 मानहुँ मीन मकर मिलि क्रीड़त सोभित सरद तड़ाग ।
 नासा-तिलक प्रसून पदवि पर चिबुक चारु चितरवाग ।
 दाडिम दसन मंदगति मुसकनि सोहत सुर नर नाग ।

सूरसागर की अत्यन्त उत्कृष्ट विशेषता उसके पदों का गीति-माधुर्य है । पं० रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि सूरसागर

४ गीति-माधुर्य अवश्य किसी प्राचीन समय से चली आती हुई

लोक गीत-पद्धति का ही विकसित रूप है । हिन्दी साहित्य की भूमिका में इस बात को स्वीकार करते हुये पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ब्रज देश में अपभ्रंश काल में बसने वाली आभीर जाति और उनके लौकिक-प्रेम-विषयक गीतों का उल्लेख किया है । जो हो, यह निश्चित है कि सूरदास ने पद अथवा गीति-काव्य का अन्वेषण नहीं किया । संतों, नाथ सम्प्रदाय के साधुओं और सूर के आविर्भाव के कुछ पहले मैथिल कवि विद्यापति ने पद-साहित्य को विशेष रूप से भर दिया था । पद-साहित्य के छंदों और लोक-गीतों के छंदों में असदृश समानता साफ दिखाई पड़ती है । अतः यह अनुमान होता है कि प्रत्येक प्रान्त के लोक गीतों से एक प्रकार की साहित्य-छंद शैली विकसित हुई । सूर अवश्य ही अपने प्रांत के लोक-साहित्य से परिचित थे और उन्होंने अनेक लोक छंदों का प्रयोग किया होगा । परन्तु भाषा और साहित्य की दृष्टि से उन्होंने लोक-गीतों का परिमार्जित रूप उपस्थित किया, यह उनकी विशेषता है ।

अब तक साहित्य में पदों को प्रयोग अधिकतः निर्गुण भक्तों की साधना को प्रकाशित करने के लिए ही हुआ था । सगुण भक्तों में

विद्यापति और उमापति ही ने उनका थोड़ा बहुत प्रयोग किया था " उत्तर-पश्चिम भारत में कृष्ण लीला वर्णन करने के लिए सूरदास ही पहले पहल इनका प्रयोग किया। जो पद निर्गुण उपासना को वह करते आ रहे थे उन्हें सगुण रस से सरस करना सूरदास का ही का था"१।

पुष्टि-मार्गी सम्प्रदाय में नैमित्तिक कार्यों की प्रधानता थी और प्रत्येक कर्म के साथ गीत-वादन का संबंध था। प्रातः काल होने पर कृष्ण को जगाया जाता, उनको खिला-पिला कर बन भेज दिया जाता, दोपह के समय कृष्ण के दर्शन नहीं, हो सकते थे। भक्त कहते—'कन्हैय गोचारण के लिये बन गये हैं। फिर भिन्न ऋतुओं पर फाग आदि व व्यवस्था की जाती। ऐसे प्रत्येक अवसर पर महाप्रभु किसी भक्त-कवि को रचना करने की आज्ञा देते और वह तानपूरा छेड़ता हुआ गीत गाता। इस प्रकार अधिकांश कृष्ण-साहित्य गान के स्वरों पर लिखा गया उसका उद्देश्य नैमित्तिक कर्मों की पूर्ति थी जिनकी सम्प्रदाय में विस्तृत व्यवस्था थी।

परन्तु भक्तों की अपनी आत्म-प्रेरणा का भी स्थान अवश्य था पदों में गीतात्मकता की पराकाष्ठा हो जाती है और गीत आत्मा की सबसे मुक्त उड़ान है। पुष्टि-मार्गी भक्ति की परिणिति तन्मयासक्ति में थी अतः कवि स्वयम् या तो भक्ति में विभोर होकर लिखता या पद-गान करते समय उच्च श्रेणी की आसक्ति को अपने भीतर उत्पन्न करने का चेष्टा करता। इस प्रकार उसे गान और गीति-प्रधान पदों का माध्यम ही अधिक सुगम जान पड़ता।

यह भी सम्भव है कि ब्रज में कृष्ण-भक्ति-संबंधी पदों का अस्तित्व लोक-गीतों के रूप में हो और भक्तों को उनसे सहारा मिला हो अथवा उनको इस रूप में जन-साधारण को पहुँचाने की प्रेरणा मिली हो। इस

बंध में यह ध्यान रखना होगा कि पद प्रचलित लोकछंद थे और लल्लाभाचार्य से गुरु-दीक्षा लेने से पहले सूरदास पद ही गाया करते थे ।

सूरदास के पदों का गीति माधुर्य्य छन्द, शब्द-चयन, भाव-सौन्दर्य्य, यंजना और अर्थ-माधुर्य्य इन सभी काव्यांगों के मेल से सुन्दर बन का है ।

जो सूरदास को सम्पूर्ण सुबोधिनी स्फुरी सो श्री आचार्य जी महा
प्रभू ने जान्यो जो लीला को अभ्यास भयो पाछे
५ छंद श्री सूरदास जी ने नंद महोत्सव कियो सो श्री
आचार्य जी महाप्रभू के आगे गायो सो पद—

ब्रज भयो महर के पूत जब यह बात सुनी^१ ।

इसमें पूत के आगे यति का स्थान है और छन्द की गति ऐसी है के उसमें प्रवाह उत्पन्न हो गया है । पद का पिछला चरण पहले चरण में अधिक छोटा होने के कारण एक विचित्र ध्वनि-सौन्दर्य्य उपस्थित करता है । चौरासी वार्ता के अनुसार सूर की गाई हुई कृष्ण-लीला का यह पहला पद है परन्तु उसका विन्यास अद्भुत है । नीचे हम कुछ पदों की गीतात्मकता को प्रगट करेंगे ।

(१) माई / आजु तो बधाई बाजै / मंदिर महर के ।
फूले फिरें गोपी-ग्वाल / ठहर-ठहर के ॥
फूलीं धेनु / फूले धाम / फूलीं गोपी अंग-अंग ।
फिर फूले तरुवर / आनंद लहर के ॥

(२) नैन सलोंने श्याम हरि / कब आवहिंगे ।

वै जो देखे-देखे / राते-राते / फूलन फूले डार ॥
हरि बिनु फूल भरी सी लागत / भरि भरि परत अंगार ।
फूल बिनन ना जाऊँ सखीरी / हरि बिनु कैसे फूल ।

सुन री सखि / मोहिं राम दुहाई / लागत फूल त्रिशूल ।

(गीत के स्थायी की गति शांत है, अन्तरे की गति तीव्र है । भिन्न-भिन्न चरणों में यति की संख्या और स्थान-भेद होने के कारण गीत तन्मयासक्ति को अभिव्यंजित करने के लिए उत्कृष्ट बन पड़ा है) ।

भोर भयो / जागो नंद-नंद ।

तात / निशि विगत भई / चकई आनंद भई / तरनि से चंद / भयो मंद ।
तम चुर खग रोर / अलि करै तब शोर / वेगि मोचन करहु शुभ मंगल कंद ।

(इस गीत में भई और मई, चंद और मंद, शोर और रोर की अनुप्रास मिलाकर मध्यानुप्रास^२ की सृष्टि की गई है । एक ही पंक्ति में यति के इतने अधिक स्थान लेने एवं उनमें मध्यानुप्रास की उपस्थिति ने लुंद को सागर-हिल्लोल का रूप दे दिया है शब्द जैसे हिंडौले में भूल रहे हों) ।

“चौरासी वार्ता” पढ़ने से सूरदास के समय की ब्रजभाषा पर थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है । यदि लोक-गीतों में यही

ई शब्द चयन भाषा प्रयोग में आती होगी तो उनमें सरसता और सहृदयता के लिए इतना स्थान न रहता होगा ।

“वार्ता” की भाषा को काव्योपयोगी बनाना और उसे माधुर्य से भर देना सूर का ही काम था । सूर का शब्द-चयन अद्वितीय है । उन्होंने माधुर्य को कहीं भी अपने हाथ से जाने नहीं दिया । प्रत्येक अवसर पर वह भाव और रस के प्रकाशनार्थ सबसे उपयुक्त शब्द का प्रयोग करते हैं । जैसे—

मधुकर काके मीत भये ।

दिवस चारि की प्रीति मगाई रस ले अनत गए ॥

उहकत फिरत आपने स्वारथ पाखंड अग्र दिये ।

चाँड सरै पहिचानत नाहिन प्रीतम करत नए ॥

२. जिसे अंग्रेज़ी में middle rhyme कहते हैं ।

अथवा—

प्रेम न रुकत हमारे बूते ।

किहिगयंद वाह्यो सुन मधुकर पद्म नान्त के काचे सूने ॥

सोवत मनसिज आनि जगायो पटै संदेश श्याम के दूते ।

विरह समुद्र सुखाई कवन विधि क्रिरचक्र योग अग्नि के लून ॥

सूर के गीत सुन्दर लय-छंद और सुन्दर मधुर शब्द-चयन से ही उत्कृष्ट नहीं हुये । उनकी एक विशेषता उनका ७ भाव-सौन्दर्य भाव-सौन्दर्य भी है । यह भाव-सौन्दर्य पाठक और श्रोता के मन में इम प्रकार घर कर जाता है कि देखते ही बनता है । लय और शब्द-माधुर्य काव्य के वाह्यांग हैं और सूर के काव्य के अंतरंग अंग—भाव-सौन्दर्य और अर्थ-व्यंजना—उनके गीतों की आत्मा है । गोपियाँ ऊधो मे तर्क नहीं करतीं उनके सामने कृष्ण के साथ अतीत संबंध की स्मृति लड़ी हो जाती है । वह कहती है

एक दिवस हरि अपने हाथन कर्ण फूल पहिराए ।

दे मोहन माटी के मुक्ता मधुकर हाथ पठाये ॥

वेनी मुभग गुही कर अपने हाथन चरणन जावक दीनों ।

कहा कहौ वा श्याम सुंदर सो निपट कठिन मन कीनों ॥

यहाँ पहिले मधुर व्यवहारों की स्मृति से मधुर भाव की सृष्टि हो जाती है और अंतिम पद तक आते-आते कृष्ण की निटुरता की व्यंजना । यही सूर के काव्य की उत्कृष्टता है । अनेक काव्यांग इस प्रकार मिले हुये हैं कि उन्हें अलग करके रखना भी कठिन हो जाता है ।

परन्तु सूर जहाँ अत्यन्त मौलिक, अत्यन्त प्रतिभाशाली दिखलाई पड़ते हैं, वह है मधुर भाव की व्यंजना । यों तो व्यंगार्थ उनके भ्रमरगीत के प्राण ही हैं, परन्तु वहाँ व्यंजना का शास्त्रीय प्रयोग हुआ है । परन्तु अन्य

भी अनेक स्थल हैं जिन्हें कवि ने अपनी प्रतिभा के कारण व्यंजना के उपयुक्त समझा है और कहीं दो-एक शब्द मात्र से, कहीं संकेत मात्र से और कहीं केवल पद-ध्वनि से ही व्यंजना की सृष्टि की है। उपालंभ के भीतर प्रेम की व्यंजना करने में तो वह अद्वितीय है। गोपियाँ यशोदा को उलाहना देती हैं—

तेरो लाल मेरो माखन खायो ।

दुपहर दिवस जानि घर सूनो दूढ़ि ढंढोरि आप ही आयो ॥

खोल किवार सूने मंदिर में दूध दही सब सखन खवायो ।

सीके काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु लै ढरकायो ॥

दिन प्रति हानि होत गोरस की यह ढोटा कौने ढंग ढायो ।

सूरदास कहती ब्रज नारी पूत अनोखो जायो ॥

इस पद में जहाँ पिल्लूली पंक्तियों में क्रोध और उलाहना है वहाँ अंतिम पद उलाहना देने वाली की आँखों में हँसी और हृदय में प्रेम की अभिव्यंजना करता है। एक 'अनोखो' शब्द ने सारे पद का वाच्यार्थ बदल दिया है।

परन्तु कहीं-कहीं व्यंगार्थ का इतना संकेत भी नहीं किया जाता सारे पद से उसकी ध्वनि होती है। जैसे—

ब्रज घर-घर यह बात चलावत ।

जसुमति को सुत करत अचगरी यमुना जल को भरन न पावत ॥

श्याम वरन नटवर वपु काछे मुरली राग मलार बजावत ।

कुण्डल छवि रवि किरनहुँ ते दुति मुकुट इंद्रधनु ते शोभावत ॥

मानत काहु न करत अचगरी, गागर धरि भुईँ जल ढरकावत ।

सूरश्याम को मात-पिता दोऊ ऐसे ढंग आपुनहिँ पढ़ावत ॥

इस पद में वाच्यार्थ में कृष्ण की निंदा है किन्तु साथ ही उनकी शोभा का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार कहने के ढंग से कहने वाले के प्रेम की व्यंजना होती है और निंदा छिप-सी जाती है।

सूरदास प्रधानतया वात्सल्य, बाल-क्रीड़ा, प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी कविता का एक प्रधान गुण चित्रमयता है। सारे सूरसागर में सहस्रों सौन्दर्यपूर्ण चित्र और चित्रमयता अंकित किये गये हैं जिनसे एक बार परिचित होकर उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। सूरसागर के इन सौन्दर्यपूर्ण चित्रों को हम अनेक विभागों में उनके विषय के अनुकूल बाँट सकते हैं। सूरदास चित्रों के बिना सोच ही नहीं सकते। भक्ति, भाव रस—सभी उनके सामने चित्र, मुद्रा और भाव-भंगी धारण करके आते हैं।

(१) कृष्ण जन्म के समय नंद के घर गोपियों की टोली

सुनि धाई सवै बृज नारी सहज शृङ्गार किये ।
तनु पहिरै नौ तन चीर काजर नैन दिए ॥
कसि कंचुकि तिलक लिलार शोभित हार हिये ।
कर कंकन कंचन थार मंगल साज लिये ॥
शुभ श्रवणनि तरल बनाइ बेनी शिथिल गुही ।
सुर वर्षत सुमन सुदेश मानों मेघ फुही ॥
मुख मंडित रोरी रंग सेंदुर मांग लुही ।
ते अपने-अपने मेलि निकसीं भाँति भली
मनु लाल मनिन की पाँति पिंजर चूरि चली ।

(२) बाल-कृष्ण

हौं बाल जाउँ लुबीले लाल की ।
धूमरि धूरि घुटुरुवन रेंगनि बोलन बचन रसाल की ॥
छिटकि रहीं चहूँ दिशि जुलटुरियाँ लटकन लटकत भाल की ।
मोतिन सहित नासिका नथुनी कंठ कमल दल माल की ॥
कलुकै हाथ कलू मुख माखन चितवनि नयन विशाल की ।

(३) किशोर कृष्ण की क्रीड़ा

खेलत श्याम ग्वालन संग ।
सुबल हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग ॥

हाथ तारी देत भाजत सबै करि-करि होइ ।
बरजै हलधर श्याम तुम जिनि चोट लागि है गोइ ॥
तब कह्यो मैं दौरि जानत बहुत बल मों गात ।
मोरी जोरी है सुदामा हाथ मारे जात ॥
बोलि तबै उठे श्री सुदामा जाहुँ तारी मारि ।
आगे हरि पाछे सुदामा घर्यो श्याम हँकारि ॥

(४) यशोदा और नवनीत प्रिय

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥
देखि तुही सीके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो ॥
मुख दधि पोंछि कहत नंद नंदन दोना पीठ दुरायो ।
डारि साट मुसकाय तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो ॥

(५) नट-खट कृष्ण

नंद घरनि सुत भलो पढ़ायो ।
ब्रज की वीथिनि पुरनि घरनि घर बाट घाट सब शोर मचायो ॥
लरिकन मारि भजत काहू के काहू को दधि दूध मिटायो ।
काहू के घर करत बढ़ाई मैं ज्यों त्यों करि पकरन पायो ॥

(६) बलराम कृष्ण और यशोदा

दाऊ जी कहि श्याम पुकार्यो ।
नीलाम्बर पट ऐचि दियो हरि मनु वादरते चंद उतार्यो ॥
हँसत-हँसत दोउ बाहर आये माता ले जब बदन पखार्यो ।

(७) वर्षा में वन से लौटते हुए राधा-कृष्ण

नयो नेह नयो गेहु नयो रस नवल कुँवरि वृषभानु किशोरी ।
नयो पिताम्बर नई चूनरी नई-नई बूँदनि भीजत गोरी ॥
नये कुंज, नये द्रुम सुभग यमुन जल पवन हिलोरी ।

(८) हिंडोबा झूलने का चित्र

हिंडोरनो माई झूलत गोकुल चंद ।
संग राधा परम सुंदरि सबन करत अनंद ॥
द्वै खंभ कंचन के मनोहर रतन जड़ित सुरंग ।
चारि डाँडी परम सुंदरि निरखि सजत अनंग ॥
पटली पिरोजा लाल लटकत भूमका बहु रंग ।
मरुवेति माणिक चुनी लागी विच-विच हीरा तरंग ॥
कल्पद्रुम तरु छौँह शीतल मंद-मंद समीर ।
वर लता लटकहिँ भार कुसुमनि परसि यमुना नीर ॥
हंस मोर चकोर चातक कोकिला अलि कीर ।
नव नेह नवल किशोर राधा नवल गिरिधर धीर ॥
ललिता विशाषा देहिँ भोटा रीभि अँग न समाति ।
अति लाइली सुकुमारि डरपति श्याम तन लपटाति ॥

(९) विरही-ब्रज

ब्रज के विरही लोग दुखारे ।
विन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुर्बल तन कारे ।
नंद यशोदा मारग जोवत नित उठि सांभ सवारे ।
चहुँ दिशि कान्ह कान्ह करि टेरत अँसुवन बहत पनारे ।
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब अति ही दीन विचारे ।
सूरदास प्रभु विन यौ शोभित चंद्र बिना ज्यौ तारे ।

(१०) विरहिणी राधा

हरि आये सो भली कीन्हीं ।
मोहि देखत कहि उठी राधिका अंक तिमिर को दीन्हीं ।
तनु अति कँपति विरह अति व्याकुल उर धुकधुकी खेद कीनी ।
चलत चरण गहि रही गई गिरि स्वेद सलिल भये भीनी ।
छूटी लट भुज फूटी वलिया टूटी लर फटी कंचुकी भीनी ।
मानों प्रेम के परन परेवा याही ते पढ़ि लीनी ।

उपर के अवतरण कृष्ण-लीला के अनेक प्रसंगों से लिए गये हैं। इन प्रसंगों में कृष्ण-जन्म से लेकर गोपियों के विरह तक की लीलाओं के चुने हुये चित्र मिलते हैं। इनमें अनेक रसों का विकास हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर की तूलिका प्रत्येक प्रसंग और प्रत्येक रस पर समान अधिकार रखती है। सूरदास का विषय कृष्ण-लीला है। लीला नेत्रों का विषय है। उसको केवल रंग-रूप और चित्र से ही उपस्थित किया जा सकता है। यही कारण है कि सूरसागर एक विशाल चित्र-काव्य है। सूरसागर में कथा की विविधता अधिक नहीं है परन्तु यह बात एक प्रकार से सूरदास के लिये वरदान हो गई है। उन्हें चरित्र-चित्रण और चरित्रों के विकास का उतना ध्यान नहीं रखना पड़ा जितना उस समय रखना पड़ता जब उसमें कथा प्रधान होती और उन्हें उसके अनेक अंगों को विकसित करना पड़ता। सूरदास अत्यंत संतोष के साथ एक ही लीला पर सैकड़ों वार तूलिका चलाते रहे हैं। हाँ! उन्हें यह अवश्य ध्यान है कि उनके दो चित्र एक से न हो जायँ। उन्होंने अपने चित्रों में अत्यंत सूक्ष्म भेद रक्खा है। पाठक के लिये वे कभी नीरस अथवा अति-परिचित नहीं हो पाते। उनकी नवीनता सदैव बनी रहती है।

सूर के चित्रों का अध्ययन करने के बाद हम उनके संबंध में कुछ सामान्य सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं।

(१) सूरदास की सबसे बड़ी सहायक उनकी कल्पना है। उनकी कल्पना चित्र-प्रधान है। कह देने पर इस बात का महत्व समझ में नहीं आ सकता। सूरसागर में कुछ इने-गिने पद ही ऐसे मिलेंगे जिनसे किसी प्रकार का स्पष्ट-अस्पष्ट अथवा परोक्ष-अपरोक्ष चित्र न बनता हो। हिन्दी साहित्य में ऐसा कोई भी कवि नहीं है जिसे चित्र इतने प्रिय हो अथवा जिसकी कल्पना इतनी संख्या में इतने विभिन्न चित्र उद्भूत कर सकती हो।

सूर की कल्पना चित्रों को रूप-रंग और भाव-भङ्गी देकर उनके मस्तिष्क के सामने उपस्थित करती है। प्रत्येक रूप स्पष्ट और बड़े आकार में उनके सामने आता है। उसका प्रत्येक अंग जैसे उनके सामने

प्रत्यक्ष हो। राधा-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर विचार करते हुये हमने जो अवतरण दिये हैं उनसे सूर के चित्रों के रूप की विशेषता प्रगट हो जायगी। वल्लभ सम्प्रदाय में रूपासक्ति का बड़ा महत्व था। आचार्य ने उसे भी एक प्रकार की साधना कहा है। यही कारण है कि सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवि राधा-कृष्ण के रूप-माधुर्य का वर्णन करते हुए नहीं अघाते। उनके साहित्य को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे वे अपने इष्टदेव को अपने सामने अनेक मुद्राओं और भाव-भङ्गियों में रख कर उसकी रूप-छवि को मन में भर रहे हों। यह उनकी सहज साधना है। कृष्ण का त्रिभंगी रूप तो वल्लभ सम्प्रदाय में अत्यन्त मान्य है। उससे प्रभावित होकर परवर्ती काल के शृङ्गारिक कवियों ने भी अनेक सूक्तियाँ कही हैं। राजपूत चित्रकला में कृष्ण की त्रिभंगी छवि के चित्रों की संख्या बहुत अधिक है।

रंग भी सूर के लिए अत्यन्त सहज हैं। उन्होंने अधिकतः अत्यन्त चटकीले रंगों का वर्णन किया है। रोरी, सेंदुर, कंचन, मानिक, पीताम्बर, कालिन्दी का श्यामल नील रंग—अपने चित्रों के निर्माण में इनका बार बार प्रयोग करते हैं। श्यामल, नीला, पीला व लाल रंग उन्हें अधिक प्रिय हैं। रंगों की इसी विभिन्नता और प्रचुरता को देखकर सूरदास के आलोचक यह मानने के लिये तैयार नहीं कि वे जन्मांध थे। सूर के सभी चित्रों में रंग मिले, यह आवश्यक नहीं। उनके अनेक चित्र रंगहीन हैं परन्तु उनकी रूपरेखा अधिक स्पष्ट होने के कारण वह भी हमारे सामने उजले होकर आते हैं।

सूर की कल्पना पद पद पर अनेक मुद्राओं और भाव-भङ्गियों की सृष्टि करती है। इनमें कुछ भाव-भङ्गियाँ स्पष्ट रूप से अंकित मिलती हैं और कुछ की वार्तालाप अथवा प्रसंग से व्यंजना की गई है। इसी गुण के कारण सूर के यशोदा-कृष्ण अथवा राधा-कृष्ण की संयोग-लीला के प्रसंगों में उच्च श्रेणी की नाटकीयता को स्थान मिल सका है।

(२) चित्रांकन में सूर का दूसरा सहारा उनका मनोविज्ञान संबंधी

ज्ञान है। चित्रकला में रूपों और रंगों के द्वारा चित्र उपस्थित करने का स्थान निम्नश्रेणी में है। वे चित्र अधिक उत्कृष्ट माने जाते हैं जिनमें रूप और रंग के साथ भाव-सौन्दर्य का भी प्रकाशन हो। रूप-रंगहीन होने पर भी भाव-चित्र ही अधिक उच्च श्रेणी के माने जाते हैं। भाव-चित्रों के अंकन में मनोविज्ञान का विशेष हाथ रहता है। हमने ऊपर यशोदा और नवनीत प्रिय का एक चित्र उद्धृत किया है। यह सारा चित्र भाव-चित्र है। बाल-मनोविज्ञान और मातृ-हृदय के अध्ययन द्वारा सूरदास ने जो चित्र उपस्थित किया है, उसे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट चित्रकार की तूलिका प्रगट नहीं कर सकती। सूरदास ने अंतिम पंक्ति में यशोदा के मुसकाने का निर्देश करके सारे चित्र पर वात्सल्य की छाया डाल दी। यह भी ध्यान देने योग्य है कि कृष्ण की उक्ति इस चित्र की वीथिका उपस्थित करती है।

(३) सूरदास के चित्रांकन में भाषा ने भी सहायता दी है। उन्होंने अनुप्रास (व्यंजनों की पुनरावृत्ति) और दीर्घ लघु स्वरों के स्थान-वैषम्य द्वारा अपने वर्णन में चित्रमय सजीवता डाल दी है। प्रसंग के अनुसार कोमल और परुष शब्दावली चुनने के लिए तो वह अद्वितीय हैं। उनके छंदों तथा उनके विविध आवृतियों की क्षिप्र, मंद गति ने चित्रों को स्पष्ट करने में सहायता दी है।

विहरत हैं जमुना जल श्याम ।

राजत हैं दोऊ बाहाँ जोरी दंपति अरु ब्रज वाम ।

× × × ×

नटवर वेप धरे ब्रज आवत ।

मोर मुकुट / मकराकृत कुण्डल / कुटिल अलक / मुख पर छवि छावत ।

× × × ×

देखी मैं लोचन चुवत अचेत ।

द्वार खड़ी इकटक मग जोवत ऊरध श्वास न लेत ।

× × × ×

टुमुक टुमुक धरनी धर रंगत जननी देखि दिखावें ।

इसके अतिरिक्त सूर के चित्रों की यह विशेषता है कि उनका अंकन अत्यन्त सूक्ष्म है । जहाँ उन्हें व्यंजना करना नहीं है वहाँ वे प्रत्येक वस्तु का वर्णन अत्यन्त विस्तार से करते हैं । इससे उनके चित्र हमारे सामने खुल कर आते हैं । सूरदास स्थिर चित्र और चल चित्र—दोनों प्रकार के चित्रों के अंकन में कुशल हैं । स्थिर चित्र राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन और भ्रमरगीत के प्रसंग में मिलते हैं, अन्य चित्र अधिकांश रूप से चल चित्र हैं ।

परन्तु सूरदास ने केवल चित्रों के द्वारा ही चित्रांकन किया हो यह बात नहीं । सौन्दर्य नेत्रों का विषय है किन्तु अन्य इन्द्रियों के विषय भी चित्र-सौन्दर्य को बढ़ाने में सहायता देते हैं और कहीं-कहीं उसकी पूर्णतः व्यंजना करते हैं । नीचे हम एक ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं । जिसमें केवल नाद सौन्दर्य के द्वारा रूप सौन्दर्य की व्यंजना की गई है ।

सुंदर बोलत आवत वैन ।

ना जानौं तेहि समय सखीरी सब तन सवन की नैन ।

रोम रोम में सन्द सुरति की नख सिख ज्यों चख ऐन ।

एते मान बनी चंचलता सुनी न समुझी सैन ।

तब तकि जकि है रही चित्र सी पल न लगत चित चैन ।

सुनो सूर यह सौंच कि संभ्रम सपन किधौं दिनरैन ।

कुछ पदों में उन्होंने कृष्ण के अलौकिक सुन्दरता को इस प्रकार व्यंजित किया है कि हम विश्लेषण के द्वारा यह भी नहीं बता सकते कि सुंदरता कहाँ और कैसे व्यंजित हुई । इस प्रकार का एक पद है—

सखी री सुंदरता को रंग ।

छिन छिन माँहि निरख परियत है कमल नयन के अंग ।

श्याम सुभग के ऊपर वारौं आली कोटि अनंग ।

सूरदास कलु कहत न आवे गिरा भई मतिपंग ।

‘चौरासी वार्ता’ की भाषा को सूरसागर की भाषा के सामने रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास ने इस क्षेत्र १० सूर की भाषा में मौलिकता का प्रदर्शन किया है। इस पुस्तक के पहले अध्याय में ‘चौरासी वार्ता’ में दी हुई सूरदास की कथा उद्धृत की गई है। जिस भाषा-शैली का इस ग्रंथ में प्रयोग किया गया है वह किसी भी प्रकार काव्य के लिये उपयोगी नहीं हो सकती। उसमें एक छोटे से अर्थ को प्रगट करने के लिये अनेक वाक्यों का प्रयोग हुआ है। वाक्य इतने ढीले हैं कि उनमें किसी प्रकार का सौष्ठव नहीं दिखाई पड़ता। उनका संगठन साधारण कथाकारों के वाक्यों ऐसा है। वास्तव में वार्ता का गद्य प्रत्येक प्रकार से असफल है। नमूने के लिये कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

“सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी के स्थल हूतो, सो सूरदास जो स्वामी हैं आप सेवक करते, सूरदास जी भगवदीय है गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते सो श्री आचार्य जी महा प्रभू गऊघाट ऊपर उतरे सो सूरदास जी के सेवक देख के सूरदास जी सो जाय कही जो आज श्री आचार्य जी महाप्रभू आप पधारे हैं जिनके दक्षिण में दिग्विजय कियो है सब पंडितन को जीते हैं सो श्री वल्लभाचार्य जी यहाँ पधारे हैं”

यह भाषा उस ग्रंथ की है जो सूरदास की रचना के बाद लिखा गया। सूरदास ने उस भाषा को अपनी प्रतिभा की स्पर्श-मणि से छूकर जो कुछ बना दिया वह नीचे के पदों से स्पष्ट हो जायगा :—

(१) चलौ किन मानिन कुंज कुटीर ।

तुव विन कुँवर कोटि वनिता तजि सहत बदन की पीर ।

गद्गद् सुर पुलकित विरहानल नैन विलोकत नीर ।

कासि कासि वृषभानु कुमारी विलपत विपिन अधीर ।

मलयज गरल हुतासन मास्त शाखा मृग रिपु वीर ।

हिय में हरषि प्रेम अति आतुर चतुर चलहु पिय तीर ।

(२) नवेली सुन नवल पिया नव निकुंज हेरी ।
भावते लाल सो भावती केलि करि भावती भावतो रसिक रस लेरी ।

(३) छुवीले मुरली नेकु बजाउ ।
बलि बलि जात सखा यह कहि कहि अधर सुधारस प्याउ
दुर्लभ जन्म, दुर्लभ वृंदावन, दुर्लभ प्रेम तरंग ।
ना जानिये बहुरि कव है है श्याम तुम्हारो संग ।

(४) खेलन अब मेरी जात वलैया ।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिजत बलभैया ।
मोसो कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लियो कञ्जु दै वसुदेव को करि करि जतन बढ़ैया ।
अब बाबा कहि कहत नंद सों यशुमति को कहै मैया ।
ऐसे ही कहि सब मोहिं खिभावत हौं उठि चलौ खिसैया ।

(५) कहाँ लौ कहिये ब्रज की बात ।
सुनहु श्याम तुम विनु उन लोगइ जैसे दिवस विहात ।
गोपी गाई ग्वाल गोसुत वै मलिन वदन कृश गात ।
परमदीन जनु शिशिर हिमीहत अंबुज गन विन पात ।
जाकहुँ आवत देखि दूर ते सब पूँछत कुशलात ।

ऊपर के अवतरणों से कई बातें प्रगट होती हैं—

एक—सूरदास की भाषा 'वार्ता' की भाषा की तुलना में अत्यन्त सुन्दर, मधुर एवं आकर्षक है ।

दो—उसमें रसों को प्रस्फुटित करने की शक्ति है । ऊपर के पद वात्सल्य, बाल-क्रीड़ा एवं शृङ्गार से संबंध रखते हैं । प्रत्येक पद की भाषा अन्य पदों की भाषा से अनेक बातों में समानता रखती हुई भी कुछ भिन्न है । वास्तव में रसानुकूल भाषा लिखने में सूरदास सिद्धहस्त हैं ।

तीन—सूर की भाषा में वाच्यार्थ के अतिरिक्त व्यंग्यार्थ भी भली-भाँति

प्रगट हो जाता है। उसी के सहारे सूरदास अनेक सूक्ष्म मनो-भावों को व्यंजित कर सके हैं।

चार—उनकी भाषा भाव की अनुयायी है उसमें राग-विराग, प्रेम प्रतीति और भजन-भाव अच्छी तरह प्रगट हो सकते हैं।

यह तो हुई सूर की भाषा के संबंध में सामान्य बातें अब हम विशेष रूप से उनकी भाषा का अध्ययन करेंगे।

सूरदास के तीन रूप हमारे सामने आते हैं। वे भक्त हैं, वे भक्त तथा कवि हैं और अन्त में कथा-गायक हैं। उनकी भाषा भी इन तीनों स्वरूपों में बदली हुई आती है। दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के कुछ भागों और विनय के पदों को छोड़ कर अन्य सारी कथाओं में सूरदास के कथा-गायक रूप का हमें परिचय मिलता है। इन कथाओं की भाषा में न प्रवाह है न शक्ति। ऐसा जान पड़ता है कि सूरदास प्रबंध पूरा करने के लिये एक बोझ स्वीकार कर बैठे हैं तथा अनमने मन से उसे शीघ्र ही उतार डालना चाहते हैं। इन समस्त पदों में उनकी कवित्व शक्ति तथा उनके भक्त-हृदय के कहीं भी दर्शन नहीं होते। यह भाषा 'वार्ता' के कोटि की है। राजा परीक्षित की कथा इस प्रकार लिखी गई है—

भारत युद्ध जीतत जब भयो ।
दुर्योधन अकेल तहँ रह्यो ।
अश्वत्थामा तापै जाई ।
ऐसी भाँति कह्यो समुभाई ।
हमसों तुमसों बाल मितार्ई ।
हमसों कछु न भई भलाई ।
अब जो आज्ञा मोको होई ।
छाँड़ि विलम्ब करो अब सोई ।
राज्य गयो को दुःख न सोई ।

पाण्डव राजा भयो जो होई ।
उनके मुये हीय सुख होई ।
जो करि सको करो अब सोई ।
हरि सर्वज्ञ बात यह जान ।
पाण्डुसुतनि सो कह्यो बखान ।

इस अवतरण में भाषा की दृष्टि से कोई काव्यगत विशेषता नहीं है । कथा-गायक सूर का ध्येय केवल वर्णनात्मक-प्रबंधात्मकता है । उसमें उनकी रचि नहीं । अतः भाषा का रूप गौण और हीन है । सूर की भाषा का दूसरा रूप वह है जिनमें उनके भक्त हृदय के दर्शन होते हैं । हमारा तात्पर्य सूर के विनय के पदों की भाषा से है । इस स्थान पर अलंकारों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है । यदि अलंकारों का प्रयोग कहीं किया भी गया है तो दृष्टान्त और उदाहरण का । विनय के पदों की भाषा में प्रवाह तथा आत्मानुभूति की तीव्रता के कारण उसमें सरलता के साथ शक्ति का भी सामंजस्य हो गया है । इसी से उनके ये पद प्रत्यंचा से लुटे हुये तीर की तरह हृदय में सीधे उतर जाते हैं ।

इन पदों की भाषा अपने साथ एक शांत और भक्ति पूर्ण वातावरण की सृष्टि करती चलती है । सूर की इस प्रकार की भाषा की तुलना संत-कवियों की भाषा से की जा सकती है ।

१. अबकी राखि लाज भगवान ।

हम अनाथ बैठे द्रुम डरिया परार्ध साधे वान ।
याके डर भाज्यो चाहत हौं ऊपर दुक्यो सचान ।
दुऊ भाँति दुख भयो आनि यह कौन उबारे प्रान ।

२. अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल ।

काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल ।
महा मोह की नूपुर बाजत, निंदा शब्द रसाल ।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ।

इन सब पदों में आत्म-निवेदन की मात्रा अत्यंत गहरी है । उसी ने इस अलंकार-विहीन काव्य को उज्ज्वल बना दिया है ।

परन्तु सूरदास की भाषा का चमत्कारी रूप देखना हो तो उनके द्वारा कही हुई कृष्ण की ब्रज-लीला में देखिये । वहाँ पर वे सब गुण मिलेंगे जिनका उल्लेख हमने अध्याय के प्रारम्भ में किया है । उसमें भी जहाँ प्रेम का प्रसंग आता है वहाँ सूरदास की भाषा की चमत्कारिकता और अधिक बढ़ जाती है वहाँ सूरदास प्रधानतया कवि हैं यद्यपि परोक्ष में गौण रूप से वे भक्त भी हैं । इस प्रकार की भाषा में काव्य के अंगों का प्रयोग इतनी अधिकता से हुआ है कि सूरदास की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाना पड़ता है । यह भाषा अलंकार और ध्वनि से पुष्ट है । रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक और उपमा की भीड़ लगी रहती है । सूरदास एक ही विषय पर बीसों पद कहते हुए नहीं थकते । उनका कोप शेष नहीं होता । यह सूरदास की भाषा का ही गुण है कि एक ही लीला पर अनेक पद होते हुये भी पाठक को अरुचि नहीं होती । सूरदास का काव्य बहुत बृहत् है । वह कहीं भी नीरस नहीं हो पाया है ।

सूर की भक्ति

सूर की भक्ति अनन्य कोटि की भक्ति है। सारे सूरसागर के अध्ययन से ही इस मूल, बात का पता नहीं चलता वरन् फुटकर पदों में उन्होंने कृष्ण के प्रति आपकी अनन्य भक्ति को स्वीकार किया है—

मेरो मत अनत कहौं सुख पावै ।

जैसे उड़ि जहाज़ को पक्षी फिर जहाज़ पर आवै ॥

कमल नयन को छाड़ि महातम और देव को ध्यावै ।

परम गंग को छाड़ि पियासो दुरमति कृप खनावै ॥

जिन मधुकर अंबुजरस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।

सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै^१ ॥

सूरदास में दशम स्कंध तक की कथा में भगवान के नव अवतारों की कथा का वर्णन है। रामावतार को छोड़कर अन्य अवतारों की कथा अत्यन्त संक्षेप में कही गई हैं। उनमें सूरदास की वृत्ति रमी नहीं जान पड़ती। उन्होंने जैसे भागवतकार का अनुसरण करके प्रथा का पालन किया है। रामावतार कुछ विस्तार से कहा गया है। परन्तु उसमें भी उस सूक्ष्म, सरसता और मौलिकता के दर्शन नहीं होने जो उनकी कृष्ण-कथा की विशेषता है। यह हम पहिले ही दिखा चुके हैं कि सूरदास राम-कृष्ण में अधिक अंतर भी नहीं देखते। परन्तु फिर भी अनन्य भक्त सूर को कृष्ण से विशेष मोह है।

इस भक्ति की गहराई का अनुमान सूर के निम्नलिखित पद से हो जाता है—

तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण ।

छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी बिन प्राण ॥

जैसे मगन नाद सुनि सारँग बधत बधिक तनु बान ।

ज्यों चितवै शशि-ओर चकोरी देखत ही सुख मान ॥

जैसे कमल होत परिफूलित देखत दरशन भान ।

सूरदास प्रभु हरि गुण मीठे नितप्रति सुनियत कान^१ ॥

भक्ति के नौ प्रकार हैं जो नवधा भक्ति कहलाते हैं। ये इस प्रकार हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। इनमें सूर की भक्ति किस प्रकार की है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें तनिक ठहरना होगा। वस्तुतः ये नव प्रकार भक्त के भगवान की ओर अग्रसर होने के नव चरण हैं। इनके द्वारा भक्त और भगवान के संबंध में क्रमिक विकास दिखलाया गया है। इन प्रकार-भेदों को मानने से भक्ति का कोई भी विशेष गुण सामने नहीं आता। सच तो यह है कि भक्ति का कोई भी प्रकार नहीं। उसके लिए केवल एक गुण की आवश्यकता है—भक्त एकाग्र चित्त से अपने भगवान के प्रति अनन्य प्रेम करे। हम पहले बता चुके हैं कि सूर की भक्ति अनन्यासक्ति की कोटि की है। इसी कारण उनके पदों में इतनी तीव्र विरह-संवेदना की अभिव्यक्ति हो सकी है—

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।

जैसे उड़ि जहाज को पत्नी फिरि जहाज पर आवै ॥

अथवा—

तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण ।

अथवा—

हमें नंद नदन मोल लिए ।

आदि पदों से सूरदास का अनन्य-भक्ति भाव स्पष्ट हो जाता है। परन्तु फिर भी यदि हमें सूरदास की भक्ति को शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखना है तो हम उसे विनय और सख्य दो नामों से पुकारेंगे।

सूरदास की विनय-भक्ति के पद सूरसागर के स्कंध १ में संगृहीत हैं वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले

१. **विनय-भक्ति** जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे तब वे यही भक्ति के पद बनाया करते थे और उन्हें गाते भी थे। इन विनय के पदों में निम्नलिखित भावों की पुष्टि होती है।

(क) प्रपत्ति अथवा अनुकूल होने का संकल्प (दास्य भाव)

रे मन कृसन नाम कहि लीजै ।

गुरु के वचन अटल करि मानों साधु समागम कीजै ॥

पढ़िये गुनिये भगति भागवत और कहा कथि कीजै ।

कृसन नाम बिनु जनम वादि ही वृथा जीवन कहा जीजै ॥

कृसन नाम रस वह्यो जात है तृसावंत है पीजै ।

'सूरदास' हरिसरन ताकिये जनम सफल करि लीजै ॥

(ख) 'प्रतिकूलस्य वर्जनम्' ('भगवदैच्छा के प्रतिकूल कुछ न करूँगा'—ऐसा भाव)

रे वौरे छुँड़ि विषय को रचिबो ।

कत तू सुआ होत सेंवर को अंत कपासन पचिबो ॥

कनक कामिनी अनंग तरंगन हाथ रहैगो लचिबो ।

तजि अभिमान कृसन कहि बौरे न नरक ज्वाला तचिबो ॥

सद्गुरु कह्यो कह्यो हौं तासों कृसन रतन धन सचिबो ।

सूरदास स्वामी सुमिरन बिनु जोगी कपि ज्यों रचिबो ॥

(ग) रक्षिष्यतीति विश्वासो (भगवान की रक्षा में विश्वास)

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलनो कंठ विषय की माल ।
महा मोह के नूपुर बाजत निंदा शब्द रसाल ॥
× × × ×
सूरदास की सवै अविद्या दूरि करहु नंद लाल ।

अथवा—

हरि सौ ठाकुर और न जन को ।
या हरि सौ मीत न देख्यो कोई ।

(घ) गोप्तृत्वा वर्णनम् (भगवान को मुक्ति-दाता और भक्त-वत्सल
जानना)

चरण कमल वंदौ हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंबै अंधरे को सब कुल्ल दरसाई ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई ।

अथवा—

हम भक्तन के भक्त हमारे (भगवान-वचन)
या हमारे भक्त वल्ल भगवान ॥

(ङ) आत्मनिक्षेप (समर्पण भाव)

हमें नंद-नंदन मोल लिए ।
यम की फाँसि काटि अभय अगात किए ।
मूड़ मुड़ाय करठ बन माला चक्र के चिन्ह दिये ॥
माथे तिलक श्रवण तुलसी दल मटिवउ अंग विये ।
सब कोउ कहत गुलाम श्याम के सुनत सिरात हिये ॥
सूरदास प्रभू जू के चेरे जूठन खाय जिए ॥

(च) कार्पण्य (भगवान के प्रति दीनता का भाव)

विनती करत मरत हौं लाज ।
नख सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज ॥

अथवा—

कृपा अब कीजिए बलि जाऊँ ।

नाहिन मेरे अनत कहूँ अब पद अम्बुज बिनु ठाऊँ ॥

हाँ अशुची अकृती अपराधी सनमुख होत लजाऊँ ।

तुम कृपाल करुनानिधि केशव अधम उधारन नाऊँ ॥

इस कार्पण्य (दीनता) की भावना का उदय भक्त के पापबोध के कारण होता है ।

प्रभु हम हौं पतितन कौ टीकौ ।

और पतित सब द्यौस चारि को हौं तो जनमत ही कौ ॥

पाप-बोध और कार्पण्य की इसी भावना के उपस्थित होने के कारण ईसाई-आलोचक भक्तों के दास्य-भाव और मध्ययुग के ईसाई मर्मियों के दास्य-भाव में साम्य देखकर यह कहने लगे थे कि भक्तों पर ईसाई-मर्मियों की छाप अवश्य है) परन्तु जहाँ ईसाई मर्मा और संत पाप को मनुष्य-स्वभावज और आन्तरिक मानते हैं, वहाँ भक्त-कवि पाप को स्वभावज नहीं मानते । उनके लिए पाप स्वाभाविक वस्तु नहीं है । वह तो माया का ही एक विस्तार है, अतएव असत्य, नाशवान और वैयक्तिक है (उनकी पाप-भावना उनकी दीनता के ही कारण उत्पन्न होती है जिसके मूल में अनन्य भक्ति की भावना है । सूरदास की पाप भावना ईसाई-संतों की पाप-भावना की तरह स्थूल नहीं वरन् सूक्ष्म है । ईसाई-भक्त भगवान के ऐश्वर्य से स्तब्ध होकर उनकी दासता की ओर प्रेरित होते हैं, सूर की दास्य-भावना भगवान तक पहुँचने का साधन मात्र है । भगवान की भक्ति पाने पर तो उन्हें पाप का किंचित भी भय नहीं रह जाता ।

ऐसो कब करिहौ गोपाल ।

मनसा नाथ मनोरथ दाता हो प्रभु दीनदयाल ॥

चित चरणनन निरंतर अनुरत रसना चरित रसाल ।

लोचन सजल प्रेम पुलकित तन कर कंजनि दलमाल ॥
ऐसो रहत लिखत छन-छन यम अपने भायो भाल ।
सूर सुयश रागी न डरत मन सुनि यातना रसाल ॥

इस तरह के उद्गार ईसाई मर्मियों में मिलना असम्भव है, जैसे—
अपनी भक्ति देहु भगवान ।

× × ×
परयो हौं प्रण किए द्वारे लाज प्राण की तोहि ।
नाहिनै काचो कृपानिधि करौं कहा रिसाय ।
सूर तबहूँ न द्वार छांडै डारि हौ कढ़राइ ॥ १ । ४७

अथवा—

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै हम हीं कै तुमहीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं ॥

× × × ×
अब हौं उघरि नयन चाहत हौं तुम्हें विरद विनु करिहौं ।
भक्त भगवान की भक्त-वत्सलता को ढाल बनाकर उन्हें उपालम्भ
देने और इस प्रकार साग्रह निवेदन करने से भी नहीं चूकता—
जन के उपजत दुख किन टारत ?

जैसे प्रथम अपाढ़ के वृक्षनि खेतहर निरखि उषारत ।
जैसे मीन किलकिला दरशत ऐसे रहो प्रभु डारत ॥
पुनि पाछे अघ सिंधु बढत है सूर खार किन पाटत ?

विनय के पदों में ही उद्बोधन के पद भी मिलते हैं जिनमें भक्त अपने
मन को पुण्य-पथ की ओर अग्रसर होने का आश्वासन देता है :—

यह सब मेरियै कुमति ।
अपने ही अभिमान देख मुख पावत हौं मैं अति ॥
जैसे केहरि उभक्त कृपजल देखे आप परत ।
कृप पर्यो पुनि मर्म न जान्यो भई आप सुहगत ॥

ज्यों गज फटिक शिला में देखत दशनन जाह अरत ।

जो तू सूर सुखहि चाहत है तो क्यों विषय परत ॥ १ । १७८

सच तो यह है कि विनय के पदों में वैष्णव सम्प्रदाय के विनय-संबंधी सिद्धान्तों का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार विनय में सात प्रकार की भूमिकाएँ होती हैं। १—दीनता, २—मान-मर्षता, ३—भय-दर्शन, ४—भर्त्सना, ५—आश्वासन, ६—मनो-राज्य, ७—विचारण। इन सात भूमिकाओं के अभाव में विनय अपूर्ण समझी जाती है। सूर के विनय के पदों में ये सातों प्रकार की भूमिकाएँ मिलती हैं। अतः साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की दृष्टि से भी सूर के विनय-पद उत्कृष्ट हैं।

(१) दीनता—अपने को अति तुच्छ समझना और असफलता का सारा दोष अपने सिर लेना—

हौं हरि सब पतितन को राव ।

को करि सकै बराबरि मेरी सौ तो मोहि बताव ॥

(२) मान-मर्षता—अभिमान रहित होकर इष्टदेव की शरण में जाना—

माधव जू सो अपराधी हौं

(३) भय-दर्शन—जीव को भय दिखाकर इष्टदेव के सम्मुख करना—

गोविंद पद भज मन वच क्रम करि ।

अजहँ मूढ़ चेत चहुँ दिशिते उपजी काल अगिनि भक भरहरि ।

जब जम जाल पसार परैगो हरि विनु कौन करैगो धरहरि ॥

(४) भर्त्सना—मन को शासित करना और डाँटना—

(क) छोटि मन हरि विमुखन को संग ।

जाके संग कुबुद्धि उपजत है परत भजन में भंग ।

(ख) जनम सिरानो अटके अटके ।

सुत संपति गृहराज मान को फिरो अनत ही भटके ।

(५) आशवासन—इष्टदेव के गुणों पर विश्वास रखना और उस की कृपा के भरोसे मन को धीरज देना—

गोविंद प्रीति सबन की मानत ।

जो जेहि भाय करै जनु सेवा अन्तर गति की जानत ॥

(६) मनोराज्य—अपने मन में बड़ी-बड़ी अभिलाषायें करना और इष्टदेव से उनकी पूर्ति की आशा करना—

ऐसो कब करिहौ गोपाल ।

मनसा नाथ मनोरथ दाता हौ प्रभु दीनदयाल ॥

(७) विचारण—माया-जाल की जटिलता दिखाकर मन को संसा से विरक्त करना और भक्ति-मार्ग के प्रति उसमें आसक्ति उत्पन्न करना—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै ।

तादिन तेरे तन तरुवर के सत्रै पात भरि जैहै ॥

कहँ वह नीर, कहाँ वह शोभा, कहँ रंग रूप दिखैहै ।

जिन लोगन सौं नेह करतु है तेहि देखि घिनैहै ॥

अजहुँ मूढ़ करो सत संगति संतन में कछु पैहै ।

नर वपु धरि जाने नहि हरि को जम की मारु जो खैहै ॥

सूरदास भगवत भजन विनु वृथा सुजन्म गवैहै ।

पुष्टि मार्ग में भगवल्लीला का महत्वपूर्ण स्थान था । वल्लभाचार्य

को दास्य भाव की दैन्य-प्रधान भक्ति प्रिय नहीं थी

२ सख्य-भक्ति यह उनकी और सूरदास की प्रथम भेंट के प्रसंग

से ही स्पष्ट है । उनकी भक्ति-पद्धति में लीला, कीर्तन

आदि का ही विशेष स्थान था और सखा-भाव से कृष्ण का सान्निध्य

प्राप्त किया जाता था । इसीसे हम सारे सुरसागर को सख्य-भक्ति से भर

पाते हैं ।

सख्य-भक्ति सूर सागर में दो रूपों में प्रगट हुई हैं । एक, गोपों

ग्वालों और कृष्ण-प्रसंग में । गोप ग्वाल कृष्ण के प्रति सख्य-भक्ति है

अन्यतम उदाहरण हैं। वह कृष्ण के मिलन-सुख में विभोर रहते हैं और न कोई उनका भाव कृष्ण से छिपा है, न कृष्ण का कोई चरित्र ही उनके लिए गोप्य है। राधा और गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम-लीला में भी उनके मित्र उनके साथ रहते हैं। उन्हें कृष्ण की लीला देखकर प्रसन्नता होती है। सूरसागर में कहीं भी गोप-ग्वालों और कृष्ण के सम्बन्ध में मालिन्य का चिन्ह नहीं। न ईर्ष्या, न द्वेष। भगड़ने हैं परन्तु शीघ्र ही फिर मिल जाते हैं। वे कृष्ण को अपनी वैयक्तिक संपत्ति ही नहीं, अपने से विलकुल अभिन्न समझते हैं। और जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं तो गोपियों की भाँति कृष्ण-सखा भी उनके विरह में विभोर रहते हैं। उनके दैनिक कर्मों में व्याघात पड़ जाता है और पूर्व दिनों की सुख-स्मृति उन्हें चंचल किए रहती है।

भक्त गोप-ग्वालों के भाव से ही कृष्ण से प्रेम करता है। सूरदास ने कृष्ण की कैशोर लीला को बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। वे जैसे उन ग्वाल-गालों में से एक हों और कृष्ण की प्रत्येक वन-लीला में उपस्थित हों।

दूसरे, सारा सूरसागर सखा-भाव से गाया गया है। भक्त भगवान के प्रत्येक लीला में भाग लेता है। संस्कृत नाटककारों के विदूषक-राजमित्र की तरह वह कृष्ण के चरित्र के अतःपुर में भी स्वतंत्रतापूर्वक प्रवेश कर सकता है। वह राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग को तटस्थ, मित्र भाव से वर्णन करता चला जाता है जैसे वह केवल एक अभिन्न मित्र का केलि-कौतूहल-मात्र हो जिसमें वर्जित और अग्राह्य कुछ भी नहीं। यही कारण

१ -- राग धनाश्री—प्रभुहों सब पतितन को टीकौ आदि ऐसो पद श्री आचार्य जी महाप्रभुन के आगे सूरदास जी ने गायो सो सुनि श्री आचार्य जी महा प्रभुन ने क्यो जो सूर है के ऐसो काहे को विधियात है कछु भगवल्लीला वर्णन करि

है कि उसे अनौचित्य की सीमा लाँघने तक का ध्यान नहीं आता, लज्जा की तो बात ही क्या ? उदाहरण के लिए देखिये—

नीवी ललित गही यदुराई ।

जबहिं सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति तहँ आई ॥

अथवा—

नंद बवा की बात सुनो हरि ।

मोहिं छाँडि के कबहुँ जाहुगे ल्याहुँगी तुमको धरि ॥

मेरी बाँह छाँडि दै राधा. करत उपरफट बातैं ।

सूरश्याम नागर नागरि सौँ करत प्रेम की घातैं ॥

अथवा—

ऐसे जनि बोलहु नंद लाला ।

छाँडि देहु अंचरा मेरो नीके जानत हौँ श्री बाला ।

बार बार मैं तुम्हहिं कहति हौँ परिहैं बहुरि जंजाला ॥

जोवन रूप देखि ललचाने अबहीं ते ए ख्याला ।

तरुनाई तन आवन दीजै कित जिय होत विहाला ॥

सूरश्याम उर ते कर टारहु टूटै मोतिन माला ।

भले ही आधुनिक-समालोचक सूर पर विलासिता या गंदी शृङ्गार-प्रियता का दोषारोपण करें, कृष्ण के अनन्य मित्र को इसकी चिंता नहीं । वास्तव में, सूर के कृष्ण उन्हें इतने सहज-सुलभ, सामान्य, मानव, मित्र और लौकिक हो गए हैं कि उनका काव्य भी शास्त्र के विधि-निषेध से परे हो गया है ।

वे एक अलौकिक व्यक्ति की लौकिक लीला को मित्र-रूप से देख रहे हैं, उनके लिये कैसी गंदगी, कैसी विलासिता ! उनकी तो सखा-भाव की मधुर-साधना है जो उन्होंने सारे सूरसागर के दशम स्कंध में विखेर दी है ।

परन्तु जैसा अन्यत्र दिखलाया है सूरसागर आसक्ति (भगवद्भक्ति) के अन्य प्रकारों से खाली नहीं है। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में आसक्ति के प्रकार-भेदों की दृष्टि से सूरसागर की कृष्ण-लीला को इस प्रकार रक्खा हैः—

- | | | |
|-----------------------|---------------------|-----------------------|
| १—गुण माहात्म्यासक्ति | (श्रवण, कीर्तन) | भ्रमर लीला |
| २—रूपासक्ति | (वंदन) | दान लीला |
| ३—पूजासक्ति | (चरण-सेवन, अर्चन) | गोवर्धन धारण |
| ४—स्मरणासक्ति | (स्मरण) | गोपिका वचन परस्पर |
| ५—दास्यासक्ति | (दास्य) | मुरली-स्तुति (विनयपद) |
| ६—सख्यासक्ति | (सख्य) | गोचारण |
| ७—कान्तासक्ति | (,,) | गोपिका-विरह |
| ८—वात्सल्यासक्ति | | यशोदा-विलाप |
| ९—आत्मनिवेदनासक्ति | (आत्मनिवेदन) | भ्रमर-गीत |
| १०—तन्मयतासक्ति | (,,) | ,, |
| ११—परम विरहासक्ति | (,,) | ,, |

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरसागर की कथा-वस्तु में नवधा-भक्ति के अंगों की पूर्णतः पुष्टि होती है, जहाँ जहाँ सूर ने इन प्रसंगों का वर्णन किया है, वहाँ वहाँ उनके अन्तर्गत उनकी भक्ति भी सन्निहित हो गई है। एक प्रकार से सूरसागर भक्ति के अनेक प्रकारों का उदाहरण है।

इसके सिवाय भक्ति के कुछ ऐसे अंग हैं जो सूरसागर में पहली बार पाये जाते हैं। शास्त्रीय वर्गीकरण में स्थान उन्हें भले ही नहीं मिल सका हो परन्तु वह भी भक्ति के विशिष्ट अंग हैं, अन्यथा हो सकते हैं।

* डा० रामकुमार वर्मा :—हि० सा० का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६०१ (कोष्ठक में जो भक्ति के नवधा रूप दिये हैं, वे हमारे हैं)

(१) वात्सल्य भाव की भक्ति

नन्द यशोदा और कृष्ण के सम्बन्ध में इस प्रकार की भक्ति-भावना का उदाहरण है। नारद भक्ति सूत्र^१ में वात्सल्य को स्थान अवश्य ही दे दिया गया है, परन्तु इस प्रकार की भक्ति को अपनाने का उदाहरण मध्ययुग से पहले नहीं मिलता। सूरदास ने ही पहले पहले वात्सल्य-भक्ति-रस का उद्घाटन किया।

(२) दाम्पत्य-भाव की भक्ति या मधुर-भाव की भक्ति

भागवतकार का उद्देश्य इस भाव की भक्ति को प्रस्फुटित करना ही था और प्राचीन समय से संतों, सूफियों तथा शैव-वैष्णव भक्तों ने माधुर्य-भाव की भक्ति (जिसमें भक्त और भगवान में कांत-कांता सम्बन्ध होता है) को अपनाया था। किन्तु सूरदास से पहिले राधा-कृष्ण और गोपियों के संयोग-वियोग की कथा से यह मधुर भाव इतना विस्तारपूर्वक कभी भी प्रकाशित नहीं किया गया था। संतों और सूफियों के मधुर-भाव की उपासना को सगुण मधुर-भाव की भक्ति का रूप दे कर और उसे कृष्ण-राधा के लोक-विश्रुत-प्रेम-चरित्र पर आश्रित करके सूरदास ने सगुण-भक्ति की उपासना पद्धति में क्रांति ही कर दी जिसके कारण उनके पश्चात् अनेक मधुर भक्ति-मार्गी सम्प्रदायों की सृष्टि हुई।

(३) सगुण-रहस्यात्मक-भक्ति

इसका रूप स्वयं भक्ति की रहस्यात्मक सत्ता के प्रति भक्त के प्रेम के सम्बन्ध में स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त “चकई री चलि चरण सरोवर जहाँ न मिलन-वियोग” आदि रहस्यवादी पदों से भी कवि का लक्ष्य यही भक्ति है।

सूरसागर और पुष्टि-मार्ग

सूरसागर का पुष्टि-मार्ग के भक्तों में विशिष्ट स्थान है। उसमें चाहे पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्त भले ही न हों, परन्तु उसकी मुख्य बात, कृष्ण लीला, इसमें होने के कारण वह भक्तों को प्रिय है।

राधा-कृष्ण के नित्य-प्रति के कार्यों का विशद वर्णन हमें सूरसागर के दशम स्कंध में मिलता है। बाल-कृष्ण के जागरण से लेकर कलेऊ, दधि-माखन-प्रसंग, गौ-दोहन, गौ चारण, यमुना तट क्रीड़ा, सध्या-समय गृह-आगमन और शयन तक के सभी कार्यों का वर्णन हमें दशम स्कंध में मिल जाता है। सूर जैसे कृष्ण के साथ लगे हुए हैं; वह उनकी छोटी सी बात को भी दृष्टि की ओट नहीं करते। सभी विस्तारपूर्वक लिखते चले जाते हैं।

परन्तु सूरसागर के पीछे एक रहस्य छिपा हुआ है जिसका उद्घाटन कर देने पर उसकी यह विशेषता स्पष्ट हो जायगी। सूर ने कृष्ण की दिनचर्या विशद रूप से केवल इसी लिए नहीं लिखी है कि वह उनके काव्य के नायक अथवा उनके उपास्य हैं। एक बात और भी है। कृष्ण-काव्य के निर्माण में पुष्टि-मार्ग की नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का बड़ा हाथ है। उसने केवल सिद्धान्त-रूप से ही कृष्ण-काव्य का आविर्भाव और तदनंतर उसे प्रभावित नहीं किया, वरन् उसने जैसे कृष्ण काव्य के भक्त लेखकों का हाथ पकड़ कर कृष्ण-चरित लिखाया।

श्री नाथ जी के मंदिर की उपासना-पद्धति अन्य देवताओं और अवतारों की उपासना पद्धति से भिन्न थी। प्रभात होते ही भक्त पुजारी गा-बजा कर कृष्ण को जगाता; फिर कुछ समय बाद मुँह धुला

कर उन्हें कलेऊ खिलाता, बन में भेजने के लिए उन्हें ओढ़ा पहना कर सजाता। जब कृष्ण बन में चले जाते तो फिर मंदिर के कपाट बंद हो जाते। पूछने पर पुजारी कहता—श्रीनाथ जी गौचारन को गये हुए हैं। सौंभ होती तो मंदिर के द्वार फिर खुलते और भक्त नंद-यशोदा भाव से बन से लौटे हुए कृष्ण का स्वागत करता। फिर कलेऊ, भोजन, हास-विनोद और तदनंतर शयन का प्रबंध समय-समय होता। शयनान्तर एक बार फिर मंदिर के द्वार बंद हो जाते।

इस प्रकार का उपासना-क्रम दैनिक रूप से चलता रहता। उसमें गीत-वाद्य का महत्वपूर्ण स्थान था। महाप्रभू वल्लभाचार्य की आज्ञा से प्रत्येक भक्त-कवि को समय-समय पर कुछ गाना पढ़ना था। जैसा समय होता उसी के अनुसार प्रसंग का ध्यान रख कर वह गीत का निर्माण करता। सूरदास ने भी अनेक पद इसी प्रकार रचे होंगे। यदि पुष्टि-मार्ग की उपासना पद्धति की इतनी सुन्दर प्रतिष्ठा वल्लभाचार्य ने न की होती, तो कृष्ण-चरित इतने विशद रूप में हमें न मिल सकता था और हम एक ही प्रसंग पर अनेक भाव-पूर्ण पदों से वंचित रह जाते। यह अवश्य हुआ कि इस प्रकार एक ही प्रसंग पर प्रत्येक दिन पद बनाने से पुनरुक्ति भी बहुत हुई। परन्तु सूरदास की कवि-प्रतिभा ने प्रत्येक अवसर पर कुछ न कुछ नवीनता अवश्य उपस्थित की, अतः कोई विशेष हानि नहीं हुई।

इसी कारण हम देखते हैं कि जहाँ एक पद में एक ओर प्रसंग वश यशोदा कृष्ण को जगा रही हैं उधर उसी पद में भक्त भी कृष्ण के सामने अप्रकट रूप से उपस्थित है और लीला-गान के साथ अपने हृदय के भावों को भी भगवान के सामने रख रहा है। उदाहरण के लिए एक पद—

जागिये गुपाल लाल आनंद निधि नंद बाल

यशुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे।

नैन कमल से विशाल प्रीति वापिका मराल
मदन ललित वदन ऊपर कोटि वारि डारे ॥
उगत अरुन विगत शर्वरी शशांक किरन हीन
दीन दीपक मलिन छीन द्युति समूह तारे ।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भव विलास
आस आस तिमिरि तोष तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग मुखर निखर मधुर है प्रतीत सुनहु
परम प्राण जीवन धन मेरे तुम बारे ।
मनों वेद बंदी मुनि सुत वृन्द माधव गण
विरद वदत जै जै जै जैत कैटभारे ॥

उपस्थित किया जाता है । इस प्रकार यद्यपि सूरदास ने कृष्ण-लीला का वर्णन किया परन्तु अधिकांश लीला श्रीनाथ जी के सामने नैमित्तिक रूप से गाई गई है और उसमें भक्त के उपासना भाव का गुंफन आप ही आप होगया है ।

कृष्ण के चरित्र में इस प्रकार जो विस्तार-पूर्ण उनके नैमित्तिक कार्यों का वर्णन हुआ है) और उनके ऐश्वर्य और तदनन्तर विलास को पूर्णतः चित्रित किया गया है। उसके विषय में डा० धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि इसका अपरोक्ष कारण आगरा का नैकट्य है, जहाँ मुगल-सम्राट ऐश्वर्य और विलासिता को बड़े आडम्बर से चला रहे थे । यह बात सत्य है । चौरासी वैष्णवन की वार्ता आदि कथा-ग्रंथ पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्तों के मन में एक विशेष मनोवृत्ति चल रही थी । भक्त मुगलों के वैभव से प्रभावित अवश्य थे । उसके सम्मुख उन्होंने उससे भी अधिक महान् वैभव, ऐश्वर्य और विलास की सृष्टि की रचना की । इस वैभव और ऐश्वर्य के आगे वे देशाधिपति के वैभव और ऐश्वर्य को नितान्त क्षुद्र समझते थे ।

जो हो, कृष्ण की कथा के इतनी विस्तारपूर्वक कहलवाने के लिए हमें पुष्टि-मार्ग की उपासना-पद्धति को भी महत्वपूर्ण श्रेय देना पड़ता

है। सूरसागर दर्शन-ग्रंथ नहीं है। उसमें पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्त प्रासंगिक रूप से मिलते हैं। परन्तु उसके निर्माण में पुष्टि-मार्ग के धार्मिक सिद्धान्तों और नित्य तथा नैमित्तिक-क्रिया कलापों ने ही प्रधान भाग लिया है। सम्पूर्ण सूरसागर से पुष्टि-मार्ग की पुष्टि ही हुई है। वल्लभाचार्य ने जिस ओर इंगित किया था, सूरदास उसी ओर बढ़े और यद्यपि उन्हें चित्र का सारा रंग स्वयं ही भरना पड़ा परन्तु उसकी रूपरेखा उन्हें महाप्रभु के इन शब्दों से मिली जिन्हें हम पहले भी दूसरे प्रसंग में उद्धृत कर चुके हैं। षोडश ग्रंथ में महा प्रभु लिखते हैं—जो दुख यशोदा नन्दादिकों एव गोपीजनों को गोकुल में हुआ, वह दुख मुझे कब होगा ? गोकुल में गोपी जनों एवं सभी ब्रज वासियों को जो भली-भाँति सुख हुआ वह सुख भगवान मुझे कब देंगे। उद्धव के श्राने पर वृन्दावन और गोकुल में जैसे महान उत्सव हुआ था क्या वैसा मेरे मन में कभी होगा ? सूरदास ने इस सुख-दुःख को अपने मन में इतना प्रत्यक्ष किया कि उनका काव्य इतना सजीव और सफल होगया। उन्होंने यशोदा-नन्दादि के दुःख और गोपी गोप-जनों के सुख का अपनी आत्मा में अनुभव किया और उनके कवि-हृदय ने अलंकारों और काव्य-गुणों से सजाकर उसे छंदों में प्रकाशित किया। सूर जिस प्रसंग का वर्णन करते हैं वे उसी में रंग जाते हैं वे एक साथ यशोदा-नन्द, गोपी-गोप और ब्रज वासी सभी हैं। इसी कारण उनका काव्य इतना सफल हुआ है।

पुष्टि-मार्ग के नित्य-कर्म (कृष्ण का दैनिक कार्यक्रम) और नैमित्तिक कीर्तन (हिंडोला, चाचर, फाग और बसन्त) ने सूरसागर के दशम स्कंध को वृहदाकार बनाने में सहायता दी है। भागवत की मूल कथा को जहाँ एक ओर सूरदास की सौन्दर्य-प्रियता और लीला-भक्ति ने आगे बढ़ाया, वहाँ दूसरी ओर उन्हीं नित्य और नैमित्तिक कामों ने

उसकी वृद्धि की एवं रस और भाव-परिपाक के अनेक सुन्दर स्थल उपस्थित किये । बहुत सम्भव है सूरसागर का मूल कथा-भाग भागवत के आधार पर पहले रच लिया गया हो और बाद में सूरदास ने जो सहस्रों पद श्रीनाथ जी और नवनीत-प्रिया जी के समक्ष कीर्तन के रूप में गाए उनको प्रसंगानुसार छाँट कर मूल-कथा में स्थान-स्थान पर जोड़ दिया गया हो । नित्य काव्यों ने सूरसागर का कहाँ तक प्रभावित किया है यह एक इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि सम्प्रदाय की श्रीकृष्ण के भोग-समर्पण की प्रथा ने कितने ही ऐसे पदों की सृष्टि करवाई है, जिनमें षट्-रस व्यंजनों की नामावली के अतिरिक्त कुछ भी नहीं परन्तु नित्य कर्म में भोज्य सामग्री का स्थान होने के कारण सूरदास ने उसे भी छंद-बद्ध कर दिया है ।

सूरसागर का रहस्यवादी पद्य

सूरसागर के कुछ पद सगुण-रहस्यवाद के सुन्दर उदाहरण हैं। रहस्यवाद भक्त की आत्मा की सबसे ऊँची उड़ान है जब वह परमात्मा की ओर अग्रसर होता हुआ उसके अत्यंत निकट पहुँच जाता है।

यों तो भगवान की सारी लीला ही रहस्यात्मक है। सांत का अनंत का अनुभव—यह अचरज की बात है ही। जिस भगवद् कृपा (अनुग्रह या पुष्टि) के द्वारा यह अचरज सत्य हो जाता है वह स्वयं कम रहस्य की वस्तु नहीं। इसीलिए सूरदास ने अनेक पदों में भगवान की लीला और उनकी अनुकम्पा के प्रति आश्चर्य प्रगट किया है^१।

परन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य उन पदों में से है जिनमें भक्त की आत्मा भगवत्-वियोग के दुख से कातर होकर एक अलौकिक, अकल्पित रहस्य लोक की सृष्टि की है। निर्गुण-संतों का रहस्यवाद मूर्त-चित्रों की उपेक्षा करता है परन्तु भक्त सूरदास के रहस्यवादी पदों में भी मूर्त-चित्र स्पष्ट रूप से आते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में उनमें रहस्यमयी “अव्यक्तता या धुँधलापन^२” नहीं है। इस प्रकार के रहस्यवाद को हमने “सगुण रहस्यवाद” का नाम दिया है। वह नाम-रूप और गुणों का सहारा लेकर मात्र रूप गुण का अतिक्रमण करने की चेष्टा

१. निगम ते अगम कृपा भारी ।

अविगति गति कछु कहत न आवै ।

ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ।

२. अमरगीत सार पृ० १२ ।

करता है। संतों के रहस्यवाद की तरह एकदम इनका तिरस्कार नहीं कर देता।

इन सगुण-रहस्यवाद के पदों में सूरदास ने अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग किया है और रूपक के सहारे नकारात्मक चित्र को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। एक आदर्श-रहस्यमय लोक की कल्पना करते हुए सूरदास लिखते हैं—

चकई री ! चलि चरन सरोवर जहाँ न मिलन वियोग ।

निसिदिन राम राम की वर्षा, भय रुज नहिं दुख सोग ।

जहाँ सनक से मीन, हंस शिव, मुनि जन-रन-रवि-प्रभा प्रकास ।

प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर गुंजत निगम सुवास ॥

जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ता फल सुकृत अमृत रस पीजै ।

सो सर छाँड़ि कुबुद्धि विहंगम ! इहाँ कहाँ रहि कीजै ॥१

इस प्रसिद्ध पद में एक परोक्ष जगत की धुंधली-सी झलक दिखलाई गई है।

कबीर के इसी तरह के पद को सामने रखने से सूरदास के पद की व्यंजना और साहित्यिकता स्पष्ट हो जायगी। कबीर का पद इस प्रकार है—

हंसा प्यारे ! सरवर तजि कहँ जाय ?

जेहि सरवर विच मोती चुनते बड़ विधि केलि कराय ॥

सूख ताल पुरइनि जल छोड़ै कमल गयो कुम्हिलाय ।

कह कबीर जो अबकी बिलुखै बहुरि मिलि कव आय ॥

वास्तव में इस प्रकार के पद अनेक संतों और भक्तों ने कहे हैं उनकी रूढ़ि सी चलती जान पड़ती है। परन्तु कबीर और सूरदास के पदों में विषय और पद्धति में साम्य होते हुए भी अन्तर है। रूपक के प्रयोग से सूरदास ने अपने रहस्यलोक को अधिक मूर्त, भावमय, सुन्दर और सरस बना दिया है।

सूरदास ने अपनी रहस्यात्मक-अन्योक्तियों में चकई, सखि, भृङ्गी और सुवे को संबोधन किया है। ये सब आत्मा के प्रतीक हैं। यह बात समझ लेने से इन पदों की व्यंजना स्पष्ट हो जाती है और हम उच्चतम रहस्यमयता का अनुभव करने लगते हैं। चकई वाला पद उद्धृत किया गया है अन्य पद इस प्रकार हैं।

१. चलि सखि तिहि सरोवर जाहिं ।

जिहि सरोवर कमल कमला रवि कहीं विकसाहिं ॥

हंस उज्ज्वल पंख निर्मल अंक मिलि मिलि न्हाहिं ।

मुक्ति मुक्ता अंबु के फल तिन्हें चुनि चुनि खाहिं ॥

अतिहि मगन महा मधुर रस रसन मध्य समाहिं ।

पद्म वास सुगंध शीतल लेत पाप नसाहिं ॥

सदा प्रफुलित रहै जल बिनु निमिष नहिं कुम्हिलाहिं ।

देखि नीर जो छिलछिलो अति समभु कछु मन माहिं ॥

सघन गुंजत बैठि उन पर भौर हैं विरमाहिं ।

सूर क्यों लहि चलो उड़ि तहाँ बहुरि उड़ियो नाहिं ॥^१

२. भृङ्गी री भजि चरण कमल पद जहँ नाहिं निशि को त्रास ।

जहाँ विधि भानु समान प्रभा नख सो वारिज सुख रास ।

जिहिं किंजल्क भक्ति नव लक्षण याम ज्ञान रस एक ।

निगम सनक शुक नारद शारद मुनिगन भृङ्ग अनेक ।

शिव विरंचि खंजन मन रंजन छिन छिन करन प्रवेश ।

अखिल कोश तहाँ वसत सुकृत जन प्रगटत श्याम दिनेश ।

सुनु मधुकरी भरम तजि निर्भय राजिव रवि की आश ।

सूरज प्रेम सिधु में प्रफुलित तप्त चलि करे निवास ।^२

१. सूरसागर स्कं० १ पद १८२

२. ,, ,, १८६

३ सुवा चलि तो बन को रस पीजै ।

जा बन राम नाम रस अमृत श्रवण पात्र भरि लीजै ।

को तेरो सुत पिताहू काको घरनी घर को तेरो ।

काम कराल श्वान को भोजन हू कहै मेरो मेरो ।

बड़ी वाराणसी मुक्ति क्षेत्र है चलि तोको दिखराऊँ ।

सूरदास साधुन की संगति बड़ो भाग्य जो पाऊँ ।^१

इन सब रहस्यवादी पदों का विश्लेषण करने से इतनी बातें स्पष्ट होती हैं ।

(१) सरस भावुक-हृदय कवि होने के कारण सूर की कल्पना कबीर आदि सतों के समान अधिक ' नकारात्मक ' नहीं हो पाई है । परन्तु सूरदास ने कहाँ क्या है इसी बात को स्पष्ट करके सगुण रहस्यमय लोक की सृष्टि की है ।

(२) रूपक के प्रयोग से चित्र स्पष्ट उतर सका है । इन पदों में उन्होंने सरोवर और वाराणसी का दो उपमाओं का प्रयोग किया है और उनके द्वारा यदि रूपक नहीं तो कुछ २ उसी-जैसे अलंकार की सृष्टि की है ।

(३) भिन्न-भिन्न वस्तुओं (भृङ्गी मधुकर शुक, सखी और चकई) को एक ही वस्तु (आत्मा) का प्रतीक बनाने के कारण विनय की अलौकिकता स्पष्ट हो जाती है ।

(४) कवि ने सामान्य द्वारा असामान्य की व्यंजना की है और असामान्य गुणों को प्रत्यक्ष करने के लिये या तो ' नकारात्मक ' पद्धति का प्रयोग किया है अथवा सामान्य वस्तु को ही कोई विशेष गुण प्रदान कर दिया है ।

सूर का प्रकृति-वर्णन

सूरदास के काव्य-नायक श्रृङ्गार हैं और ब्रजभूमि उनका रंगस्थल है। कृष्ण का जन्म, तदनंतर विकास, इसी ब्रजभूमि में हुआ। मथुरा जाने से पहिले की सारी बाल किशोर लीलाएँ ब्रज में ही हुईं। अतएव कृष्ण में संबन्धित होने में भक्त सूरदास का ब्रजभूमि और उसकी प्रकृति से प्रेम होना आवश्यक था। यह मन्त्र है कि कृष्ण मथुरा चले गए। उन्होंने द्वारका वसाई और हस्तिनापुर, कुम्भज आदि अनेक स्थानों की रज को अपने चरण चिन्दी में अंकित किया परन्तु सूरदास के कृष्ण का संबंध केवल गोकुल (ब्रज) तक ही है। उन्हें कृष्ण के तरुण और प्रौढ़ जीवन के प्रति अनुगाग नहीं। अतः उनके लिए कृष्ण की लालाभूमि ब्रज मात्र है। ब्रज के प्रति सूरदास का प्रेम इन पदों से प्रगट होता है :—

कहाँ सुख ब्रज की सौँ मंसार ।

कहाँ सुखद बशी बट यमुना यह मन सदा विचार ॥

कहाँ बनधाम कहीं राधा संग कहीं संग ब्रज वाम ।

कहाँ रम रास बीच अतर सुख कहीं नारि तनु ताप ॥

कहीं लता तरु तरु प्रति भूलनि कुंज कुंज बन धाम ।

कहीं विरह सुख बिनु गोपिन संग सूश्याम मम काम ॥

अथवा—

सेहि बसिए ब्रज की वीथिन ।

साधुनि के पनवारे चुनि चुनि उदरजु भरिए सीतनि ॥

पैड़े में के बमन बीनि तन छाया परम पुनीतनि ।

कुंज कुंज तर लोटि लोटि रचि रज लागौँ रंगी तनि ॥

निस दिन निरखि यसोदा नंदन और जमुना जल पीतनि ।

८. दरसन सूर होत तन पावन दरसन मिलत अनीतनि ॥

हिन्दी काव्य में प्रकृति का पहला विशद वर्णन सूर-काव्य में मिलता है। उसके कई कारण हैं। एक श्रीकृष्ण की जीवन-लीला का संबंध एक ऐसे स्थान से लगा हुआ था जो प्राकृतिक विभूतियों से पूर्ण है। कृष्ण गोपालक जाति के बालक हैं; वे अहीर बालक बालिकाओं में बढ़ते हैं। गो-चारण के लिये यमुना तट पर जाते हैं; गोप बालिकाओं से उनका प्रेम प्रसंग चलता है। यह प्रेम-लीला किसी राज प्रासाद के निर्जन-प्राङ्गण में नहीं चलती। ब्रज की प्रकृति का विस्तृत खुला प्राङ्गण इसके लिए खाली पड़ा है। उसमें यमुना-तट के करील कुंज, कदम्ब और तमाल के वृक्ष हैं, वीथिका में सघन मधुवन है। प्रकृति राधा कृष्ण की प्रेम लीला में कितनी सहायक होती है, यह बात युगल जोड़ी के प्रेम के विकास का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाती है। इस लीला क्षेत्र में कृष्ण की लीला के साथ साथ प्रकृति की जो लीला चला करती है उसे छोड़ कर कोई भी कवि कृष्ण काव्य की चर्चा नहीं कर सकता था। इसी लिए सूरदास को अपने नायक कृष्ण के जीवन के साथ यमुना, कदम्ब कुंज, ऋतु परिवर्तन, दावानल और न जाने प्रकृति के कितने अंग गूँथ देने पड़े।

दूसरे, सूरदास का जीवन स्वयम् प्रकृति के निकट था। उनका अधिकांश जीवन यमुना के तट पर और ब्रज भूमि में ही बीता। उन्होंने ब्रज की सागी भूमि से निकटतम परिचय प्राप्त किया और स्वभावतः वह उनके काव्य का विषय बन गया।

तीसरे वल्लभाचार्य ने ब्रजभूमि की महत्ता स्थापित कर ही दी थी। उन्होंने श्रीनाथ की स्थापना के लिए वही स्थान चुना था। लीलानायक कृष्ण का जन्म-स्थान होने के सिवाय वह पुष्टि-मार्गी भक्तों की इष्ट देव-मूर्ति का निवास स्थान भी था।

इन सब कारणों ने सूर को ब्रज-प्रकृति को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए बाधित किया। वास्तव में सूर-काव्य प्रकृति में डूबा हुआ है। कृष्ण का विकास जैसे ब्रज की प्रकृति में होता है उसी प्रकार सूर-साहित्य का विकास भी ब्रज-प्रकृति की छाया में ही होता है। ब्रज की प्रकृति ने उन्हें केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिए ही सामग्री नहीं दी है, वह उनके काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित हुई है।

किन्तु सूरदास ने जिस ब्रज को देखा है उसके दो पहलू हैं। जब तक सूरदास के दृष्टिकोण को हम समझ नहीं लेंगे तब तक हम सूरदास के प्रकृति-वर्णन का सच्चा महत्व नहीं ग्रहण कर सकते। सूरदास का ब्रज जहाँ एक ओर हमारे लोक का वह प्रांत है जहाँ जमुना, वृंदावन, गोवर्धन, मधुवन, करील-कुंज आदि की सत्य सत्ता है वहाँ दूसरी ओर वह हमारे लोक का नहीं भी है। वह लोकोत्तर है। कवि ने उसे स्पष्ट ही नित्य कहा है^१। वहाँ कुंज, हिंडोर, समीर सभी नित्य हैं। वहाँ

१. नित्य रूप वृंदावन धाम ।

× × × ×
नित्य कुंज सुख नित्य हिंडोर ।

नित्यहि त्रिविधि समीर झकोर ।

सदा वसत रहत जहाँ बास ।

सदा हर्ष जहाँ नहि उदास ।

कोटिक कीरा सदा तबरोर ।

सदा रूप मन्मथ चित चोर ॥

विविध सुमन बन फूले डार ।

उन्मत मधुकर अमर अपार ॥

नव पल्लव वन शोभा एक ।

विहरत हरि संग सखी अनेक ॥

कुहू कुहू कोकिळा सुनाई ।

सुनि सुनि नारि भई हरपाई ॥

वसंत ही वसंत है। अलबत्ता, ब्रज के फूल-बन डार, मधुकर, नव पल्लव और कोयल को वह नित्य विशेषण से विभूषित नहीं करता, परन्तु इंगित इसी ओर है। यह स्पष्ट है। सूरदास के लिए ब्रज-भूमि और उसका प्रकृति-व्यापार अलौकिक, अनंत, और नित्य है जहाँ चित्सत्ता का लीला व्यापार चलता रहता है। वस्तुतः अनंत की लीला-भूमि सांत हो ही नहीं सकती।

यह बात सूरदास की मौलिक कल्पना हो ऐसी बात नहीं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दर्शन में जिस गोलोक की स्थापना की थी वह दृष्टि कोण इसी का परिणाम है। कृष्ण गोलोक-वासी है। वह भक्तों के लिए अपने गोलोक की समस्त विभूतियों के साथ पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और वह जिस ब्रज में क्रीड़ा-लीला करती हैं वह गोलोक की प्रतिच्छाया ही होता है। कवि ने ब्रज-धाम को नित्य बना कर इसी सिद्धान्त की व्यंजना की है परन्तु यह सूरदास की विशेषता है कि वह अपने प्रतीकों का रूप केवल कुछ ही स्थानों में खोलते हैं। सूफ़ी-कवियों की तरह सदैव ही प्रतीकार्य पुकारते हुए नहीं चलते। इसी से उनका काव्य इतना सहज-सरल है। उन्होंने अपने ग्रंथ में अलौकिक नायक और उसकी अलौकिक लीला-भूमि का वर्णन किया है। परन्तु फिर भी उनका नायक और उसकी लीला-भूमि दोनों हमारे लिए सामान्य हैं। कृष्ण सामान्य गोप हैं। उनकी लीला मानवी है और उनकी लीला-भूमि भी हमारी परिचित ब्रज-भूमि ही है।

ब्रज मंडल की सारी प्रकृति कृष्ण-लीला की पृष्ठभूमि है। ब्रज-मंडल का विस्तार अधिक नहीं है। एक अलौकिक-दिव्य-चरित्र की लीला-भूमि होने के कारण उसमें अनंत विस्तार की व्यंजना हुई है। भागवत में कृष्ण की इस लीला-भूमि का वर्णन इस प्रकार है।

दिशः प्रसेदुर्गमनं निर्मलोडुगणोदयम् ।

मही मंगलभूयिष्ठपुरग्रामब्रजाकरा ॥

नद्यः प्रसन्नससिला हृदा जलरुहश्रियः ।

द्विजालिकुलसन्नादस्तबका बनराजयः ॥

यह दशवीं शताब्दी की ब्रज-भूमि का चित्रण है। सूरदास ने इस प्रकार का प्रबंधात्मक वर्णन उपस्थित नहीं किया परन्तु उनके सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन में ब्रज मण्डल की यही छवि हृदय में उतरती है। इसी आनंद भूमि और उसकी प्रसन्न प्रकृति की छाया में सूर के नायक ने क्रीड़ाये की हैं, सूर का अध्ययन करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

सूरदास ने अपने चरित्र-नायक को अलग रख कर उसकी लीला-भूमि का कहीं भी चित्रण नहीं किया है। उनके काव्य में उनके पात्र और ब्रजमण्डल एवं उसकी प्रकृति मिलकर एकात्म हो गए हैं। सूर सागर में कृष्ण की लीलाओं और गोपियों की विप्रलम्भ भावना के साथ साथ प्रकृति के शतशः सश्लिष्ट-चित्र उपस्थित होते हैं। इन चित्रों में प्रकृत के अनेक रूप हमें मिलते हैं। अधिकांश रूप कोमल हैं। जिस प्रकार परुष रसों में सूर की वृत्ति नहीं रमती उसी प्रकार प्रकृति के परुष चित्र भी अधिक नहीं दिये गये। उनकी प्रकृति मूलतः कोमल और आनंदमय है। उसमें आनंद तत्त्व की प्रधानता इतनी अधिक है कि गोपियाँ वियोगावस्था में उसके आनंदमय रूप को सहन नहीं कर सकतीं। उनके उलाहना देने पर भी मधुवन के वृक्ष अवश्य ही हरे रहते हैं^१। इससे यह स्पष्ट होता है कि सूरदास के द्वारा चित्रित की गई ब्रज की प्रकृति भागवत की प्रकृति के समान ही आनंदमय है। साथ ही वह कोमल और नित्य भी है।

इसी आनन्दमय, नित्य और प्रसन्नवदना प्रकृति में पात्रों की हृदय-भावनाओं के अनुसार थोड़ा परिवर्तन होता रहता है। श्याम के वियोग में गोपियों को उसके सुन्दर फूल अगारे जैसे लगते हैं^२, उसमें इन्द्र के

१. मधुवन तुम कत रहत हरे ।

२. वे जो देखे राते राते फूलन फूले डार ।

हरि विनु फूल करी सी जागति करि करि परत अंगार ।

भेजे हुये बादल प्रलय की वर्षा करते हैं और दावानल ' भरभरता ' हुआ आता है परन्तु इन सभी परिवर्तनों के पीछे ब्रज की प्रकृति अपार-वर्तनशाल है यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि मूरदास उसके आनंदमय कोमलरूप को ही नित्य मानते हैं। ऐसा लगता है जैसे ब्रज की प्रकृति के मूलतः आनंदमय रूप में कुछ समय के लिए विकार आ गया हो। आनंदमय की लीला भूमि और उसकी प्रकृत वज्र रूप से निरंतर आनंदमय है।

ब्रज की प्रकृति की सबसे बड़ी महत्ता है कि उसकी गोद में एक अलौकिक चरित्र पल कर बड़ा हुआ है और उसी का अंचल छाया में उसने क्रीड़ा की है। कृष्ण लीला का भक्त इस बात को जानता है और इसीलिये वह कहता है—

दुर्लभ जन्म, दुर्लभ वृंदावन दुर्लभ प्रेम तरंग^१

यह केवल इसलिये कि वह वृंदावन की सत्ता को कृष्ण से अलग सत्ताधारी नहीं समझता। एक तो वह कृष्ण की लीला भूमि है, दूसरे उसने कृष्ण के विकास में यथेष्ट भाग लिया है।

कृष्ण के जन्म और तदनंतर उनकी लीला में साथ देने के कारण अस्पष्ट रूप से ब्रज की प्रकृति का थोड़ा अपना व्यक्तित्व भी विकसित होगया है। कृष्ण के जन्म लेते ही हम उसे उनकी लीला में साथ देने के लिये तत्पर पाते हैं। रात अधिक अंधेरी हो जाती है, बिजली चमकने लगती है तथा भयंकर वर्षा होने लगती है^२ जो वसुदेव को कृष्ण को गोकुल पहुँचाने में सहायता देती है। प्रकृति की सहकारिता का दूसरा दर्शन हमें

१. गोपियों की उक्ति है—

हम न भईं वृंदावन रेनु।

जिन चरणन डोलत नंद नदन नित प्रति चारत धेनु।

हमते धन्य परम ये द्रुम वन बालक वृद्ध अरु धेनु।

२. निसि अंधेरी बीजु चमकै सघन वरषै मेंह।

राधा-माधव के प्रेम-प्रसंग में मिलता है। घटायें घिर रही थीं, बिजली चमक रही थी। नंद को डर हुआ। उन्होंने राधा को बुलाकर कहा 'श्याम को घर ले जा।' उसी दिन वर्षा-भङ्गी में श्याम-श्यामा के हृदय में प्रेम का अंकुर उत्पन्न होता है—

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी ।
 पवन भकभोर चपला चमकि चहूँ ओर
 सुवन तन चितै नंद डरत भारी ॥
 कह्यो वृषभानु को कुँवरि सो बोलि कै
 राधिका कान्ह घर लिये जा री ।
 दोऊ घर जाहु संग नभ भयो
 श्याम रंग कुँवर गह्यो वृषभान वागी ॥
 गये बन ओर नवल नंद किशोर
 नवल राधा नये कुंज भारी ।
 अंग पुलकित भये मदन तिन तन
 जपे सूर प्रभु श्याम श्याम विहारी ॥

इसके बाद तो ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब ब्रज के लता, कुंज और उसकी ऋतुयें राधा कृष्ण के मिलने का साधन उपस्थित करती हैं। कृष्ण-लीला का अधिक भाग गोकुल ग्राम से बाहर कालिन्दी के तट पर बसे हुये लता-कुंजों में होता है। संयोग-शृङ्गार के अवसर पर प्रकृति राधा-माधव के आनंद में वृद्धि करती है। ऋतुओं के परिवर्तन के साथ लीला प्रसंग का भी परिवर्तन हो जाता है^१। ऐसा जान पड़ता है जैसे कृष्ण की लीला प्रकृति पर ही आश्रित हो। वसंत ऋतु आने पर लीला इस प्रकार चलती है—

-
१. जैसिय शरद चाँदनी निर्मल तैसोइ रास रंग उपजायो ।
 तैसिय कनक बरन सब सुंदरि यह शोभा पर मन बल्लचायो ।
 तैसी हंस सुता बबिअ तट तैसेइ करपवृच सुखदायो ।

सुन्दर संग ललना विहरी, वसन्त सरस ऋतु आयी ।
 लै लै छुरी कुँवर राधिका, कमल नयन पर धायी ।
 द्वादस बन रतनारे देखियत, चहुँ दिसि टँसू फूले ।
 बौरे अँबुवा और द्रुम बेली, मधुकर पग्मिल भूले ।
 सरिता सीतल बहत मंद गति, रवि उत्तर दिसि आयो ।
 प्रेम उमंगि कोकिला बोली विरहिन विरह जगाओ ।
 ताल मृदंग, बीन बाँसुरि, डफ, गावत मधुरी बानी ।
 देत परस्पर गारि मुदित है, तरुनी बाल सयानी ।
 उसी लीला का शरद-ऋतु के आगमन पर यह रूप हो जाता है—

शारद निशि देखि हरि हरपि पायो ।

विपिन वृन्दावन सुभग फूले सुमन रास रुचि श्याम के मनहिँ आयो ।
 परम उज्ज्वल रैनि छिटकि रही भूमि पर सद्य फल तरुन प्रति लटकि लागे ।
 तैसोइ परम रमणीक यमुना पुलिन त्रिविधि बहे पवन आनंद जागे ।
 राधिका रमन वन भवन सुख देखिके अधर धरि बेनु सुललित बजाई ।
 नाम लै लै सकल गोप कन्यान के सवन के श्रवन वह ध्वनि सुनाई ।

इस प्रकार हम देखते हैं प्रत्येक ऋतु में कृष्ण-लीला और प्रकृति में विशेष सामंजस्य उपस्थित हो जाता है । सूरदास के लीला-नायक और उनकी लीला को प्रकृति की पृष्ठ-भूमि से अलग करके देखना कठिन है ।

भागवत में यह बात नहीं । वहाँ लीला और प्रकृति में इतना संबंध स्थापित नहीं किया गया है । भागवत में प्रकृति का अपना कोई व्यक्तत्व नहीं है । उसका प्रयोग केवल दो अर्थों में हुआ है । या तो उसका संबंध कृष्ण-भक्ति से जोड़ा गया है अथवा नीति और दर्शन-ज्ञान के कुछ सिद्धान्तों से । प्रत्येक स्थान पर जहाँ प्रकृति का कुछ परिचय मिलता है, भागवतकार उपदेशक बनना नहीं भूला है । वस्तुतः सूरसागर का वह अंग जिसमें प्रकृति का चित्रण हुआ है पूर्णतः मौलिक है । सूरदास का प्रयोजन कृष्ण की लीला-भूमि और उसकी प्रकृति का वर्णन है । उन्हें

नीति और दर्शन से थोड़ा भी लगाव नहीं। उन्होंने प्रकृति के संश्लिष्ट-चित्रों को नीति और दर्शन के आघात से खण्डित नहीं किया है। सूर का हृदय प्रकृति की और नैसर्गिक रूप से जाता है उन्हें दर्शन, नीति और धर्म के माध्यम की आवश्यकता नहीं। सूर की राधा और यशोदा की तरह सूर की प्रकृति भी सयोग में पूर्णतः संयोग और वियोग में पूर्णतः वियोग का अनुभव करती है। सच तो यह है कि वियोग में उसका रूप अधिक निखर जाता है क्योंकि तब वह हमारे हृदय के अधिक निकट आ जाती है। ब्रज की प्रकृति गोपियों के हृदय का दर्पण है। कृष्ण की उपस्थिति और अनुपस्थिति का प्रभाव जिस प्रकार गोपियों पर पड़ता है उसी प्रकार ब्रज की प्रकृति पर भी। सूर की संयोग लीलायें प्रकृति के इतनी निकट हुई हैं कि यदि ऐसा न होता तो हमें आश्चर्य होता। इसके साथ ही ब्रज की प्रकृत अत्यन्त भाव प्रवण है। जहाँ कृष्ण के वियोग में उसकी यह दशा थी—

नाचत नहीं मोर ता दिन ते बोले न वर्षा काल ।
मृग दूबरे तुम्हारे दरश ।वनु सुनत न वेणु रसाल ।
बृन्दावन हरयो होत न भावत देखो श्याम तमाल ।

वहाँ कृष्ण का संदेश पाते ही—

फूले व्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।
फूचो यश मूचो को वरणन तेहु तौ सब विसरायो ॥
निकसि कंदरा हू ते केहरि शिर पर पूँछ हिलायो ।
गहवर ते गजराज आइ अंग ही सर्व गर्व बढ़ायो ॥
ऊँचे वेमि विहंगम भामै शुक वनराइ कहायो ।
किलकि किलकि कुल सहित आपने कोकिल मंगल गायो ॥

सूर ने प्रकृति के कोमल अंगों का ही चित्रण विशेष रूप से किया है। जहाँ वे कृष्ण की संयोग लीला का प्रसंग लिखते हैं, वहाँ वे प्रकृति को लीला की भूमि के रूप में देखते हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है

जैसे वे स्वयं उस लीला में भाग ले रहे हों और प्रकृति का ऐश्वर्य और कौतुक का खेल उनके सामने ही चल रहा हो। परन्तु जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं सूर प्रकृति का चित्रित करने का अपना दृष्टिकोण बदल देते हैं। वे गोपियों को अपना माध्यम बना लेते हैं और उन्हीं की आँखों से देखकर प्रकृति का चित्रण करते हैं—

ब्रज ते द्वै ऋतु पै न गई ।

श्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि तुम त्रिनु अधिक भई ।

उरध उसास समीर नयन घन सब जल जोग जुँरै ।

वरषि प्रगट कीन्हे दुर दादुर हुते जुदूर जुरे ।

तथा—

पिक चातक वन वसन न पावहिं वायस वलिहि न खात ।

विप्रलंब के उद्दीपन के लिए उन्होंने प्रकृति का चित्रण नहीं किया यद्यपि संयोग-शृङ्गार के उद्दीपन के लिये उन्होंने सारी संयोग-लीलाओं में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। विप्रलंब में सूर की प्रकृति गोपियों की तरह ही क्षण, हीन और व्याकुल है। वह रूप रंग दिखाकर गोपियों के विरह को बढ़ाती नहीं।

अब तक हम यह देख चुके हैं कि सूरदास के प्रकृति-वर्णन के चित्र अधिकतर कोमल हैं। सूर की प्रकृति स्वयम् कोमलता और सुन्दरता-प्रिय है। उनके चरित्र नायक की लीला का स्वरूप कोमल एवं सुन्दर होने के कारण उनकी वीथिका भी इसी प्रकार की हो सकती थी परन्तु सूरदास ने अनेक स्थलों पर प्रकृति के कठोर और भयानक चित्र भी उपस्थित किये हैं; उनमें वे पूर्णतः सफल भी हुये हैं। प्रकृति का इस प्रकार का चित्रण केवल प्रसंग वश हुआ है और उससे परोक्ष में कृष्ण के शक्ति और शौर्य की व्यंजना होती है। गोवर्धन की पूजा से अप्रसन्न होकर इन्द्र ने मेघों को बुलाकर ब्रज को डुबाने की आज्ञा दी। उस समय सूरदास ने मेघों की भयानक प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है—

मेघदल प्रबल वृज लोग देखैं ।

चकित जहँ तहँ भये निगखि बादर नए ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं ।
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंधकाला ।
चकृत भये नंद सब महरि चकृत नर नारि हरि करत ख्याला ।
घटा घनघोर घहरात अररात दगरात सररात ब्रज लोग डगपैं ।
तड़ित आघात तररात उतपात सुनि नर नारि सकुचि तन प्राण अरपैं ।

इस चित्र में एक ओर ब्रजवासियों के भयाकुल मनोभावों के द्वारा मेघों की भयंकरता की व्यंजना की गई है और दूसरी ओर श्रुत्यानुप्रास और दीर्घ स्वर की पुनरावृत्ति द्वारा भी यही बात प्रगट की गई है ।

वृज पर बरसते हुये प्रलय मेघों का वर्णन सूरदास ने इस प्रकार किया है—

बादर घुमड़ि घुमड़ि आये ब्रज पर वरषत कारे धूमरे घटा अति ही जल ।
चपला अति चमचमाति ब्रज जन सब डरडरात टेरत शिशु पिता
मात ब्रज गलबल ।

गरजत ध्वनि प्रलय काल गोकुल भयो अंधकार चकृत भये ग्वाल बाल
धहरत नभ करत चहल ।

अथवा --

गिरि पर बरपन आये बादर ।
मेघवर्त जलवर्त सैनि सजि आये ले ले आदर ।
सलिल अखण्ड धार धर टूटत कियो इन्द्र मन सादर ।
मेघ परस्पर इहै कहत हैं धोइ करहु ब्रज खादर ।
देखि देखि डरपत ब्रजवासी अतिहिं भये मन कादर ।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै सुरपति किये निरादर ।

तुलसीदास ने 'घन घमंड गरजत नभ घोरा' वाली पंक्ति में जिस कलापूर्ण ढंग से वर्षा की भयंकरता स्पष्ट की थी सूरदास उस कला से अपरिचित नहीं थे । उन्होंने अनुप्रास, कर्ण कठोर शब्दों और दीर्घावृत्ति

वाले छंदों के प्रयोग के द्वारा प्रलय-वर्षा का चित्र सफलता से अंकित किया है ।

घटा आई गरजि युवति लईं मन लरजि बीजु चमकति तरजि डरन गाता ।
और काऊ नहीं तुम त्रिभुवन धनी विकल है के कहीं तुमहि नाता ।

इसी प्रकार दावानल के प्रसंग में सूरदास ने एक बार फिर प्रकृति के कठोर अंग का चित्रण किया है —

ब्रज के लोग उठे अकुलाइ ।

ज्वाला देखि अकाश बराबरि दशहुँ दिशा कहुँ पारि न पाइ ॥

भरहरात बन पात गिरत तरु धरणी तरकि तड़ाक सुनाइ ।

जल वर्षत गिरिवर तर वाचे अब कैसे गिरि होत सहाइ ॥

लटक जात जर जर द्रुम बेलि पटकत बाँस काँस कुश ताल ।

उचटत फर अंगार गगन लौँ सूर निरखि ब्रज जन बेहाल ॥

सूरसागर स्कंद १० पद ६८०

भहरात भहरात दावानल आयो ।

घेरि चहुँ ओर करि शोर अदोर वन धराण आकाश चहुँ पास छायो ॥

बरत वन बाँस धरहत कुश कांस फटि चटक लट लटक द्रुमन वायो ।

अति अगिनि भर भार धुंधकार करि उचटि अंगार भंभार छायो ॥

वरत बन पात भहरात भहरात अररात तरु महा धरणी गिरायो ।

पद ६८२

सूरदास का काव्य शास्त्र का अधिक सहारा नहीं लेता । उन्होंने

इस विषय में भागवत का सहारा भी नहीं लिया है ।

प्रकृति-संबंधी उन्होंने अपने चारों ओर की वृज प्रकृति को देखा

उपमाएं है और उसका सूक्ष्म अध्ययन किया है । इस अनुभव

के सहारे वे अपनी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को

अत्यन्त सजीव बना सके हैं । उनके इन काव्यांगों में प्रकृति को महत्व पूर्ण स्थान मिला है ।

सूर की उपमाओं का एकदम सामान्य होना उनकी विशेषता है। उन्होंने ब्रज की नित्य प्रते की प्रचलित वस्तुओं और प्राकृतिक प्रसंगों को हमारे सामने इस प्रकार रख दिया है कि हमें आश्चर्य होता है। इन उपमाओं में परवर्ती शृङ्गारिक कवियों की उपमाओं की भाँति नागरिकता भः नहीं। ग्राम्य जीवन का जितना प्रयोग सूर के काव्य में हुआ है उतना और कहीं नहीं हुआ। इससे साधारण और नित्य परिचित उत्प्रेक्षा कहाँ हो सकती है—

मिलि नाचत करत कलोल छिरकत हरद दही ।
मानों वर्षत भादों मास नदी घृत दूध बही ।



सूर-साहित्य की कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें

सूरसागर तथा भागवत की तुलना करने से यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि भागवत में ही अतिप्राकृत और अति प्राकृतिक को स्थान मिल चुका है। भागवत के अति प्राकृतिक और अति प्राकृतिक^१ और अति प्राकृतिक^२ कृष्ण मानवोपरि हैं। वे अतिप्राकृत हैं और राधा उनकी लीला सगिनि प्रकृति अथवा माया हैं वह भी अतिप्राकृत हैं। भागवत की कथा को ध्यान से पढ़ने पर पता चलेगा कि गोपी-गोप और ब्रज-भूमि सभी अतिप्राकृतिक है। गोपी-गोप वास्तव में भगवान की प्रकृति अथवा माया के अनेक रूप हैं। ब्रज भूमि गोकुल की प्रतिमूर्ति है। भागवत में जो घटनायें घटती हैं उनमें से कितनी ही इस लोक के लिये असम्भव हैं। उनके पीछे यही ध्वनि होती है कि वे कृष्ण-कारण के संबंध में मुक्त हैं और एक अति प्राकृत सत्ता के साथ उनका संबंध होने के कारण वे मूल में असम्भव होती हुई भी प्राकृतिक हैं।

सूरसागर भी इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है। उसके कृष्ण भी मानवोपरि हैं। वह पूर्ण ब्रह्म हैं जो लीला मात्र के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये हैं। इसीलिये उनके संबंध में ऐसी अनेक बातों का घटना असम्भव नहीं है जो अति प्राकृतिक हों। उनसे एक लाभ भी होता है। अति प्राकृतिक घटना का संबंध चरित्र से जुड़ जाने पर उसकी अलौकिकता स्पष्ट रूप में व्यंजित हो जाती है। उसका दैविक रूप भक्त को ग्राह्य होने

१. Supernatural power.

२. Supernatural object or event.

लगता है। सूरदास ने इस क्षेत्र में कुछ भी नवीनता नहीं दिखाई है। उन्होंने कृष्ण के अलौकिक चरित्र को स्पष्ट करने वाली सभी घटनाओं को भागवत से जैसा का तैसा ले लिया है। यह सूरदास की विशेषता है कि उन्होंने मौलिक कल्पना के द्वारा मानवीय चरित्र और मानवीय घटनायें ही उपस्थित की। अपनी प्रतिभा के बल से अलौकिक और अलौकिक में इतना सामंजस्य उपस्थित कर दिया कि दोनों एक जैसी हो गईं। कृष्ण लीला के पाठकों को कृष्ण की मानवीय एवं अमानवीय लीलाओं में कुछ भेद अधिक नहीं देख पड़ता। सूरदास ने उनकी मानवीय और लौकिक लीलाओं को भी अमानवीय और अलौकिक लीलाओं के ऊँचे स्तर तक उठा दिया है। नीचे इस संबंध में कुछ अति प्राकृतिक स्थलों के उदाहरण दिये जायेंगे।

(१) बंदी-गृह में कृष्ण-जन्म-संबंध की आश्चर्य-घटना—

चारि भुजा जाके चार आयुध निरखिले कर ताउ ।
जो पै मन परतीत आवै नंद घर ले जाउ ॥
श्वान सूते पहरा सब नींद उपजी गेह ।
निशि अंधेरी बीजु चमकै सघन वरपै मेह ॥

(२) देवता, किन्नर, गंधर्व आदि की उपस्थिति—

आनदै आनद बढ्यो अति ।

देवन दई दुंदुभी बजाइ सुनि मथुरा प्रगटे यादवपति ॥

(३) माटी प्रसंग में—

देखो रे यशुमति बौरानी ।

घर-घर हाथ दिखावत डोलत गोद लिए गोपाल विनानी ।
जानत नाहिं जगत गुरु माधव यहि आये आपदा नसानी ॥
जाको नाँव शक्ति पुनि ताकी ताही देत मंत्र पढ़ि पानी ।
अखिल ब्रह्माण्ड उदर गति जाकी ज्योति जल थलहिं समानी ॥

(४) ब्रज-भूमि के संबंध में सूरदास की धारणा—

नित्य धाम वृंदावन श्याम ।
 नित्य रूप राधा ब्रजवाम ॥
 नित्य रास जल नित्य विहार ।
 नित्य मान खडिताभिसार ॥

इन कुछ अवतरणों के अतिरिक्त सूरदास सारे सूरसागर में इसी बात की व्यंजना करते हैं । चाहे प्रसंग असुर-वध का हो चाहे मुरली वादन का, यह स्पष्ट हो जाता है कि यह साधारण मनुष्य की लौकिक-लीला नहीं है । कृष्ण की अलौकिकता दिखाने के लिये सूरदास ने कई नवीन प्रयोग भी किये हैं । कुछ स्थानों पर उनका नाम न लेकर उनके स्थान पर किसी उपमान का नाम दे देते हैं । यह उपमान प्रतीक रूप में कृष्ण की अलौकिकता की व्यंजना करता है । अनेक पदों में उन्होंने कृष्ण को कमल कहा है । यद्यपि इस बात का निर्देश उन्होंने नहीं किया कि वे इस प्रकार किसी रहस्य की सृष्टि कर रहे हैं ।

उस युग में साधारण मनुष्य के जीवन का स्रोत जैसे सूख-सा गया था । सामान्य संस्कार उसी प्रकार होते थे जिन २ युग का चित्र^१ प्रकार आज भी होते हैं परन्तु जीवन में विलास की मात्रा अधिक बढ़ गई थी । समाज पतनोन्मुख था । मनुष्य का जीवन आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन और निरर्थक हँसी-खुशी में बीत जाता था । लोगों में सयम की थोड़ी भी मात्रा नहीं रही थी । परकीया के प्रति प्रेम का चलन समाज की जड़ को खा रहा था ।

१. चौपडि जगन मडे जुग बीतै ।

× × ×
 आलिंगन चुम्बन परिरंभन ।
 नख छत चारु परस्पर हासी ॥
 केतिक करुना वेजि चमेली ।
 सुमन सुगंध सिचाये ॥

वैभव और ऐश्वर्य को प्रगट करने की मात्रा में भी वृद्धि थी। ग्राम-पति बड़े-बड़े महल बनाकर द्वार पर हाथी बाँधते थे। जन-समाज उपासना के वाह्य अंगों पर अधिक बल देता, व्रत रखता और तीर्थ करता। उपासना की पद्धति कठिन थी। लोग जप, तप, संयम, नियम धर्म और व्रत का कठिन मार्ग साधने का प्रयत्न करते थे किन्तु इस प्रकार का कठिन योग उनमें सधता था। जो लोग धार्मिक प्रवृत्ति के होते थे वे सूठे आडंबर के साथ ब्राह्मण और साधुओं को भोजन करा कर अपने पुण्य कर्म की इति समझ लेते थे। उनके जीवन में अस्थिर भावनाओं की प्रधानता थी। उनके सामने कोई आदर्श नहीं था। वे अपना सारा समय हास-विलास, चौपड़ और कलह में बिता देते।

सूरसागर से उस समय की धार्मिक परिस्थिति पर विशेष प्रकाश पड़ता है। उनके समय में नाथ-पंथी योगियों की प्रधानता रही होगी। भ्रमरगीत में इन गोपियों की कठिन साधना के सम्मुख भक्ति की सहज साधना की चेष्टा स्पष्ट दिखाई देती है। इन योगियों की साधना का उल्लेख भ्रमर-गीत में विशेषरूप में हुआ है। इनके साधन के अंग थे आसन, ध्यान

रचहि तरप निशि भोग चतुर सम बहु पृकादश पाये ॥

उर परसन सब अंग धिलोकत क्रीडत सुख सुख जीके ।

चाली चोर अलक भूपण फिरि साजत पिय भवनीके ॥

नख सिख साजि सिगार सकल त्रिय सुंदर बदन निहारत ।

विविधि विलास सकल कौतुक रस छ दस अंग भरि डारत ॥

यौवन मद जन मद मादक मद धन मद विध मद भारी ।

काम त्रिवश पर नारि भजत दुह पंच शरह फिरि मारी ॥

पौरि पगारि महल मंदिर रचि राजत रंग अठारी ।

भीतर भवन विचित्र विराजत पंच दुआदश द्वारी ॥

इसके आगे की पंक्तियाँ भी देखिये ।

और आराधना । ये मुद्रा, भस्म, विपाण, और मृग-चर्म धारण करते थे^१ । ये योगी गोरख का नाम लेकर अलख जगाया करते थे^२ । इनका कहना था कि सारे संसार को ब्रह्ममय देखो । ये अलख निरंजन के उपासक थे । इनका उपदेश इन प्रकार था । सब आसनों में पद्मासन सर्वोत्तम है । इस आसन पर बैठकर आँख मूंद कर ध्यान करो । उस समय तुम्हारे हृदय कमल में ज्योति का विकास होगा एवं तुम्हारा जीवात्मा इला, पिगला और सुपुष्पा नाड़ियों में होता हुआ ब्रह्मरंध्र तक पहुँच कर अच्युत, अविगत और अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा^३ ।

योग के अतिरिक्त उस समय निर्गुण उपासन का भी प्राधान्य था । निर्गुणोपासक ज्ञान को मुक्ति की प्राप्ति का सधन बताते थे । वेद-पुराणों की महत्ता अवश्य थी परन्तु उनके अध्ययन का लोप हो गया था । सर्व साधारण के लिए वे नाम मात्र थे । काशी सन्यासियों और तार्किक पंडितों का केंद्र था^४ ।

१ आसन ध्यान वाइ आराधन अलि मन चित तुम ताये ।

मुद्रा भस्म विसान त्वचा मृग ब्रज युवतिन मन भाये ॥

२. गोरख शब्द पुकारत आरत रस रसना अनुराग ।

३ ईश्वरिणी पिगला सुपमना नारी ।

सून्यो सहज में बसी मुरारी ॥

ब्रह्म भाव करि मैं सब देखो ।

अलख निरंजन ही को लेखो ॥

पद्मासन इक मन चित लाओ ।

नैन मूँदि अन्तर्गत ध्यावो ॥

हृदय कमल में ज्योति प्रकाशी ।

सो अच्युत अविगत अविनाशी ॥

४. ऊधो तुम हो निकट के वासी ।

यह निर्गुण लै ताहि सुनावहु

जे मुदिया बसै कासी ॥

सूर के चरित्र-चित्रण के संबंध में हम अन्यत्र लिख चुके हैं। परन्तु सूरदास जड़-चेतन, पशु-पक्षियों के स्वभाव के ३ स्वभाव-चित्रण भी पारखी हैं। उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण एवं रूपक आदि अलंकारों के रूप में इनके स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया। सूरसागर ऐसी सामग्री से भरा पड़ा है। अतः इस विषय पर विशेष विवेचना की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। एक स्थल से हम एक उदाहरण मात्र उठा लेते हैं—

जैसे मीन जाल में कूदत गनै न आपु लखाई हो ।

तैसे कंस काल ठूक्यो है ब्रज में यादवराई हो ॥

जैसे मिह आपु मुल निरखै परै कूप में दाकै हा ।

तैसेहि कंस परम अभिमानी भूल्यो राजसभा के हो ॥

सूरसागर में ब्रज का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। उसमें ब्रज के प्राकृतिक धन के चित्र तो हैं ही, वहाँ के गार्हस्थ्य ४ ब्रज के जीवन का भी विस्तारपूर्ण वर्णन मिलता है। आचार-विचार अनेक गार्हस्थ्य रीति-रिवाजों और आचार-विचारों का परिचय हमें इस ग्रंथ में मिलता है। यह लौकिक आचार अधिकतर कृष्ण की वाचस्पति-संघी पदों में मिलते हैं। भागवत में इस प्रकार के आचारों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा गया अतः सूरसागर का वह भाग उनकी मौलिक कृति है। उन्होंने अपने समय के आचार-विचारों से जैसा परिचय प्राप्त किया वैसा उन्हें उपस्थित किया। जन्मात्सव, लूठी, नामकर्म, बारही, अन्नप्राशन, वर्ष-गाँठ, कनछेदन, गोर्धन-दान आदि अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनमें सूरदास ने अपने समय के ब्रज के आचार-विचारों का चित्रण किया है। यह आचार-विचार पूर्णतः ग्राम्य है। सूरदास ने बड़ी स्वाभाविकता से इनका वर्णन किया है। ऐसे प्रसंगों में उन्होंने मनोविज्ञान की सामग्री उपस्थित की है।

१ जन्मोत्सव

ग्रह, लग्न और नक्षत्रों का शोध किया गया, परिडितों ने वेद-मंत्र का उच्चारण किया। ग्वालिनों ने गाय और बालक समेटे, गुंजा और धातुओं को घिस कर उनके ऊपर चित्र बनाये, अपने सिर दही और मक्खन के मटके रखे, हाथों में भाँफ़ और मृदंग लिये गाय तथा बालकों के पीछे बजाती हुई नद-घर की ओर चलीं। वे नाचती जाती थीं और पथ में दूध-दही छिड़कती जाती थीं।

नंद ने स्नान करके अपने हाथ में कुश लिया और खड़े होकर ब्राह्मणों के मस्तक पर चंदन किया। गुरुजनों (बड़े) और ब्राह्मण को वस्त्र पहनाकर उनके पैरों पड़े।^१

२ छुटी

मागध सूतों ने आकर बधाई दी और दान-याचना की। सखियों ने सोहलो गाया, बाजे बजने लगे। मालिन आंगन में तोरण व वदनवार बाँधने लगी। छोटी पालकी (डोलना) में बिठाकर बालक को आंगन में लाया गया। नाइन ने दधि-काँदो, सूत, नारंगी और महावर उपस्थित किये। सखियों ने बालक की आरती की। बालक को ढोलनी से उठाकर पालने में लिटा दिया गया। दाई के नेग मिला। अन्य भृत्यों को भाँति भाँति के कोरे कपड़े और पकवान बाँटे गये। सखियाँ पीले कपड़े पहन कर आईं। काजल रोरी लेकर छुटी का कर्म किया।^२

३ नामकरण

पुरोहित घर आये, उनका चरणोदक लेकर आसन दिया गया। विप्र, स्वजन, चारण और बंदी भी उपस्थित हुए। दूध को सिर में बाँधाया और नई हल्दी तथा दही से बालक का टीका किया गया।^३

१. सूरसागर स्क० १० पद १८ पृ० १२८

२. .. . ३५ पृ० १३२

३. ,, ,, ७६ पृ० १४०

४ अन्नप्राशन

लगभग छ महीना बीतने पर अन्नप्राशन संस्कार किया गया । पुरोहित को बुलाकर यशोदा शुभ राशि शोध कराई । शुभ दिन यशोदा ने सखियों को बुलाकर गीत गाया । यशोदा का नाम लेकर गालियाँ भी गाई गईं ।^१

यशोदा ने स्वजाति की स्त्रियों को निमंत्रण दिया । उनके आने पर एक बड़ी जेवनार हुई । यशोदा के कहने पर नंद ने स्वजाति व अन्य जातियों के लोगों को भीतर बुलाया । उन्हें आदर के साथ बिठाया गया । यशोदा ने कृष्ण को उपटन करके नये वस्त्राभूषणों को पहनाया । पुत्र को जुठारने की घड़ी आई समझ कर नंद उन्हें गोद में लेकर बैठे । पुरुषों की मंडली उनके साथ आनन्द-विनोद करने लगी । थाल में खीर भर कर सामने रखी गई । नंद ने जब खीर कृष्ण के मुख में लगाई तो सब स्त्रियाँ गाने लगीं ।^२

५ वर्ष-गाँठ

यशोदा ने कृष्ण को उबटन लगाया, उन्हें स्नान कराया, उन्हें वस्त्राभूषण पहनाया । माता ने पुत्र का मुख चुंबन करके वर्ष-गाँठ का डोरा खोला । सबके निमंत्रण दिया गया, आँगन लिपाया गया, चौक पुरा । विप्र बुलाये गये । अन्त दूध के साथ बधावा उपस्थित किया गया । पँचरग साड़ियाँ मँगाकर स्वजनों में बाँटी गईं । नाच हुआ । गीत गाये गये । सखियाँ थाल में दही रोचन और फूल सजाकर बालक को देखने आईं । वर्ष-गाँठ की डोर में गाँठ लगाई गई ।^३

६ कनछेदन

नाई आया । बालक के हाथ में सोहारी और भेली दी गई । सीक में

१. सूरसागर स्कं० १० पद ८० पृ० १४०

२. " " ८१

३. " " ८७, ८८ पृ० १४२

रोचन भर कर यशोदा ने कान पर चिन्ह किया। नाई ने उसी स्थान पर कान छेद दिया। उसी समय भीतर बैठी हुई स्त्रियाँ ढोलक पर ताल देकर गीत गाने लगीं। बालक पर न्योछावर किया गया। नंद ने ग्वाल वालों को वस्त्र पहनाया।^१

७ गोवर्धन पूजा

शकट सजा कर सब ग्वाल-बाल गोवर्धन की ओर चले। साथ में बाजे बजते जाते थे और गीत चलते थे। ग्वाल बाल और नंद अपने साथ जो पटरस भोजन लाये थे उनको लेकर उन्होंने गोवर्धन की पूजा की। मक्खन, दही, दूध एवं छाछ के मटके पाँति में रक्खे गये। विप्र को बुलाकर यज्ञारम्भ किया गया। अन्नकूट को इस प्रकार ढेर के रूप में रक्खा गया कि उससे गोवर्धन का आकार बन गया। ग्वाल पर्वत के शिखर पर चढ़ कर जहाँ तहाँ दूध डालने लगे और उस पर बस्त्राभूषण चढ़ाने लगे। लौट कर घर-घर मंगलाचार हुआ और दीपमालिका का उत्सव मनाया गया।^२

जिस प्रकार कृष्ण के अनेक रूपों में त्रिभगी रूप भक्तों के अधिक

प्रिय है उसी प्रकार अनेक लीला-प्रसंगों में वे प्रसंग

१ नाट्य

उन्हें अधिक प्रिय है जिनमें नाट्य को स्थान मिला।

लीला शब्द से स्वयं कौतुकमय कार्य-कलाप

की व्यंजना होती है। अतः लीला को ही मोक्ष मानने वाले वल्लभ सम्प्रदाय के काव्य में यदि नाट्य को विशेष स्थान मिला है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। कृष्ण नटनागर हैं, वे अनेक व्यक्तियों की प्रेमानुभूतियों को जगाकर लोप हो जाते हैं और उनकी लीलाएँ बाद के प्रसंग में सीधे चित्रित न होकर स्मरण के रूप में उपस्थित हुई हैं। इस प्रकार सारे सूरसागर में संयोग की लीलाएँ ही प्रधान हैं।

१. सूत्रसागर स्कं० १० पद १, २ पृ० १४२।

२. गोवर्धन लीला प्रसंग पृ० २६६।

वियोग के प्रसंग में भी अपरोक्ष रूप से सामने रहता है। इन लीलाओं में मुद्रा, भाव-भङ्गी और नाट्य को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। एक तो ये वस्तुयें रसोद्रेक के लिये आवश्यक हैं। दूसरे, भक्ति-पक्ष में इन्हीं लीलाओं एवं नाट्य मुद्राओं के द्वारा भगवान भक्त के लिये सहज सुलभ हो पाते हैं।

नाट्य दो प्रकार से प्रगट हुआ है। साधारण वर्णन द्वारा तथा उपालंभ और वार्तालाप के रूप में व्यञ्जना द्वारा।

१. भाजि गये मेरे भाजन फोरी।

लरिका सहस एक संग लीने नाचत फिरत माँकरी खोरी ॥
माखन खाइ जगाइ बालकन बन चरसहित बछुरुआ छोरी।
सकुच न करत फागु मी खेलत गारी देत हंसत मुख भोरी।

२. बाँधों आजु कौन तोहि छोरे।

बहुत लँगरई कीनी मोंगो भुजगहि रजु ऊखल सो जौरै।
जननि अतिरिस जानि बँधायो चितैबदन लोचन जल छोरै।
यह मुनि ब्रज युवती उटि धाई कहत कान्ह अब क्यों नहिँ चोरै।
ऊखल सो गहि बाँध यशोदा मारन को साँटी कर तोरै।
साँटी लखि ग्वालिन पछितानी विकल भईँ जहँ तहँ मुख मोरै।
मुनहु महरि ऐसी न बूभिये सुत बाँधत माखन दधि थोरै।
सूर श्याम को बहुत सतायो चूक परी हमते यह भोरै।

वल्लभ सम्प्रदाय में यद्यपि दार्शनिक दृष्टिकोण से पुष्टि (ईश्वरानुग्रह)

की व्यवस्था की गई थी परन्तु स्वयं भक्त की ओर

६ साम्प्रदायिक

से उपासना रूप में सहज साधना भी वाञ्छित थी।

आचार

यों तो अन्य सम्प्रदायों में भी थोड़ी बहुत उपासना

(आरती पूजा आदि) प्रतिष्ठित थी परन्तु वल्लभ

सम्प्रदाय में इमे महत्वपूर्ण विस्तार दे दिया गया। इस विस्तार का कारण यह था कि कृष्ण-लीला में आदि से अन्त तक कृष्ण की मानवीयता

को महत्व मिला था। इसी से श्रीनाथ जी की प्रतिमा की पूजा-विधि में सारी कृष्ण-लीला का आरोप हो जाता था। साधारणतः इस बल्लभ सम्प्रदाय की उपासना के आचार-संबंधी अंग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) नित्य आचार—इनमें श्रीकृष्ण का सारा दैनिक कार्यक्रम आ जाता था। प्रातःकाल सोकर उठने से रात्रि में शयन तक की दिनचर्या में श्रीनाथ जी के आठ दर्शन होते थे जो इस प्रकार हैं १ मंगलाचार, २ शृङ्गार, ३ ग्वाल, ४ राजभोग, ५ उत्थापन, ६ भोग, ७ सध्या-आरती, ८ शयन। इन नित्य आचारों में कृष्ण के नवनीत प्रिय और गोपाल कृष्ण रूप को ही स्थान मिला है। इसमें राधा और गोपियों तथा उनके साथ की हुई शृङ्गार-लीला का कोई स्थान नहीं। सम्प्रदाय की पूजा विधि में नित्य कर्मों की ही प्रधानता थी और प्रत्येक दिन प्रत्येक कर्म के साथ कुछ-गान-वादन कीर्तन का भी प्रबंध था। 'वार्ता' की कथा से मालूम होता है कि महाप्रभु ने कीर्तन का काम सूरदास को सौंपा था। सूरदास ने अनेक पद कीर्तन के समय ही गाये होंगे। सम्भव है उन्होंने बालकृष्ण, गोपाल कृष्ण और नवनीत प्रिय के संबंध में जितने पद कहे हैं उनके एक बड़ा भाग का निर्माण इसी प्रकार हुआ हो। अब ये सब पद बाल लीला के अंग हो गये हैं। उनमें से अधिक को अलग करके निकाल लेना कठिन है। सूरसागर में प्रत्येक पद के प्रारम्भ में यह लिख दिया गया है कि वह पद किस राग में गाया गया है। संगीत शास्त्र में प्रत्येक राग का समय नियत है। प्रत्येक नित्य आचार का एक निश्चित समय था। यदि सूर के पदों का रागों और उनके गाने के समय के अनुसार वर्गीकरण किया जाय तो सम्भव है कि इस विषय पर विशेष प्रकाश पड़े और हम उन पदों को अलग कर सकें जो नित्य कर्मों के लिये कीर्तन करते समय गाये गये थे।

नित्य आचारों ने सूर के काव्य को प्रभावित किया है यह दिखाना कठिन नहीं है। अनेक पद ऐसे भी मिलते हैं जिनमें व्यंजनों की नामा-

वली के अतिरिक्त और कुल भी नहीं मिलता । यह पद स्पष्टतया भोग-समर्पण के समय पर लिखे गये हैं ।

२ नैमित्तिक आचार—नित्य आचारों के अतिरिक्त पूजा-विधि में कुल नैमित्तिक आचारों की भी व्यवस्था थी । इन नैमित्तिक आचारों का संबंध लोक जीवन के उत्सवों तथा कृष्ण-लीला के उन प्रसंगों से था जो राधा और गोपियों से संबंधित थे । हिंडोला, चाचर, फाग, वसंत इस प्रकार के नैमित्तिक आचार थे । इनके प्रसंग में भी कीर्तन होता था । सूरसागर के संयोग शृङ्गार को परिपुष्ट करने में इन नैमित्तिक आचार संबंधी पदों ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया है । इन्हीं से कृष्ण के उस रूप का प्रदर्शन होना सम्भव हुआ है जो उन्हें केवल आनन्दमय है ।

सूर-साहित्य पर विहंगम दृष्टि

पिछले अध्यायों में हमने सूर-साहित्य का अध्ययन कर लिया। इस अध्याय में हम अपने अध्ययन की सामग्री पर एक बार मुड़कर दृष्टिपात करेंगे तथा यह देखेंगे कि सूर-साहित्य की सामान्य विशेषतायें क्या हैं और उसमें सूर कहाँ तक मौलिक हो सके हैं।

१. सूर-साहित्य का विषय गोपाल कृष्ण की गोकुल अथवा ब्रज-लीला है। यह ब्रज-लीला सूर-साहित्य का एक बड़ा भाग समाप्त कर देती है। इस लीला के अतिरिक्त कृष्ण-संबंधी अन्य प्रसंग भी हैं; अवतारों की कथायें भी हैं परन्तु उनमें न हमें भक्त सूरदास के दर्शन होते हैं न उनके कवि हृदय के। उनके केन्द्र में सूर नीरस उन्मन भाव से बैठे हुये हैं, वहाँ वे केवल कथा-गायक हैं।

२. इसके अतिरिक्त सूर साहित्य में कुछ विनय के पद हैं। उनमें सूरदास अत्यन्त दीन भाव से आत्मनिवेदन करते हुये दिखाई देते हैं। सूर-साहित्य का यह भाग तुलसीदास की विनयपत्रिका के समान है किन्तु उतना उत्कृष्ट नहीं। इस भाग में सूर भक्त हैं। उनकी कवित्व शक्ति के दर्शन यहाँ हमें नहीं होते।

३. सूरसागर इन्हीं तीनों भागों का संश्लेष मात्र है, सामान्य ढंग पर हम उसके तीन भाग कर सकते हैं—

(क) विनय के पद (पहले स्कंध का प्रधान भाग)

(ख) अवतारों की कथायें (दूसरे स्कंध से नवें तक) और गोकुल के बाहर की कृष्ण-लीला (दशम स्कंध उत्तरार्द्ध)

(ग) गोकुल की कृष्ण-लीला (दशम स्कंध पूर्वार्द्ध) । उसके अतिरिक्त सुरसागर का एक अंश सूरसारावली के नाम से प्रसिद्ध है यह मुख्य भाग (स्कंधों) की अनुक्रमणिका मात्र समझा जाता है ।

जैसा कि अन्यत्र सिद्ध किया गया है कि सूरसागर और भागवत में बहुत अधिक संबंध नहीं है । इसे भागवत का स्वतंत्र अनुवाद भी नहीं कह सकते । हाँ ! जिस रूप में हमें वह आज प्राप्त है, उसका ढाँचा अवश्य भागवत के आधार पर खड़ा किया गया है । परन्तु किसने यह किया - सूरदास ने अथवा सुरसागर के प्रथम संग्रहकर्त्ता ने—इस बात को हम बिलकुल नहीं जानते । यदि सूरदास ने इसका ढाँचा खड़ा किया तो कब ? ग्रंथ आरम्भ करने के पहिले यह ढाँचा उनके मन में था या अधिकांश पद समाप्त हो जाने पर उन्होंने स्वयं अथवा किसी अन्य की प्रेरणा से भागवत के ढाँचे पर क्रमवद्ध कर दिया और बीच की कड़ियों को स्वयं पूरा कर दिया ।

४. सूरसागर अपनी भाषा और छंद दोनों के प्रयोग में मौलिक है । यह बात नहीं कि सूरदास से पहिले पद लिखे ही नहीं जाते थे । उनसे पहले कबीर एवं नानक आदि संत कवि पद साहित्य का निर्माण कर चुके थे । उनमें भी पहले नाथ और सिद्ध-पन्थ के कवि-माधकों ने इसी प्रकार के पद लिखे थे यह आधुनिक खोजों से सिद्ध हो चुका है । संस्कृत साहित्य में जयदेव के गीत गोविंद के पद इस समय प्रसिद्ध थे । वे बारहवीं शताब्दी में ही लिखे जा चुके थे । चौदहवीं शताब्दी में विद्यापति और चंडीदास ने भी इस प्रकार के पदों का व्यवहार किया था किन्तु जहाँ तक पता चला है, उत्तर पश्चिम भारत में सगुणोपासना के लिए पदों का पहले पहल प्रयोग सूरदास ने ही किया । पश्चिम भारत में इससे पहले के जो पद मिलते हैं वे निर्गुण संतों के उपासना भाव को व्यक्त करते हैं । सम्भव है कि लोक-गीतों के रूप में इस तरह के गीत सगुणोपासना के लिये भी प्रचलित हों । ब्रज भूमि में श्रीकृष्ण के लीला के पदों का लोक गीतों के रूप में प्रचलित होना

असम्भव नहीं परन्तु साहित्य और रस में पूर्ण कृष्ण लीला के पद लिखने वालों में सूरदास का स्थान ही सर्व प्रथम है जो साहित्य और कला के आन्तरिक रस को पहचानते हैं वे जानते होंगे कि इतनी मौलिकता भी बहुत अधिक है। सूरदास ने अपने प्रान्त के प्रचलित पदों को ही अपना कर उन्हें साहित्य, काव्य, रस और कला में इतना परिपूर्ण कर दिया, यह कुछ कम प्रतिभा की बात नहीं। संत कवियों के पदों के सामने सूर के पदों को रखने में उनका साहित्य-रस भली भाँति प्रगट हो जायगा। इस साहित्य रस की सृष्टि सूरदास का ही काम था।

ब्रज भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से आठवीं नवीं शताब्दी के लगभग हुई होगी। उसी समय भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ था। यह सम्भव नहीं कि दो शताब्दियों तक ब्रज भाषा ने कुछ विकास न किया हो अथवा उसमें लोक-साहित्य की रचना न हुई हो। परन्तु विकास अधिक नहीं हुआ। यह बात 'वार्ता' की भाषा से स्पष्ट होती है। यदि हम 'चौरासी वार्ता' की भाषा को सूरदास के समय की भाषा का उदाहरण मान लें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि सूरदास की प्रतिभा ने उसको शब्द कोष, माधुर्य और ध्वनि से कितना पुष्ट किया है। " उन्होंने एक इतः पूर्व काव्य में अप्रयुक्त भाषा को इतना सुन्दर मधुर एवं आकर्षक बना दिया है कि लगभग चार सौ वर्षों तक उत्तर पश्चिम भारत की कविता का सारा राग-विराग, प्रेम प्रतीति, भजन-भाव इसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त हुआ" ।^१

५. सूर-साहित्य में हमें जीवन के एक ऐसे अंग का परिचय मिलता है जिसका सूरदास से पहले के भारतीय-साहित्य में कोई भी चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ता। यह है बाल लीला। वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की भक्ति और पूजा की प्रतिष्ठा करके धार्मिक साहित्य के लिये एक नये प्रसंग की सृष्टि करदी थी लेकिन कौन जानता है कि यदि सूरदास न होते तो

नवनीत प्रिय की लीला का परिचय संसार को इस रूप में मिलता या नहीं ? यह आवश्यक है कि अष्टलाप के कुछ अन्य कवियों ने भी बाल लीला के कुछ पद बनाये हैं। वे इतने उत्कृष्ट नहीं जितना कि सूरदास के पद हैं और न उनमें बाल-जीवन के सब अंगों का इतना स्पर्श किया गया है। बहुत सम्भव है कि बाल लीला के संबंध में पहला पद सूरदास ने ही बनाया हो।

सूरदास के बाद भी किसी हिन्दी कवि ने बाल-जीवन को इतने निकट से नहीं देखा। अन्य किसी वैष्णव कवि ने भी बाल-लीला का चित्रण इतनी सफलता से नहीं किया है।

६. सूर-साहित्य काव्य-शास्त्र के नव रस से भली भाँति पुष्ट है। इस क्षेत्र में सूरदास की मौलिकता यह है कि उन्होंने तीन ऐसे रसों की सृष्टि की है जिनका प्रयोग साहित्य में पहले नहीं हुआ था अथवा जिनका कोई रूप उस समय तक स्थिर न हो सका था। ये तीनों रस हैं—वात्सल्य, मधुर और भक्ति। वात्सल्य रस की सृष्टि सूरदास ने ही सबसे पहले की। उनसे पहले यह प्रसंग ही काव्य का विषय नहीं बनाया गया था। मधुर रस से हमारा तात्पर्य शृङ्गार के उस रूप में है जो राधा-कृष्ण के प्रेम में प्रस्फुटित होता है। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से इसे शृङ्गार रस ही माना गया है परन्तु भक्त के लिये भगवान की शृङ्गार-लीला वास्तव में शृङ्गार नहीं, वह भक्त के लिए सहज और मधुर साधना है। भक्त भगवान के साथ सख्य भाव से रहता है और भगवान की यह लीला उस रस की सृष्टि करती है जिसका कोई नाम न होने के कारण हम उसे मधुर रस कहते हैं। राधा-कृष्ण के भक्तों के लिए उनकी विलास-लीला का स्मरण और गायन, हरि भजन तथा साधना से कम नहीं। मधुर रस की सृष्टि का श्रेय वास्तव में जयदेव को मिलना चाहिये। उन्होंने अपने 'गीत गोविंद' के संबंध में लिखा है—

“ यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
 यदि विलास कला सु कुतूहलम् ।
 मधुर कोमल कान्त पदावलिम्
 शृणु तदा जयदेव सरस्वतीन् ।”

और उनके बाद विद्यापति और चण्डीदास ने भी इस रस को साहित्य में उपस्थित किया था। परन्तु उनकी भाषा हिन्दी नहीं थी। हिन्दी साहित्य में इस रस की सृष्टि सूरदास ने ही की। विनय के पदों में भक्ति रस का स्रजन हुआ है। सूरदास से पहले के सगुण भक्तों में भी भक्ति रस के दर्शन होते हैं। परन्तु सूरदास की भक्ति-भावना अत्यन्त सत्रीय है और उनका आत्मनिवेदन अत्यन्त तीव्र होगया है। इसलिये उनका भक्ति रस भी अत्यन्त परिपक्व रूप में हमारे सामने आता है। यहाँ हमें यह कह देना है कि यह भक्ति रस संतों की कविता के उज्ज्वल रस से भिन्न है।

७. सूरदास ने हमारे सामने कुछ सफल चरित्र उपस्थित किये हैं। नद, यशोदा, कृष्ण, राधा, उद्धव और गोपियाँ इन सबकी कल्पना में सूरदास की प्रतिभा ने अनेक स्थान पर मौलिकता दिखाई है। भागवत के चरित्रों से उनके चरित्र भिन्न हैं। उनका प्रभाव प्रत्येक पाठक पर पड़ता है। सूरदास ने अपने चरित्रों के जीवन के अनेक अंगों को नहीं छुआ है किन्तु जिन अंगों को छुआ है उसमें वे बहुत गहराई तक प्रवेश कर सके हैं। सूरदास ने अपने पात्रों की जीवन के किसी विशेष अंग को चित्रित करते हुए तत्संबंधी अनेकों पद कहे हैं। उनके पात्रों के जीवन में वही अंग विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस प्रकार पात्र के चरित्र की अनेक बार पुनरावृत्ति होने के कारण वह पाठक के अधिक निकट आ जाता है तथा उसका चित्र उसके मानस-पट पर इस दृढ़ता से अंकित हो जाता है कि वह उसे कभी भी नहीं भूल सकता। सूर की इतनी अधिक सहृदयता ने ही उनके चरित्रों को इतना प्रभावशाली बना दिया है कि उनमें से दो चरित्र (राधा-कृष्ण)

लगभग चार शताब्दियों तक साहित्य और कला पर अपना अधिकार जमाये रहे ।

८. सूर-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका विषय अलौकिक होते हुए भी वह इतना सामान्य है कि बुद्धि और हृदय की साधारण से साधारण साधना वाला व्यक्ति भी उसमें आनन्द उठा सकता है । उसके स्स्कार उसके द्वारा परिष्कृत होकर ऊँचे तल पर उठ जाते हैं । स्वयं उसे सूर के काव्य की भाषा एवं विषय तक पहुँचने के लिये अधिक साधना नहीं करनी पड़ती । सूर के ममस्त चित्र मानवी और सामान्य हैं । यशोदा माँ है, नन्द पिता हैं । कृष्ण पुत्र, सखा और विलास-पट्टु प्रेमी हैं । गोपियाँ अनन्य प्रेम की अधिकारी प्रेमिकार्ये हैं । राधा चंचल लड़की है, अल्हड़ किशोरी है, विलास-चतुर्ग नायिका है, प्रोषितपतिका है और अंत में सामान्य भार्या है जो अपने पति के दोषों को भुला देती है और अपनी सौत को भी स्वीकार कर लेती है । चरित्रों की इसी सामान्यता के कारण सूर साहित्य प्रत्येक पाठक के निकट पहुँच जाता है ।

९. सूरदास की कविता की सर्वप्रथम आलोचना कदाचित् महाप्रभु वल्लभाचार्य के मुख से हुई और वास्तव में यह सूर-साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण और सबसे अधिक सत्य आलोचना है । जब सूरदास जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभु के आगे यह पद गाया.....'ब्रज भयो महर के पूत, जब यह बात सुनी' तो वार्ताकार के शब्दों में "श्री आचार्य जी महाप्रभू बहुत प्रसन्न भये और अपने श्री मुख ते कहे जो सूरदास जी मानों निकट ही हुते ।" वस्तुतः किसी भी कवि की इससे अधिक प्रशंसा नहीं हो सकती कि उसने काव्य-विषय से पूर्णतः तादात्म्य स्थापित कर लिया है । यही कारण है कि सूर का काव्य हमें इतना प्रभावित करता है । वह उतना ही सजीव है जितना कि उसके नायक कृष्ण ।

१०. सूर-साहित्य की दूसरी समालोचना कदाचित् नाभादास ने की है—

उक्ति चोज़ अनुप्रास वरन अस्थिति उच्चारी ।
 वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी ।
 प्रतिविम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी ।
 जनम करम गुन रूप सवै रसना परकासी ।

इस आलोचना में सूरदास की कविता के लगभग सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया है। उसकी उत्कृष्टता का कारण भी बता दिया गया है। नाभादास के अनुसार ये गुण हैं—

(१) उक्ति (२) चोज़ (३) अनुप्रास (४) वरन-स्थिति (५) वचन निर्वाह (६) प्रीति-निर्वाह (७) अर्थ-निर्वाह (८) तुक (पदों के विषयों की अनेक प्रकार से पुनरुक्ति) ! इस गणना में काव्य के सभी अंग आ गये हैं। सूर-साहित्य में इन सभी अंगों की पुष्टि बड़ी उत्तमता से हुई है। काव्य के अंतरंग के विषय में नाभादास मौन हैं। इसका कारण है कि वे भक्त हैं। उनके दृष्टिकोण से सूर-साहित्य के अन्तरंग की इससे अच्छी समालोचना नहीं हो सकती कि भगवान की कृपा से कवि को दिव्य-दृष्टि मिल गई है।

११. संक्षेप में, सूरसागर का विषय प्रेम की महान साधना है। यहाँ प्रेम शब्द का व्यापक अर्थ अभीष्ट है। उसमें स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंध के अतिरिक्त मनुष्य-जीवन के अन्य प्रेमपूर्ण संबंधों का समावेश हो जाता है। वात्सल्य और सख्य प्रेम के ही रूप हैं। स्वयं भगवद्-भक्ति भी एक प्रकार से भगवान और भक्त का प्रेम संबंध है। इन प्रेम-संबंधों को कृष्ण-लीला में आरोप करके सूरदास ने वस्तुतः अपने भावों को ही पूर्ण आधार दे दिया है। कृष्ण-लीला के सभी प्रसंगों में अपरोक्ष रूप से एक पक्ष उनका है। इस प्रकार कृष्ण-लीला-गान के साथ-साथ उन्होंने अपने ही प्रेम को अधिक दृढ़ किया है। उनकी साधना, कृष्ण-लीला और गान एक रूप होकर हमारे सामने आते हैं। इसी साधना-भाव के कारण ये गोपियों के विरह-कथा को इतने विस्तार से कह सके हैं। "सूर के कृष्ण जब आँखों की ओट हुये तब से

सू० सा० भू०—१६

अंत तक उन्होंने उन्हें हृदय से जाने नहीं दिया। संयोग में कृष्ण की मूर्ति आँखों में थी, वियोग में अंतस्थल में। सूर साहित्य में अंत तक वियोग की क्लेश कथा है जिसको सूर जैसे भावना भाव भक्त ही सह सकते थे, शृङ्गारी कवियों के लिये यह असाध्य साधन था।”^१

१२. सूर का पाठक यह भूल जाता है कि सूर कवि भी हैं वे केवल भक्त ही नहीं हैं। इसीलिये सूरसागर में रसिकता को स्थान पाता देखकर उसको आघात पहुँचता है। परन्तु 'भक्त संज्ञा देकर सूर को अन्य कवियों की कोटि से अलग नहीं किया जा सकता। भक्ति तो व्यक्ति की एक विशेष धारणा या मनोवृत्ति^२' है। यही कारण है कि सूर के साहित्य पर उस समय की काव्य-धाराओं का प्रभाव भी लक्षित है। उसमें नायिका भेद अलंकार प्रभृति काव्यांगों को भी स्थान मिला है।

१३. कृष्ण-काव्य के तीन प्रधान गायक चण्डीदास, विद्यापति और सूरदास की तुलना करना महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

चण्डीदास ने सुख के बीच में दुख को देखा है तथा दुख के बीच में सुख को। वह मिलन-सुख में वियोग से आशंकित रहता है और विरह दुख में मूर्त्तिमान अनुराग बन जाता है^३। उसकी राधा का प्रेम लोकोत्तर एः स्वर्गीय है। उसमें हृदय-माधुर्य के सिवाय और कुछ भी नहीं है^४। विद्यापति की कविता में रचना-कौशल, पद-लालित्य, वर्णना-माधुर्य और शब्द-विन्यास अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में मिलता है। नारी-जीवन की कुतूहल स्थली वयःसन्धि और नवोढ़ा नायिका के विलास-विभ्रम का जितना

१. नंददुबारे वाजपेयी - सूरदास के विरहकाव्य की सुषमा।
२. वही।
३. सुखेर लागिआ ये करे पीरिति।
दुख पाव तार चाँहे।
४. निकषित हेम काम गम्भ बाहिं ताये।

सुन्दर चित्रण विद्यापति ने किया उतना किसी भी कवि ने नहीं किया परन्तु वे इसमें ऊपर नहीं उठ सके। उन्होंने मिलन-सुख और विरह-दुख को अवश्य जाना है परन्तु हृदय के और भी गम्भीर स्थल उनकी पहुँच से बाहर रहे। उनकी कविता में प्रेमी की कठोर साधना, दुख की कठोर तपस्या और प्रेम का स्वर्गीय भाव उस प्रकार उज्ज्वल नहीं हो उठे जिस प्रकार चण्डीदास के काव्य में जिसमें आत्मा की आभा में शरीर-तत्त्व अदृश्य हो गया है^१। जहाँ चण्डीदास सदैव ही अनुभव करते हैं—

नितु है नूतन पीरिति दुजन
तिल तिल बाड़ियाय

वहाँ विद्यापति केवल एक बार इस ऊँचे भावस्थल को स्पर्श कर सके हैं—

सखी रे कि पूछसि अनुभव मोय ।
सहे पिरित अनुराग बखानित
तिल तिल नूतन होय ॥

चण्डीदास की कविता में यही 'नित नूतनता' है। उसमें भाव का महत्व और आवेग की गम्भीरता है। विद्यापति भोग के कवि है; चण्डीदास विशुद्ध प्रेम के। विद्यापति विरह-कातर रहते हैं; चण्डीदास को

१. मिलन के समय चण्डीदास की राधा की उक्ति—

दाहन ऋतुपति एति दुख देख ।
हरिसुख हेरइते सब दुख गेख ॥
यतहुँ आङ्गिल मधु हृदयक साध ।
सो तव पूरख पिया परसाद ॥
रभस आङ्गिन पुखकित भेख ।
अधरहि पान विरह दुख गेख ॥

चण्डीदास की राधा ऐसे अवसर पर भी अतृप्त रहती है—

दुहँ दुहँ कादे विच्छेद भारिया

संयोग में भी सुख नहीं^१। चण्डीदास ने मनुष्य की आत्मा में प्रवेश किया है। विद्यापति ने केवल वहिर्जगत के चित्र उपस्थित किये हैं^२। विद्यापति की भाषा में जहाँ रचना-चातुर्य, प्राकृतिक चित्रांकन, शब्द विन्यास एवं पाण्डित्य है वहाँ चण्डीदास सहज भाव और सहज भाषा का कवि^३ है। उनकी कविता में मानुषी प्रेम क्षण-क्षण ऊपर उठता है और उन्नत होकर अमानुषिक प्रेम-राज्य की सामग्री बन जाता है^४।

सूरदास लीला के कवि हैं। उन्होंने कृष्ण चरित्र के उन स्थलों को लुभ्रा है जिनपर चण्डीदास और विद्यापति ने ध्यान ही नहीं दिया। वात्सल्य, संयोग-वियोग एवं भक्ति उनके विषय हैं। इस प्रकार जहाँ वे विद्यापति और चण्डीदास की भूमि में उतरते हैं वहाँ उन्होंने अपने लिये मौलिक भूमि भी निर्माण की है। यह भूमि वात्सल्य की है। इन सभी भूमियों पर वे समान रूप से कुशल दीख पड़ते हैं। उनका भाव पद्म उतना ही पुष्ट है जितना उनका काव्य पद्म। उन्होंने प्रेम की व्यापकता का अनुभव किया है और उसे जीवन के अनेक संबंधों में अलग करके केवल एक पुरुष और एक स्त्री में केन्द्रित करके नहीं देखा। माता-पिता का प्रेम, सखा का प्रेम, सखियों का प्रेम, प्रेमी-प्रेमियों का प्रेम और दाम्पत्य प्रेम इतना व्यापक क्षेत्र उपस्थित करते हैं कि हमें आश्चर्य होता है कि चण्डीदास अथवा विद्यापति इतने भिन्न क्षेत्रों में काम करके सफल भी हो सकते थे या नहीं। चण्डीदास के प्रेम की तरह उनके प्रेम में परकीया भावना नहीं। अपनी राधा की तरह उनका व्यक्तित्व भी विश्वासपूर्वक कृष्ण के व्यक्तित्व में मिल गया है। संयोग में पूर्णतः संयोग और वियोग में पूर्णतः वियोग। उनके प्रेम में आशंका का स्थान ही

-
१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर
 २. नगेन्द्रनाथ वसु
 ३. दिनेश चंद्र सेन
 ४. रवीन्द्र नाथ ठाकुर

नहीं। उनके भ्रमर गीत में जिस विरह का चित्रण हुआ है वह विशदता, गाम्भीर्य और तन्मयता की दृष्टि से अद्वितीय है। अपनी राधा के सहारे चण्डीदास विरह की तन्मयता का अद्भुत चित्र उपस्थित अवश्य कर सके हैं परन्तु उनके काव्य में गोपियाँ कहाँ, ग्वाल-बाल कहाँ और ब्रज की व्याकुल प्रकृति कहाँ जिसकी विशाल रंगस्थली में राधा-कृष्ण का अलौकिक संयोग-प्रसंग चित्रित हुआ था। इनके अभाव में चण्डीदास के काव्य में भावुकता का समावेश हो गया है।

सूरदास ने अपने इष्टदेव में भक्ति का संबंध किया है मोह का नहीं। उनकी सख्य-भक्ति ने शृङ्गार के क्षेत्र में उन्हें वह बल दिया है जो न चण्डीदास को मिला, न विद्यापति को। उनके शृङ्गार-चित्रण में केवल अपने सखा की प्रेम-लीलाओं के चित्र उपस्थित करने का भाव है। स्वयं उनकी चित्त-वृत्ति इन लीलाओं की ओट में अपनी वासना का उद्घाटन नहीं करती। उन्होंने वासनाजन्य शृङ्गार को भस्मसात् करके लेखनी उठाई है और उनके काव्य का एक मात्र आश्रय अनन्य भाव से भगवान की अलौकिक लीलाओं का रूप-चित्रण है^१।

चण्डीदास में भाव की गम्भीरता है, विद्यापति में काव्य-कौशल है। सूरदास में दोनों हैं^२। वे सहजभाव से चण्डीदास और विद्यापति की काव्य-भूमि पर बढ़ते चले जाते हैं। उन्हें शृङ्गार की कालिमा लग जाने की तनिक भी चिन्ता नहीं। परन्तु वे पिछले दोनों कवियों की एकाङ्गी भूमि पर ठहर नहीं जाते। वे अपनी मौलिक काव्य-भूमि पर लौट आते हैं। इस काव्य-भूमि का आधार उनकी भक्ति है जो अपनी व्यापकता में वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति का अतिक्रमण करके अन्य सम्प्रदायों की भक्ति भावना के क्षेत्रों में भी पहुँचती है।

१. पं० नंद दुबारे वाजपेयी

२. सूर के काव्य कौशल के लिए इस पुस्तक का आठवाँ अध्याय देखिये।

सूर के दृष्ट कूट पद

ज्ञान और साधना इतने सरल साधारण न हो जायँ कि उनमें विकार आ जाये इस प्रकार की भावना हमारे देश में प्राचीन काल से चली आती है। ऋषियों ने इसे वाञ्छनीय समझा कि जिस ज्ञान को उन्होंने अत्यंत कष्ट से प्राप्त किया था वह उपयुक्त पात्र को ही मिले। ऋग्वेद में बहुत कुछ प्रतीक रूप में कहा गया है। नरमेध और अश्वमेध को मानसिक बलि का प्रतीक बनाया गया। उपनिषद में प्रेय को प्राप्त करने के लिये इन्द्र को सहस्रों वर्ष तप करना पड़ा।

हिन्दी में इस प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय हमें सिद्धों की कविताओं में ही मिल जाता है। नाथ-पंथी हठयोगियों और कबीर-पंथियों ने भी साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान को छिपाने के लिये कूट पद कहे। कबीर की उलटवासियाँ प्रसिद्ध हैं। लोक-साहित्य में पहेलियाँ-मुकरियाँ आदि चलती थीं। उनमें कौतुक के लिये कूट उपस्थित किया जाता था। इन्हीं दोनों उद्गमों से प्रभावित होकर साहित्य में भी यह प्रवृत्ति आई। कुछ ऐसा कहा जाय जिसमें चमत्कार हो, अर्थ को छिपाने की चेष्टा हो, पाण्डित्य का प्रदर्शन हो सके। यमकालंकार ने इस कार्य में विशेष सहायता की।

भक्ति-साहित्य में हमें कूटों का पहला प्रयोग विद्यापति में मिलता है। अलंकार द्वारा उसकी सृष्टि की जाती है—

हरि सम आनन हरि सम लोचन हरितह हरिवर आगी ।
हरिहि चाहि हरि-हरि न सोहावण हरि-हरि कए उठि जागी ।

माधव हरि रहु जलधर छाई ।

हरि नयनी जनि हरि घरनी जनि हरि हेरहत दिन जाई ॥

(यमक)

इस पद में हरि शब्द तेईस वार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।

विद्यापति के बाद सूर का साहित्य आता है । उनके दृष्टकूटों का अध्ययन करने में यह पता चलता है कि कदाचित् वे विद्यापति से प्रभावित हुये थे । उन्होंने कूट पदों को केवल यमक तक ही सीमित नहीं किया । उन्होंने अनेक प्रकार से उनका निर्माण किया और उनसे चमत्कार उत्पन्न करने के साथ-साथ काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि में भी सहायता ली—

(१) अर्थ को स्पष्ट करने के लिये; परन्तु साथ ही साथ चमत्कार सृष्टि की भावना लिये हुये । इस प्रकार के कूट पदों में यमक का प्रयोग हुआ है । λ^२

सारंग^१ सम कर नीक-नीक सम सारंग^१ सरस बखाने ।

सारंग^२ बस भय. भय बस सारंग^२ सारंग विसमै माने ॥

सारंग^३ हेरत उर सारंग^४ ते सारंग^४ सुत दिग आवै ।

कुंती सुत^६ सुभाव चित समुभ्त सारंग^५ जाइ मिलावै ॥

यह अद्भुत कहिवे न जोग जुग देखत ही बनि आवै ।

सूरदास विच समें समुभ् करि विषई विपै मिलावै ॥^१

(२) रहस्यात्मक सौन्दर्य की सृष्टि करने के लिये । इस प्रकार के कूट पदों में यमक का प्रयोग नहीं है । इनमें उपमेय को छिपा कर केवल उपमान उपस्थित किये गये हैं और शरीर के अवयवों का क्रम लेकर उन्हें एक दूसरे के ऊपर अवस्थित कहा गया है ।

गृह ते चली गोप कुमारि ।

परक ठाढ़ो देख अद्भुत एक अनुपम मार ॥

१. हरिन, २ राग सारंग, ३ कृष्ण, ४ कमल, ५ हृदय, ६ कुंती-सुत = कर्ण (महाभारत का बीर योद्धा) = श्रवणेंद्रिय ।

कमल ऊपर सरल कदली कदलि पर मृगराज ।
 सिंघ ऊपर सप दोई सर्प पर ससि साज ॥
 मद्र समि के मीन खेलत रूप कांत सुजुक्त ।
 सूर लखि भई मुदित सुन्दर करत आछी उक्ति ॥

यह कृष्ण का सौन्दर्य चित्रण हुआ । कमल = चरण; कदलि = जंघ; मृगराज (सिंह) = कटि; सर्प = भुजा; ससि = मुख; मीन = आँखें ।

अद्भुत एक अनूपम बाग ।

जुगल कमल पर गज क्रीडत है ता पर सिंह करत अनुराग ॥
 हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर भूले कंज पराग ।
 रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ॥
 फल पर पुहुप-पुहुप पर पल्लव, ता पर सुकपिक मृग मदकाग ।
 खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥

यह राधा का चित्र है । कुल्ल प्रतीक ऊपर के पद में स्पष्ट कर दिये गये हैं । गजक्रीड़ा = चाल (नितंब भार भी निर्दिष्ट है) ; सरवर = नाभि; गिरिवर = कुच; कंज = कुचाग्र (पराग से लालिमा अर्थात् हेम वर्ण इंगित है) ; कपोत = कंठ; अमृत फल = मुख; पुहुप = चिबुक; पल्लव ओष्ठ; शुक = नासिका; पिक = स्वर; खंजन = नेत्र; धनुष = भौंह; चन्द्रमा = मस्तक; मणि धर नाग = सिंदुर-विंदु के ऊपर की लट ।

(३) विरह की कठिनता को स्पष्ट करने के लिये । विद्यापति ने दृष्ट कूट को राधा और कृष्ण के सौन्दर्यांकन तक ही सीमित नहीं किया है । सूरदास ने इसका प्रयोग अन्य प्रसंगों के लिए भी किया है । वास्तव में दृष्टकूट उनके लिए एक काव्य-शैली हो गया है । इसमें वाक्यांश का वाच्यार्थ कुल्ल और है परन्तु उसमें ठीक-ठीक भावार्थ निकालना पड़ता है, तब अर्थ निकलते हैं ।

सखी री सुन परदेसी की बात ।

अरध बीच दै गये धाम को हरि अहार चलि जात ॥

ग्रह नक्षत्र अरु वेद अरध कर को बरजै मुहि पात ।

रवि पंचम सग गये स्याम घन ताते मन अकुलात ॥

इस पद में वाक्यांश का जो अर्थ निकलता है उस अर्थ के द्योतक शब्द के ध्वनि-साम्य वाले अन्य शब्द को लेकर उसका अर्थ लगाया जाता है ।

धाम को अरध = पक्ष = पख (पखवाड़ा); हरि अहार = मांस = मास (महीना); ग्रह नक्षत्र अरु वेद अरध करि को बरजै मुहि पात = (ग्रह ६; नक्षत्र २७, वेद ४ = ४० : अर्द्ध = २० = वीस) विष; रवि पंचम = बृहस्पति (बार) = जीव (जीवन)

कहीं-कहीं दृष्टकृत वाक्यांशों की माला चलती है । यह माला एक पंक्ति पर समाप्त हो सकती है अथवा पूरे पद पर । एक भी कड़ी का अर्थ स्पष्ट न होने से सारा पद अस्पष्ट हो जाता है । यह कृतपदों का सबसे कठिन भेद है ।

निस दिन पंथ जोहत जाइ ।

दधि को सुत सुत तासु आसन विकल हो अकुलाइ ॥

गंधवाहन पूत बाँधव तासु पतनी भाइ ।

कत्रै दग भर देखवो जू सबो दुख विसराइ ॥

अजा भख की हानि हमको अधिक ससि मुष चाइ ।

दधि को सुत = उदधि में उत्पन्न होने वाला कमल; सुत तासु = ब्रह्मा (पुराणों में ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से मानी गई है); तासु आसन = हंस = जीव । (संत साहित्य में हंस जीवात्मा का प्रतीक है); गंधवाहन = पवन; पूत = पवन पुत्र भीम; गंधवाहन-पूत बाँधव = भीम के सहोदर अर्जुन; तासु पतनी भाइ = सुभद्रा के भाई कृष्ण; अजा भष = पत्ते = पत्र ।

जहाँ कृत अधिक क्लिष्ट नहीं है अथवा उसका थोड़ा पुट है वहाँ वह रस के उद्रेक में सहायता करता है । ऐसे अवसर पर अर्थ-वैचित्र्य अनुचित

नहीं है, वह काव्य का गुण हो जाता है। उदाहरण के लिए एक हम पद उपस्थित करते हैं—

तैं जु नील पट और दियो री ।

सुनि राधिका स्याम सुन्दर सौं बिनहि काज अति रोस कियो री ॥

जलसुत बिब मनहु जल राजत मनहु सरद ससि राहु लियो री ।

भूमिधिसनि किधौं कनक पंभ चढि मिलि रस ही रस अमृत पियो री ॥

तुम अति चतुर सुजान राधिका कत राष्यो भरि मान हियो री ।

सूरदास प्रभु अंग-अंग नागरि मनो काम कियो रूप बियो री ॥

(जलसुत = कमल ; भूमिधिसन = सर्प अथवा यमुना)

यहाँ यह प्रश्न होता है कि दृष्ट कृतों के लिखने में सूर का क्या तात्पर्य है ? सूर की सहज काव्य-प्रकृति इस ओर क्यों झुकी ? क्या इसमें कुछ रहस्य है ? इस अध्याय को आरम्भ करते हुए हमने कहा है कि साधना को छिपाने की एक प्रवृत्ति हमारे यहाँ चली आती है परन्तु हमें स्पष्ट करना होगा कि सूर की साधना किस प्रकार की थी और उन्होंने उसे क्यों गोपनीय समझा !

सूरदास की साधना का केन्द्र राधा कृष्ण का रूप था। अनेक भंगिमाओं, लीलाओं और मुद्राओं में इस रूप को रख कर उस पर ध्यान जमाना भक्त का ध्येय था। सूरदास ने एक स्थान पर इसे सहज समाधि कहा है। कूट-पदों में कृष्ण के ऐसे चित्र सुरक्षित हैं जिनमें इसी प्रकार के रूप हैं जो भक्त की ध्यान, धारण और समाधि के लिए आवश्यक हैं। हाँ, इन चित्रों में कुछ साधारण समाज को कलुषित लग सकते थे। भक्त को इनमें किञ्चित भी दूषण दिखलाई नहीं देता। परन्तु उनका विकृत होकर निरादर पाना संभव था। इसीलिए उन्हें गोप्य रखा गया। वास्तव में शुद्धता-अशुद्धता मन और हृदय की वस्तु है। पाप पुण्य और नैतिकता-अनैतिकता की भावनाएं बदलती रही हैं। इसीलिए हम इस युग में भक्त साधकों की हँसी उड़ाते हैं और उन्हें विकृतमनः समझते हैं। कुछ उदाहरण देकर हम अपने मंतव्य को स्पष्ट करेंगे—

(१) देखत आजु नाहीं दोइ ।

नंद नंदन ओ छवीली राधिका रुचि भोइ ।
मघ बादर बीच मनि में स्याम सूरत देष ।
पुंडरीक विचार लागी लेन गंध विशेष ।
इन्द्र सुत-सुत बीच उन लष लगे चूमन चाहि ।
हँसत दोऊ दुहुन को लस सूर बलि बलि जाहि ।

(बादर = पयोधर ; इन्द्र सुत-सुत = बाली का पुत्र अंगद = बाजूबंद)

(२) देखि सखी पांच कमल द्रौ संभु ।

एक कमल बृज ऊपर राजत निरपत नैन अचंभु ॥
एक कमल प्यारी कर लीन्हें कमल सकोमल अंग ।
जुगल कमल सुत कमल विचारत प्रीत न कबहूँ भंग ॥
पटजु कमल मुख सनमुख चितवत बहुविधि रंग तरंग ।
तिन में तीन सोम बसीवट तीन तीन सुक सीपज अंग ॥
जेई कमल सनकादिक दुर्लभ जिनते निकसी गग ।
तेई कमल सूर नित चितवत नीट निरन्तर संग ॥

भांकी इस प्रकार है । राधा ऊँचे पर खड़ी हैं । कृष्ण का मुख उनके हृदय पर है । उनके मुकुट में राधा की भाई पड़ रही हैं ।

(पांच कमल = १ कृष्ण का मुख (१) । २ उनके दोनों नेत्र (२) , ३ उनके हाथ (२) जो राधा के पयोधर पर हैं । दो संभु = राधा के दो पयोधर : एक कमल ब्रज ऊपर राजत = राधा का मुख अथवा चंद्रमा ; एक कमल प्यारी कर लीन्हीं = एक हाथ कृष्ण का राधा अपने हाथ में पकड़े हैं : जुगल कमल = राधा-कृष्ण ; सुत कमल = ब्रह्मा ; पटजु कमल = राधा की भाई कृष्ण के मुकुट में व कृष्ण का मुख (१ मुख + दो नेत्र) । इस प्रकार एक अपूर्व भांकी उपस्थित की गई है ।)

(३) देखे चारि कमल एक साथ ;

कमलहि कमल गहे लावति है कमलहि मध्य समात ॥

सारंग पर सारंग खेलत हैं सारंग ही सो हँसि-हँसि जात ।

सारंग श्याम और हू सारंग सारंग सो करै बात ॥

(इस पद में मधुर भावना की वह मूर्ति है जिसे आज की साहित्यिक नैतिक भावना कल्पित कहेगी ।)

(४) राधे आज मदन-मदमाती ।

सोहत सुन्दर श्याम संग के खरचत कोट काम कल थाती ॥

अंतरिच्छ श्री बंधु लेत हरि त्योहीं आप आपनी घाती ।

ग्रीषम पवन लेत हरि हरि करि ग्रीषम पवन लेत निज छाती ॥

यह कौतुक विलोकि सुनु सजनो माला दीपक की चित थाती ।

सूरदास बल जात दुहुन की लिपि-लिपि हृदय कथा चित पाती ॥

(अंतरिच्छ = अधर; श्री बंधु = सुधा; ग्रीषम पवन = लपट; दीपक माला = अलंकार । इस पद में सूरदास जयदेव से हौड़ करने चले हैं ।)

अलंकार स्पष्ट करने और नायिका भेद का निरूपण करने के लिये भी कूट का प्रयोग किया गया है । यह सूर की मौलिकता है ।

ठाढ़ी जलज-सुता कर लीन्हें ।

दधि सुत बाहन हित सजनी भष विचारवित दीने ॥

को जानै केहि कारन प्यारी सो लप तुरते उठाने ।

चपला औ बराह रस आखर आग देख भपटाने ॥

तद्गुन देख सवै मिल सजनी मन ही मन मुसुकानी ।

सूरश्याम को लगी बोलावन आपु मयानप मानो ॥

(दधिसुत-बाहन = हंस ; जलजासुत = मोती ; चपला औ बराह रस आखर = च [पला] + को [ल] + र [स] = चकोर । अंगारा समझ कर हंस चला गया, चकोर भपटा । अज्ञात यौवना में यौवन का प्रादुर्भाव हुआ, यह समझ कर सखियाँ हँसी और कृष्ण को बुलाने लगीं ।)

सच तो यह है कि साहित्य लहरी में संग्रहीत सूरदास के दृष्टिकूट पदों पर अभी विचार ही नहीं हुआ है । इन पदों का अध्ययन करने से हम

है। ऋग्वेद में नारायण का परिचय भी हमें पहिली बार मिलता है। (ऋ० १२—६—१) और ब्राह्मण काल तक पहुँचते-पहुँचते वह भी परम देवत के रूप में माने जाने लगे हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु तथा नारायण का स्थान लगभग एक-सा दिखाई पड़ता है। महाभारत और पुराणों में दोनों को अभिन्न समझा गया है।

बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व सारस्वतों में उनके जातीय देवता वासुदेव की पूजा प्रधान हो गई थी। जातक कथाओं में एक कथा यह भी है कि बुद्धदेव पूर्व जन्म में वासुदेव थे। इससे यह सिद्ध होता है कि जातक-रचना के समय वासुदेव की बड़ी महिमा थी और बुद्ध की महत्ता स्थापित करने के लिए इस प्रकार की कल्पना की गई। पाणिनी के एक सूत्र से पता लगता है कि वासुदेव उनके समय में देवता समझे जाते थे। पाँचवी शताब्दी के लगभग महाभारत का पहिला संग्रह हुआ। उस समय वासुदेव नारायण और विष्णु को एक ही देवता समझा जाने लगा था। उसमें वासुदेव कृष्ण के पहिली बार दर्शन होते हैं। ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ से धार्मिक सुधार की तीन धारयें मध्य प्रदेश में बहने लगीं। इनमें वासुदेव-सुधार की धारा सर्वप्राचीन थी। जैन और बौद्ध सुधारों

समू० ह०स्य पांसुरे ॥ १७ ॥

तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयः

दिषी वा चक्षु राततं ॥ २० ॥

१. अग्निर वै देवानाम् । विष्णुः परमम् । तदन्तरेण सर्वाः अन्या देवताः ।

२. अष्टाध्यायी सूत्र ४—१—६८

पाणिनी का काल ईसा की पाँचवी और चौथी शताब्दी के बीच का है।

का जन्म उसी समय हुआ था। वासुदेव धर्म के संबंध में अधिक पता नहीं लग सका। परन्तु यह निश्चित है कि वह ईश्वरवादी था और भक्ति को उसमें स्थान मिला करता है। जान पड़ता है कि बौद्ध धर्म के राजधर्म होने के पश्चात् वासुदेव धर्म का क्षेत्र संकुचित हो गया। बहुत काल तक वह पश्चिमीय प्रदेश के मथुरा के आस-पास के ही प्रान्तों में प्रचलित रहा। जैन सुधार भी पश्चिमीय और पश्चिम-दक्षिण मध्य-प्रदेश को ही प्रभावित करता रहा। बौद्ध सुधार का प्रारम्भ पूर्वीय प्रदेश से हुआ था लेकिन राजसत्ता का आश्रय मिलने से शीघ्र ही उसका रूप अखिल भारतीय हो गया।

कृष्ण का सबसे पहिला परिचय हमें ऋग्वेद में एक अनार्य सामंत के रूप में मिलता है। इसके उपरांत छान्दोग्य उपनिषद् में भी एक कृष्ण का उल्लेख है। ये ऋषि हैं। इन्हें घोर अंगिरस का शिष्य और देवकी-पुत्र भी कहा गया है। विद्वानों ने यह माना है कि गोपाल कृष्ण का रूप ईसा की पहिली शताब्दी के लगभग प्रतिष्ठित हुआ परन्तु ऋग्वेद में जिस कृष्ण का उल्लेख है वे गो-पालक हैं और जब इंद्र उनकी गाय चुरा ले जाते हैं तो वह अपने गढ़ से निकलकर उससे युद्ध करते हैं और उसे पराजित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गोपाल कृष्ण का बीज-रूप वेदों में भी मिल जाता है। पुराणों और भागवत में पूजा के लिये इंद्र और कृष्ण की जिस प्रतियोगिता का वर्णन है उसका मूल भी कदाचित् इंद्र-कृष्ण का यही युद्ध है। इसके पश्चात् वासुदेव धर्म के उत्थान के साथ वसुदेव के पुत्र कृष्ण की प्रतिष्ठा हुई। ये ऐतिहासिक पुरुष समझे जाते हैं। ये द्वारका के राजा थे। इन्होंने महाभारत में विशेष भाग लिया। इन्हें वृष्णियों का नायक राजपुत्र कृष्ण भी कहा जा सकता है। वैदिक कृष्ण और उपनिषद् के ऋषि कृष्ण से इनका योग हुआ और कदाचित् इस प्रकार महाभारत के ज्ञानी और योद्धा कृष्ण के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। महाभारत का दूसरा संग्रह दूसरी शताब्दी पूर्व ईसवी के लगभग हुआ। उस समय वासुदेव धर्म के पुनरुत्थान के कारण महाभारत के कृष्ण को

परम भागवत मान लिया गया और उन्हें वैदिक देवता विष्णु और नारायण से मिला दिया गया ।

कनेडी ने कृष्ण के विकास के तीन भाग किये हैं । उन्होंने उन्हें द्वारका का राजा कृष्ण माना है जो महाभारत में अपने धूर्त कृत्यों के लिए प्रसिद्ध है । यह कृष्ण का राजनीतिज्ञ रूप है । उन्होंने उसे सिंधु-प्रदेश का अनार्य वीर योद्धा माना है जिसकी बहुत कुछ देवता के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी है । इसने राक्षस, पैशाच आदि व्याह किये थे । अंत में उन्होंने इन्हें मथुरा का बाल-कृष्ण भी माना है । महाभारत में बाल-कृष्ण का कोई परिचय नहीं मिलता । वहाँ कृष्ण वासुदेव भागवत या परम दैवत हैं । उनके द्वारा महाभारतकार ने अनेक उपासना-पद्धतियों के सामंजस्य की चेष्टा की है । महाभारतकार के समय में ज्ञान, भक्ति और कर्म की तीन धाराएँ चल रही थीं । गीता में भगवान् कृष्ण ने इन तीनों धाराओं को एक केन्द्र पर लाने की चेष्टा की है । उन्होंने योग प्राप्ति के अनेक ज्ञान मार्गों का वर्णन किया है परन्तु अंत में व्यवहार के लिये अनासक्त कर्म और आध्यात्म के लिए भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है । उन्होंने कहा है—सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरणां ब्रज । यही भक्ति का मूल मंत्र है ।

बाल-कृष्ण की प्रतिष्ठा के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है । अधिकांश विद्वानों का मत है कि ईसा की पहिली शताब्दी के कुछ पूर्व दक्षिण-पश्चिम प्रदेश में आभीर जाति का उत्थान हुआ था । इसने राजशक्ति भी प्राप्त की थी । मथुरा और द्वारका इसके केन्द्र थे । इसी जाति में एक बाल-देवता की उपासना होती थी । सम्भव है उसका नाम भी कृष्ण रहा हो । महाभारत के कृष्ण से इस बाल-कृष्ण का योग बिठाया गया और इस प्रकार कृष्ण के मध्ययुगीय रूप का निर्माण हुआ । पहिली शताब्दी के लगभग प्राकृत भाषा में जो काव्य-रचना हुई उसमें आभीर जाति की शृङ्गार-कथाओं का वर्णन है । अनेक गाथा-छंदों में गोप-गोपियों का उल्लेख है । इससे यह स्पष्ट होता है कि आभीर जाति

अत्यंत रसिक थी। सम्भव है इसी के प्रभाव के कारण ब्रज प्रदेश के लोक-गीतों में कृष्ण के भक्ति पदों में गोपियों की लीला और राधा को स्थान मिल गया। गाथा सप्तशती में राधा शब्द प्रथमवार पाया जाता है जो इस बात की पुष्टि करता है। इसी समय के लगभग भागवत धर्म का पुनरुत्थान हुआ और उसमें कृष्ण इस नये परिवर्धित रूप को स्वीकार कर लिया गया।

वासुदेव (भागवत) धर्म के इस पुनरुत्थान का कारण उसका राज्याश्रय प्राप्त करना था। पाटलीपुत्र के गुप्त राजाओं ने इस समय इस धर्म को अपना लिया था। उनके सिक्कों और शिला-लेखों पर उनके नाम के साथ 'परम भागवत' विशेषण मिलता है। परन्तु गुप्त वंश के पतन के साथ-साथ राज्याश्रय का लोप हो गया और बौद्ध धर्म ने एकवार फिर सारे पश्चिमी प्रदेश पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया। बहुत से विद्वानों का कहना है कि उस समय भागवत धर्म दक्षिण में चला गया जहाँ उसका विशेष विकास हुआ।

परन्तु दक्षिण में भक्तिमार्ग की प्रतिष्ठा कदाचित् ऋग्वेद-समय के आस-पास ही हो चुकी थी। यह सम्भव है कि उत्तर के भागवत धर्म के पुनरुत्थान ने पहिली शताब्दी के लगभग उसे प्रभावित किया हो। जो हो, पाँचवीं शताब्दी के लगभग दक्षिण में भक्ति-प्रधान वैष्णव मत विकसित हो रहा था। दक्षिण में अलवारों ने इसके विकास में विशेष सहयोग दिया। अलवार भक्त-कवि थे। इनके गीत दक्षिण के मंदिरों में गाये जाते थे। पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक इन गीतों का एक बड़ा साहित्य एकत्रित हो गया। दसवीं शताब्दी के अंत में इन अलवारों के एक सम्प्रदाय 'नामालवार' के गीतों का संकलन नाथ मुनि ने किया। इसका नाम 'नालायिर प्रबंधम्' है। इसकी कविताओं में कहीं भगवान के विरह से व्याकुल भक्त-हृदय की वेदना है कहीं गम्भीर दार्शनिक विचार हैं। कहीं ऐसे प्रेम-गीत जो सूक्तियों के प्रेम-गीतों से मिलते जुलते हैं।

‘प्रबंधम’ में वारह कवियों के गीत संग्रहीत हैं। इन गीतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

(१) नारायण मेरा स्वामी एवं सन्धा है। वह मेरे वर्तमान तथा भावी जीवन का एक मात्र आश्रय है। उसने अपने पवत्र कों से मेरे कर का स्पर्श किया है।

(२) ग्राम-ग्राम यह चर्चा फैल चुकी है कि मैं कुल कलंकिनी हूँ; माता, पिता तथा अन्य कुटुम्बीजनों की उपेक्षा कर अकेली ही उसके पथ पर चलना हूँ। क्या इस अपयश के डर से उसे भूल जाऊँ ! नहीं यह नहीं हो सकता -- देखो, देखो, वह मायापति आ रहा है। उसकी प्रतमा मेरे नेत्रों के सामने झलकने लगी है।

(३) समुद्र मंथन से उद्भूत अमृत से जैसे कोई अपना घड़ा भरे, वैसे ही मेरी भूखी आत्मा ने तुझे पीकर अपने को परपूर्ण कर लिया है।

(४) जैसे भीत पर चित्र चित्रित किया जाता है, वैसे ही तेरे प्रैभव को मैंने अपने हृदय पर चित्रित कर लिया है।

(५) न जाने मुझ अभागिनी की पुत्री को क्या हो गया है। जब वर्षा की झड़ी लगती है तब वह ‘ नारायण आ गये नारायण आ गये ’ कहती हुई नाचती है।

जब वह वशीध्वनि सुनती है तब उसे कृष्ण की मुरली का रव समझ कर उसे रोमांच हो जाता है। जब वह वालियों को दधिले जाने देखत है तब ‘ यह वही दही है जिसे कृष्ण ने खाया था, ’ यह कह उठती है।

यह किशोरी तुझे देखने की अभिलाषा में धुली जा रही है, परन्तु तुझे दया नहीं आती। अग्नि के सम्मुख रखे हुये मोम की सी उसकी दशा है। परन्तु तू हृदयहीन है।

(६) तेरे दर्शन की अभिलाषा से मैं रोता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, गाता गाता थक जाता हूँ; चारों ओर प्रतीक्षा के नेत्रों से देखते हुये तुझे न पाकर लज्जित हो जाता हूँ।

(७) हे मायापति ! हे सुन्दर नेत्र वाले ! हे लाल पुष्प से हाथ पैर और नेत्र वाले ! हे स्वामी ! तुम किसी दिन आश्रां जिसमें मैं तुम्हें देख सकू !

(८) अग्रणीत पापों का अनुत्तर मैंने नव जीवन प्राप्त कर लिया है। मैंने तेरी सेवा स्वीकार कर ला है। क्या मैं तुम्हें कभी छोड़ सकता हूँ ?

(९) वह मेरी दृष्टि से दूर नहीं होता : वह मेरे ज्ञान चक्षुओं में समा गया है। सुप्त रागों के इस माधुर्य ने आज मेरे हृदय में प्रवेश कर लिया है॥

इन गीतों के आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्ण दक्षिण के भक्तों की ही कल्पना है। यह अवश्य है कि कृष्ण की रूप-कल्पना में दक्षिण के भक्तों का प्रधान हाथ रहा है परन्तु इसमें यह सिद्ध नहीं होता कि कृष्ण का आविर्भाव दक्षिण में हुआ। यह अवश्य सिद्ध हो सकता है कि अल्लारों के इन गीतों ने वैष्णव (भागवत) धर्म के पुनरुत्थान के समय उस पर विशेष प्रभाव डाला। बारहवीं शताब्दी के लगभग श्रीमद्भागवत का निर्माण हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि भागवत की रचना दक्षिण में हुई अथवा उत्तर में। परन्तु भागवत के कृष्ण का बहुत कुछ रूप द्राविड़ है और इस ग्रंथ में एक आख्यायिका ऐसी भी मिल जाती है जिसमें यह सिद्ध होता है कि भागवतकार भक्ति का जन्म द्राविड़ देश में, उसका लालन पालन महाराष्ट्र देश में और उसकी युवावस्था का समय गुजरात में व्यतीत होना ठीक सम्भवे है। इस कथा में नारद जी ने मथुरा के पास एक स्त्री को रोते देखा था जिसके दो बच्चे थे। उसने अपना नाम भक्ति बताया। उसके साथ के बच्चे मृतप्राय थे। इन्हें उसने ज्ञान और वैराग्य बताया। इस कथा-प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि बारहवीं शताब्दी के पहले भक्ति क्रमशः द्रविड़

॥ अज्ञान गीतों के इस अनुवाद के लिये हम पं० द्वारका प्रसाद मिश्र के एक लेख के आभारी हैं।

प्रदेश महाराष्ट्र और गुजरात में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उसने ज्ञान और वैराग्य को पदच्युत करके यह स्थान प्राप्त किया था।

ईसा की पहिली शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक ऐसे अनेक धर्म ग्रंथ और पुराण बने जिन्होंने विष्णु के अवतारों का वर्णन किया। इन ग्रंथों ने चौदहवीं शताब्दी के अंत में प्रगट होने वाले भागवत धर्म के दूमरे पुनरुत्थान में विशेष भाग लिया। ये ग्रंथ नारायणीय, नारद पंचरात्र, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, वागह पुराण, अग्नि पुराण, नृसिंह पुराण और भागवत पुराण हैं।

नारायणीय में एक कथा है कि नारद वदरिकाश्रम की यात्रा करते हैं। वहाँ उन्हें नर नारायण के दर्शन होते हैं। वास्तव में यह दोनों एक देवता हैं। नारायण की प्रकृति का ही नाम नर है। इसमें नारायण के चार व्युहों का उल्लेख है (१) वासुदेव (२) सकर्षण (३) प्रद्युम्न (४) अनरुद्ध। इनने ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है उससे सारे जड़-चेतन संसार की। वस्तुतः नारायण के ये चार व्यूह दार्शनिक क्षेत्र के आदि ब्रह्म, प्रकृति मनस् और अहंकार के प्रतीक मात्र हैं। नारायणीय में कंस वध के निमित्त वासुदेव कृष्ण के अवतार का निर्देश है पर उनकी गोकुल लीला का उल्लेख नहीं मिलता। नारायणीय में नारायण के ६ अवतारों का उल्लेख है - वाराह नृसिंह वामन परशुराम, राम और वासुदेव कृष्ण। वायु पुराण अग्नि पुराण और वागह पुराण में अवतारों की संख्या दम हो गई है यद्यपि इन अवतारों में मतभेद है। वायु पुराण में शेष चार अवतार दत्तात्रेय, अनामी, वेदव्यास और कल्कि हैं। अग्नि पुराण और वाराह पुराण में ये शेष चार अवतार मत्स्य कूर्म, बुद्ध और कल्कि हैं। नृसिंह पुराण में विष्णु के इन दश अवतारों के साथ कृष्ण और बलराम का भी नाम जोड़ दिया गया है। भागवत पुराण में अवतारों की संख्या आशातित बढ़ गई है। उसमें कुल मिलाकर ६१ अवतारों का निर्देश है। हरिवंश पुराण के ६ अवतारों के अतिरिक्त सनत्कुमार, नारद, कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ और धन्वन्तरि मुख्य हैं।

इन सब पुराणों में अनेक अवतारों की कथा का होना एव उनकी संख्या का क्रमशः बढ़ते जाना हमारे लिए एक महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। इससे पता चलता कि पहली शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भागवत धर्म जन-समाज में प्रचलित अनेक देवताओं की सत्ता को स्वीकार करके और उन्हें विष्णु का अवतार मानकर उन धर्मों को अपने प्रभाव-क्षेत्र में ला रहा था। इस प्रकार बारहवीं शताब्दी तक वैष्णव धर्म अपने को पुष्ट करता रहा। यद्यपि उसने इस प्रक्रिया में अनेक देवताओं को अपनी उपासना-पद्धति में स्थान दिया तथापि उसने मुख्य रूप से केवल दो अवतारों की प्रतिष्ठा की। फलतः वैष्णव धर्म के द्वितीय पुनरुत्थान के समय केवल दो व्यक्तित्व प्रधान रूप से धार्मिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित थे और तत्कालीन आचार्यों और भक्तों ने इन्हीं का लेकर दर्शन, धर्म और काव्य की रचना की।

वैष्णव धर्म के द्वितीय पुनरुत्थान का सबसे प्रधान कारण यह था कि उस समय बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था और धार्मिक क्षेत्र एक प्रकार से रिक्त हो गया था। सम्राट् हर्षवर्धन बौद्धों का अंतिम आश्रय था। उसके साथ ही भारतवर्ष से बौद्ध धर्म का लोप हो गया। बौद्ध धर्म के पतन के बाद भारतीय धार्मिक क्षेत्र में धर्म की तीन धारें चलीं। पूर्व में महायान ने तंत्र मार्ग और शक्त पूजा को जन्म दिया। पश्चिम में राजपूत राजाओं के आश्रय में शैव धर्म का विकास हुआ। समस्त दक्षिणात्य में विष्णु-पूजा प्रचलित हो गई। कुछ ही समय बाद वैष्णव मत उत्तर भारत में भी आगया। उसने शिव को विष्णु की ही शक्ति माना। सारे पश्चिमीय प्रदेश और दक्षिण भारत में विष्णु के तीन रूपों -- ब्रह्मा विष्णु तथा शिव -- की भक्ति-पूजा उपासना प्रचलित हो गई।

आठवीं शताब्दी तक कुमारिल भट्ट के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म के अवशेष चिन्ह भी लुप्त हो गये। कुमारिल भट्ट के पश्चात् आचार्यों का युग प्रारम्भ होता है। इन आचार्यों ने वेद, उपनिषद् और पुराणों की एक बार फिर प्रतिष्ठा की। ये सब आचार्य दक्षिण से आये थे और वहाँ

के अलवार भक्तों एवं उनके साहित्य में प्रभावित हो चुके थे। शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित करके ज्ञान मार्ग की प्रतिष्ठा की। किन्तु उन्होंने नारायण और शिव के प्रति अनेक भक्तों के छंदों की भी रचना की है। इसमें स्पष्ट है कि उनपर भी भक्तों का प्रभाव था। उस युग में अनेक मत मतान्तर धार्मिक-क्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिये युद्ध कर रहे थे। इस लिये उस समय ज्ञान मार्ग की प्रतिष्ठा की व्यावहारिक आवश्यकता थी जिसे शंकराचार्य ने भक्ती मानिती समझ लिया था।

वैष्णव धर्म में भक्त मार्ग के प्रवर्तक रामानुजाचार्य हैं। इनका संबंध नमालवार गीतों के संकलनकर्त्ता नाथ मुनि से जोड़ा जाता है। इसमें यह स्पष्ट है कि वे अलवारों की भक्ति से ही प्रभावित हुये। नाथ मुनि के पौत्र श्री यामुनाचार्य थे जो ग्यारहवीं शताब्दी में हुये। नाथ मुनि श्री सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य थे। यामुनाचार्य के बाद रामानुजाचार्य इसी सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य हुये। उन्होंने दक्षिण के तामिल सतों के ज्ञान और भावों का वेद उपनिषद् और गीता के प्राचीन ग्रंथों से सामंजस्य स्थापित किया और अपने नये मत की नींव डाली। इस मत में भक्त की प्रधानता नहीं थी किन्तु उमें एक विशेष स्थान अवश्य प्राप्त था।

रामानुजाचार्य का जन्म सं० १०७४ (स० १०१७ ई०) में हुआ था। उनकी मृत्यु सं० ११६७ (सन् ११२० ई०) में हुई। उनके समय में धार्मिक क्षेत्र में उच्छ्वलता फैली हुई थी। दार्शनिकों में शंकर के मायावाद का प्रचार था। व्यवहार में अनेक मत मतान्तर फैले हुये थे। शिव विष्णु और शक्त की उपासना होती थी। मायावाद की आड़ में नाथ सम्प्रदाय अपने योग मार्ग का प्रचार कर रहा था। पूर्व में एक वाम मार्गी स्त्री-उपासक सहज मत का जन्म हो गया था। त्रिपुर सुंदरी की पूजा प्रचलित थी। ऐसे समय में रामानुजाचार्य ने वैष्णव धर्म का एक नये प्रकार से संगठन किया। उन्होंने उन सब धर्म-सम्प्रदायों को स्वीकार कर लिया जो शास्त्र-विहित थे और उनका वैष्णव धर्म से संबंध स्थापित किया। शंकराचार्य के मायावाद का खंडन करने में उन्हें अपनी शक्ति

विशेष रूप से लगानी पड़ी। शंकराचार्य ने बौद्ध शून्यवाद के खंडन में ज्ञान का आश्रय लिया था, अतः उनका भक्ति-धर्म आगे नहीं बढ़ पाया। परन्तु रामानुजाचार्य का नया मत जनसाधारण के लिये था, इसलिये उन्होंने अपनी उपासना-पद्धति में भक्ति को भी स्थान देने की आवश्यकता समझी। वह मुक्ति के लिये ज्ञान को उपादेय मानते थे। परन्तु सभी मनुष्यों का ज्ञानी होना असम्भव है। जो ज्ञानी नहीं थे उनके लिये उन्होंने भक्ति की योजना की। वैष्णवधर्म में द्विजातियों को विशेषाधिकार प्राप्त था उन्हें भक्ति का आदेश मिला। शूद्रों के लिये रामानुजाचार्य ने एक नई कल्पना की। उन्होंने उनके लिए प्रपत्ति का उपदेश दिया। प्रपत्ति का अर्थ है ईश्वर पर सर्वथा आश्रित होकर अपना विस्मरण कर देना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामानुजाचार्य ने उत्तरी भारत के धर्म-क्षेत्र में भक्ति का बीज बोया परन्तु उस बीज ने वृक्ष का रूप ग्रहण करने में कई शताब्दियों का समय लिया।

रामानुजाचार्य के कुछ ही पश्चात् (बारहवीं शताब्दी) आंध्र देश में निम्बार्क उत्पन्न हुये। उन्होंने भक्ति और प्रपत्ति को एक माना। इस प्रकार भक्ति के क्षेत्र को विस्तृत किया। रामानुजाचार्य ने नारायण तथा लक्ष्मी को अधिक महत्व दिया था परन्तु निम्बार्क ने कृष्ण तथा राधा को उपास्य माना। उनके कुछ ही समय पश्चात् उनके मतानुपासियों की संख्या ब्रज और बंगाल प्रदेश में यथेष्ट होगई होगी। राधा और कृष्ण की आवतारणा भक्ति आंदोलन की एक बड़ी घटना है। उसने पहिली बार मधुरभाव की उपासना को जन्म दिया यद्यपि इसमे मिलती जुलती एक उपासना पद्धति सूफियों द्वारा इसी क्षेत्र में अंकुरित हो रही थी। बंगाल में शक्ति की उपासना के कारण इस प्रकार की मधुरभाव की भक्ति के लिए पृथ्वूमि पहले से बन चुकी थी। ब्रज-भूमि तो कृष्ण की लीला-भूमि ही समझी जाती थी।

रामानुजाचार्य के लगभग दो सौ वर्ष बाद (सं० १३६४ या सन्

१२३७ ई०) मध्वाचार्य का जन्म हुआ। इन्होंने वैराग्य तथा नवधा भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने विष्णु को परमात्मा माना और उनके राम तथा कृष्ण अवतारों को उपास्य ठहराया। उन्होंने कृष्ण पर अधिक बल दिया। तदनंतर विष्णु स्वामी ने महाराष्ट्र में विष्णु की भक्ति विशेष रूप से प्रतिष्ठित की।

दक्षिण के आचार्यों के भक्ति मत को अधिक सार्वजनिक रूप देकर उत्तर भारत में प्रचलित करने का श्रेय रामानन्द को प्राप्त है। उन्होंने रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय को व्यापक और लोकप्रिय बनाया। उन्होंने स्त्रियों और अछूतों को भी भक्ति का अधिकार दिया। विष्णु अथवा नारायण के स्थान पर उन्होंने उनके अवतार रूप राम की भक्ति का उपदेश किया। रामानन्द का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने अपने मत के प्रचार के लिए संस्कृत का आश्रय छोड़कर प्रचलित भाषा का प्रयोग किया। उस समय के हिन्दी में लिखे हुये उनके कुल्लु पद भी प्राप्त हुये हैं। वैष्णव मत के लिये जन भाषा का प्रयोग एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना है।

रामानन्द के समय में उत्तर भारत में भक्ति की एक लहर दौड़ गई। उसके कई कारण थे। रामानन्द ने भक्ति के रूप को सामान्य तथा जन साधारण के लिये अधिक सुलभ बना दिया था। शूद्रों और स्त्रियों को भी भक्ति का अधिकार मिल गया था। और भाषा के प्रयोग के कारण दर्शन और धर्म के ऊँचे सिद्धान्त सर्वसाधारण तक छुन कर पहुँचने लगे थे।

यद्यपि मध्वाचार्य ने राधा के साथ कृष्ण की कल्पना करके भक्तों को मधुर भाव की भक्ति का थोड़ा बहुत आभाम दे दिया था परन्तु उसका पूर्ण विकास आगे के युग में हुआ। हम अनुमान कर सकते हैं कि जिन केन्द्रों में राधा-कृष्ण की भक्ति चलती रही होगी वहाँ शीघ्र ही इस भक्ति ने शृङ्गार भाव को जन्म दिया होगा। इस भाव के विकास में भागवत ने विशेष सहायता की होगी। यह भी सम्भव है कि परवर्ती संस्कृत और

प्राकृत साहित्य की शृङ्गार-भावना ने भक्तों की भक्ति को मधुर रस का पुट दे दिया है। जो ही पंद्रहवीं शताब्दी तक शृङ्गार भाव अथवा मधुर रस की उपासना इनकी अधिक प्रचलित हो गई थी कि वल्लभाचार्य को इसके लिये शास्त्रय व्यवस्था देनी पड़ी। थाड़े ही समय में सारा उत्तरी भारत मधुर रस की कृष्ण भक्ति से ज्ञावित हो गया। इसका एक केन्द्र बंगाल तथा और दूसरा व्रज, राजस्थान एवं गुजरात में। इस समय पंढारपुर में विष्णु (विट्ठल नाथ) की भक्ति और अयोध्या में राम-भक्ति के केन्द्र थे। कृष्ण-भक्ति के मधुर भाव की प्रतिष्ठा होने के बाद पंढारपुर का केन्द्र उभी के रंग में रंग गया। अयोध्या के केन्द्र पर भी विशेष प्रभाव पड़ा। तुलसीदास की कविता में यह प्रभाव स्पष्ट है। बंगाल में कृष्ण भक्ति को दृढ़ करने वाले महाप्रभु चैतन्य थे। उनका जन्म सं० १५४२ (सन् १४८२ ई०) में हुआ। वे माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे। यही माधवेन्द्र पुरी वल्लभाचार्य के भी गुरु थे परन्तु कुछ समय पश्चात् उनके शिष्य हो गये। चैतन्य ने राधा भाव से कृष्ण की उपासना की। उन्होंने राधा-कृष्ण के अनन्य प्रेम से सारे बंगाल को श्रोत-प्रांत कर दिया। उनका जीवन विरह तन्मयभक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ (सन् १४७८ ई०) में हुआ। ये चैतन्य से सात आठ वर्ष बड़े थे। ये उनका गुरु भाई भी थे। दोनों ने अपने समय के प्रचलित भक्ति मार्ग को ही पुष्ट किया। अतः चैतन्य और वल्लभ के मतों में बहुत कुछ ऐक्य है। दोनों में मधुर भाव की भक्ति का विशेष स्थान है। दोनों में राधा-कृष्ण की भक्ति को एक ही महत्त्व दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि चैतन्य सम्प्रदाय में भावुकता को अधिक स्थान मिला है। कृष्ण की रास लीला के अनुकरण में चैतन्य सम्प्रदाय में गान, वाद्य नृत्य और कीर्तन को विशेष स्थान मिला। सम्भव है कि उस पर सूफी मत का प्रभाव पड़ा हो। वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति अधिक संयत है। उसमें पूजा विधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वार्ता से पता चलता है कि वल्लभाचार्य ने कीर्तन का प्रबंध

श्रीनाथ जी की स्थापना के कई वर्ष बाद किया। सम्भव है कि इसका कारण चैतन्य सम्प्रदाय का प्रभाव हो क्योंकि चैतन्य ने स्वयं ब्रज की यात्रा की थी तथा जीव गोस्वामी आदि उनके अनुयायी ब्रज में बहुत दिन तक रहे थे। श्रीनाथ जी के मंदिर का प्रबंध भी लगभग बीस वर्ष तक बंगालियों के हाथ में रहा। इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय की भावुकता और रसिकता वल्लभ सम्प्रदाय को बहुत समय तक प्रभावित करती रही।

वैष्णव धर्म के द्वितीय पुनरुत्थान में वल्लभाचार्य के पुष्टमार्ग का विशेष हाथ है। सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय वल्लभ के सिद्धान्तों और पुष्टमार्ग पर प्रकाश डाला गया है अतः यहाँ सामान्य रूप से उसकी चर्चा की जायगी।

संवत् १५४८ (सन् १६६२ ई०) में वल्लभाचार्य ब्रज में आये और श्री गोवर्धन जी पर श्रीनाथ जी की मूर्ति की स्थापना की। श्रीनाथ जी की पूजा का उत्तरदायित्व अपने कुछ शिष्यों पर सौंप कर वे फिर यात्रा को निकले। तीस वर्षों की आयु में उन्होंने तीन बार भक्त भ्रमण किया। उनकी यात्राओं ने उनके मत प्रचार के लिये मार्ग प्रशस्त किया। सहस्रों लोग कृष्ण भक्त हो गये। दूसरी यात्रा के समय उन्होंने काशी में अपना विवाह किया। तीसरी यात्रा समाप्त करने के बाद वे प्रयाग के समीप अडेल नामक ग्राम में घर बना कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। वहीं उनके दो पुत्र हुये। अंत समय में वे सन्यासी हो गये। देहावसान काशी में हुआ। वल्लभाचार्य ने वैष्णव धर्म को दो विशेष प्रकार की भक्ति पद्धतियाँ दी। एक तो राधा-कृष्ण की मधुरभाव की उपासना जो चैतन्य सम्प्रदाय में भी प्रधान रूप प्राप्त कर चुकी है। दूसरे प्रकार की भक्ति वल्लभाचार्य की मौलिक कल्पना है। यह अवश्य है कि भागवत में श्री कृष्ण की बाल लीला का वर्णन है और पंचरात्र में वात्सल्य भक्ति को भी भक्ति का एक अंग माना गया है। परन्तु व्यवहार में वात्सल्य भक्ति की स्थापना करने का श्रेय सम्पूर्ण रूप से वल्लभाचार्य को है। भक्त के इन दो प्रकारों ने वैष्णव

धर्म का रूप ही बदल दिया, वह सर्व साधारण के लिये अत्यंत सहज हो गया। उसमें वात्सल्य हृदय प्रौढ़ स्त्री पुरुषों और प्रेम संस्कारपूर्ण युवती-युवतियों—सभ के लिये स्थान था। यही कारण था कि लगभग चार सौ वर्ष तक सारा उत्तर भारत राधा-कृष्ण के नाम में गुंजा रहा और उत्तर भारत की सभी भाषाओं का साहित्य उन्नी में रंग गया। उनके आंदोलन ने भारतीय चित्रकला में राजस्थानी और कामड़ा शैली को जन्म दिया। भगवान कृष्ण के जन्म से लेकर उनके स्वर्गारोहण तक की सभी लालाएँ साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला और जन-गीतों के द्वारा सहस्रों बार अभिव्यक्ति हुईं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में मध्ययुग की सस्कृति के निर्माण में विशेष रूप से भाग लिया। उसके बालक कृष्ण प्रत्येक घर में जन्म लेने लगे उसकी राधा कृष्ण के संबंध की मधुर कल्पना ने भारतीय घरों में प्रेम के परिष्कृत रूप की प्रतिष्ठा की। बाद के शृङ्गार काव्य की धारा ने राधा कृष्ण को लेकर साहित्य और धर्म का कुछ अपकार भी किया परन्तु इसके लिये वल्लभाचार्य और उनका पुष्टिमार्ग उत्तरदायी नहीं है। यह उस युग की मनोवृत्त का प्रभाव है जिसमें वल्लभाचार्य के शिष्यों का जन्म हुआ था तथा जिसमें उन लोगों ने काम किया था।

स्वयं वल्लभाचार्य के इष्टदेव बालक कृष्ण हैं। उन्हें श्रीनाथ जी का बाल-कृष्ण गोपाल कृष्ण और नवनीत प्रिय रूप ही अधिक रुचि कर प्रतीत हुआ। वल्लभ सम्प्रदाय की पूजा-विधि से अब भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। भगवान का दैनिक कार्यक्रम बालक का ही है। प्रातः काल सो कर उठने से रात्रि में शयन तक की दिनचर्या में आठ दर्शन होते हैं—(१) मंगलाचरण (२) शृङ्गार (३) ग्वाल रूप (४) राज भोग (५) उत्थापन (६) भोग (७) संध्या आगती (८) शयन। वल्लभ सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र गोकुल है। उसके मुख्य मंदिर में नवनीत प्रिय भगवान की ही प्रतिष्ठा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है

कि यद्यपि वल्लभाचार्य की सारी लीला कृष्ण-प्रिय थी और उन्होंने राधा को अपने मत में स्थान देकर मधुर भावना की उपासना को स्वीकार भी कर लिया था तथापि उनके इष्टदेव नवनीत प्रिय बालक कृष्ण ही थे ।

वल्लभाचार्य की मृत्यु के पश्चात् उनके सम्प्रदाय में राधा का महत्व अधिक बढ़ा होगा । सम्भव है कि यह चैतन्य मत का प्रभाव हो । वल्लभाचार्य के समय में ही श्रीनाथ के मंदिर में बंगाली वैष्णव पूजा के लिये नियुक्त किये गये थे । सम्भव है कि उस युग की शृङ्गार-प्रियता के कारण ऐसा हुआ हो, जिसकी भाँकी मुगल सम्राटों के दैर्भ्य में मिलती है । जो हां पुष्टिमार्ग ने हिन्दी में जिस साहित्य को जन्म दिया उसमें राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर शृङ्गार रस ही अधिक प्रस्फुटित हुआ । 'अष्टछाप' के कवियों की जीवनियों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले उनमें रसिकता की मात्रा अधिक बढ़ी हुई थी । राधा-कृष्ण की प्रेम लीला संबंधी शृङ्गारिक पद गाकर उन्हें अपनी मनोवृत्ति के विपर्यय का अच्छा अवसर मिला । विठ्ठलदास के समय में तो सम्प्रदाय ने राधा को और भी अधिक महत्व दे दिया । उस समय के अन्य धर्म सम्प्रदायों और युग की सामान्य प्रवृत्ति को देखकर यह नहीं कहा जा सकता की परवर्तीकाल में अनाचार बढ़ाने का कितना दोष वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग पर डाला जा सकता है । परन्तु दो शताब्दियों बाद इस सम्प्रदाय के आचारों में शिथिलता अवश्य आ गई थी ।

संक्षेप में, वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग तथा अष्टछाप द्वारा प्रकाशित उसकी कविता ने मध्ययुग के मानव जीवन को सरस और सौंदर्य प्रिय बनाया । निर्जीव हिन्दू साहित्य, संगीत और कला एक नये जीवन से श्रोत प्रोत हो गये । उसने मानव संस्कृति के ऐसे कोनों का स्पर्श किया, जिनकी ओर उस समय तक भारतीय धर्म व्यवस्थापकों, साहित्यिकों और कलाकारों की दृष्टि नहीं पहुँची थी ।

राधा

राधा का व्यक्तित्व ऐतिहासिक नहीं है। वह दार्शनिकों धर्म-ग्रन्थों और कवियों की सृष्टि है। उसके व्यक्तित्व का निरंतर विकास होता गया है, यहाँ तक कि हमें सूरदास के काव्य में उसका एक पूर्ण चित्र मिल जाता है। सूरदास के समय से अब तक राधा के चरित्र में कोई विकास नहीं हुआ है।

महाभारत में कृष्ण के जीवन का पहला पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित होता है। परन्तु इसमें गोप-लीला का अभाव है। महाभारत में न गोपियाँ हैं, न राधा। गोप-लीला का परिचय हमें पहिली बार श्रीमद्भागवत में मिलता है परन्तु कृष्ण की प्रेम-लीला में भाग लेने वाली असंख्य गोपियों में राधा कहीं भी नहीं है। सारे भागवत में कहीं उसका नाम भी नहीं आया है। इस ग्रंथ में एक स्थान पर कृष्ण की एक विशेष प्रिय गोपिका का उल्लेख है। इस गोपी ने पूर्व जन्म में कृष्ण की आराधना की थी। उसके विशेष प्रिय होने का कारण भी यही है। सम्भव है कि इसी बात से बाद में राधा नाम की एक विशेष गोपी की कल्पना की गई हो जो कृष्ण को विशेष प्रकार से प्रमत्त करती है^१। हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण में भी राधा के चिन्ह नहीं मिलते। ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखे गये भास के नाटकों में भी राधा का नाम नहीं आया है^२।

१. राधा शब्द संस्कृत धातु राध् से बना है जिसका अर्थ है सेवा करना अथवा प्रसन्न करना।

२. कृष्ण की बाब लीला के संबंध का एक नाटक बाब चरित्र है।

परन्तु खोज द्वारा पता चलता है कि राधा की कल्पना पहिली शताब्दी अथवा उसमें भी पूर्व काल में हो चुकी थी। संस्कृत ग्रंथों में राधा का पहला परिचय दसवीं शताब्दी में मिलता है परन्तु देशी भाषाओं में राधा का उल्लेख इससे पूर्व आ जाने के कारण उनका इतना महत्व नहीं रह जाता। देशी भाषा लोक-भावना के अधिक निकट थी। अनुमान यह होता है कि राधा के संबंध में जन गीत प्रचलित रहे होंगे। देशी भाषा के कवियों ने अपने काव्य में उनके प्रभाव को ग्रहण किया। दसवीं शताब्दी के लगभग जय कृष्ण के लिए उनकी शक्ति के नारी रूप की कल्पना करने की आवश्यकता पड़ी तो धर्म व्यवस्थापकों ने जन-समाज में प्रचलित और कृष्ण से संबंधित राधा को कृष्ण की पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया।

भाषा-काव्य में सबसे पहले राधा शब्द प्राकृत की 'गाथा सप्तशती' में पाया जाता है जिसका निर्माण काल विक्रम संवत् के आरंभिक काल के निकट है। इससे कुछ ही समय बाद के ग्रंथ 'पंचतंत्र' में इसी राधा का नाम आता है।

धर्म ग्रंथों में राधा का पहला विशद चित्र ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है जो भागवत के बाद का ग्रंथ है^१। इसके कुछ ही समय बाद निम्बार्क और जयदेव का काल आता है। निम्बार्क ने राधा को

उसके अन्य नाटक दूत-वाक्य और दूत घटोत्कच हैं। भास के समय के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान उन्हें ईसा पूर्व का रचा हुआ समझते हैं अन्य विद्वान उन्हें तीसरी शताब्दी के अथवा चौथी शताब्दी के अन्त में लिखा हुआ स्वीकार करते हैं। हमने उनका निर्माण काल बीच का मान लिया है। विशेष परिचय के लिये देखिये जिसबाब और स्टेनक्रॉनो की खोजें और विन्टरनोज़ का ग्रन्थ—Some Problems of Indian Literature p. 135.

१. दसवीं शताब्दी के लगभग।

कृष्ण की मूल-प्रकृति कहा है^१ । जयदेव के ग्रन्थ 'गीत-गोविंद' में राधा का जो केलि विलासमय चित्र उपस्थित होता है ; उसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में राधा की प्रतिष्ठा परमाशक्ति के रूप में हो चुकी थी^२ । इस समय तक राधा का कृष्ण की बाल-लीला के साथ संबंध नहीं जोड़ा गया था । इसमें पहले राधा को वैष्णव धर्म की उपासना-पद्धत में स्थान नहीं मिला था^३ । काव्य में अवश्य राधिका का प्रचलन हो गया था । जयदेव के कुछ ही परवर्ती आनंदवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक में दो श्लोक राधा के संबंध में मिलते हैं ।

इस प्रकार हम चौदहवीं शताब्दी में पहुँचते हैं । इस समय भागवत सम्प्रदाय का नये रूप से विकास हुआ । आचार्यों ने कृष्ण के साथ राधा की उपासना को भी मान्य समझा । कवियों एवं भक्तों ने राधा कृष्ण का संबंध पूर्णतः जोड़ दिया । इस समय के 'गोपाल तापनी उपनिषद्' में राधा का वर्णन कृष्ण की प्रेमी के रूप में हुआ है ।

अगली शताब्दी में राधा कृष्ण का काव्य में प्रचुर प्रयोग हुआ है । विद्यापति और उनमें कुछ पहिले उमापति ने राधा-कृष्ण की शृङ्गारिक लीलाओं को अपने गीति-काव्य का विषय बनाया । यह मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग की बात है । अधिक पूर्व बंगाल में इसी समय चंडीदास

१. अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा ।

विगज माना मनु रूप सौभागाम् ॥

सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा ।

स्मरेमूरेवीम् सकलेष्ट कामदाम् ॥

दश श्लोको (स्तोत्र)

२ जयदेव का समय बारहवीं शताब्दी है ।

३ निम्बार्क के पहले भागवत पुगण के आधार पर माधव सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । परन्तु इसमें द्वैतवाद के सिद्धान्त पर कृष्णोपासना को ही स्थान दिया गया है ।

ने कृष्ण काव्य की रचना की। दक्षिण पश्चिमी भारत में भी राधा कृष्ण का चरित्र काव्य का विषय बना। गुजरात में नरसी मेहता ने राधा-कृष्ण विषयक रचनायें कीं। मीराबाई ने राजस्थान में मधुर भाव से कृष्ण की उपासना की। उनकी कविता में वे स्वयं राधा-रूप से उपस्थित हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। उनके विषय में जो रचनायें की गईं उनसे यह भी स्पष्ट है कि राधा कृष्ण का संबंध गोपियों के संबंध के बाद हुआ जब कि दोनों तरफ हां चुके थे। बाल-लीला और तरुण कृष्ण की प्रेम लीला में संबंध अगली शताब्दी में सूरदास ने जोड़ा। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि पश्चिम में राधा कृष्ण का रूप धार्मिक आधक था। वह भक्ति और उपासना का विषय बनाया गया था। परन्तु पूव में उसके काव्यात्मक अंग अधिक विकसित हुये थे। सम्भव है कि इसका कारण यह हो कि राधा की उपासना पहले भागवत पुराण के आधार पर वृन्दावन में आरम्भ हुई^१ और वहीं से वह बंगाल तथा अन्य स्थानों में पहुँची। बंगाल में पहुँचते पहुँचते उसमें उपासना भाव से अधिक काव्य और रस की प्रतिष्ठा हो गई। महाराष्ट्र के ब्रज केन्द्र से निकट होने के कारण उसमें उपासना का भाव अधिक रहा।

तत्पश्चात् चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। ये दोनों अपने पूर्ववर्ती कवियों तथा आचार्यों से प्रभावित हुये। वल्लभाचार्य ने विष्णु स्वामी से प्रभावित होकर राधा की उपासना की प्रतिष्ठा की। उन्होंने बाल-कृष्ण को अपना उपास्यदेव माना और नवनीत प्रिय के नाम से उनकी स्थापना की। उनके सम्प्रदाय में राधा नवनीत प्रिया हो गई। इस प्रकार कृष्ण की बाल-लीला एवं तरुण प्रेम-लीला के सामंजस्य उत्पन्न करने का अवसर उपस्थित हुआ। सूरदास ने राधा-कृष्ण के प्रसंग पर अपनी कल्पना का प्रकाश डाला और किशोर-किशोरी की प्रथम भेंट से

लेकर कुश्नेत्र से लौटने पर कृष्ण द्वारा राधा को पत्नी-रूप में स्वीकार करने की कथा तब एक पूर्ण विकसित जीवनचरित्र उपस्थित किया। चैतन्य महाप्रभु ने भी अपने सम्प्रदाय में राधा को महत्वपूर्ण स्थान दिया। राधा के महाभाव को प्राप्त करना भक्त का सर्वोत्तम लक्ष्य था।

पश्चिमी काल में राधा को लेकर भक्त मार्ग में अनेक दोष आ गये। एक मन राधा को ही अन्वयतम उपास्य मान कर उठ खड़ा हुआ^३। बंगाल में शक्तिपूजा तथा तंत्रवाद ने राधा की भक्ति को विशेष रूप से कल्पित किया^४। स्वयम् बल्लभ सम्प्रदाय में बल्लभाचार्य की मृत्यु के उपरान्त विठ्ठलनाथ ने सम्प्रदाय में राधा को विशेष स्थान दिया और अपने दार्शनिक सिद्धान्तों में भी अपनी प्रतष्ठा की।

जयदेव की राधा प्रेम विह्वला है। कृष्ण की अनेक गोपियों में से एक वह भी है। वे जानती हैं कि उसके कृष्ण विलास जयदेव की राधा चतुर हैं। उनके सौन्दर्य^३ पर वह रंभ गई है। वह जानती है कि कृष्ण अनेक सुन्दरियों के साथ रमण करते हैं^४। पान्नु उसे उनसे कोई ईर्ष्या नहीं वह यह सब सहन कर सकता है। उसे केवल कृष्ण चाहिये जिनके सौन्दर्य और विलास चातुर्य ने उसे मुग्ध कर लिया है। वह स्वयं विलास-के ल प्रिय है। वह प्रगल्भा है परन्तु प्रमाधिक्य के कारण उसकी लज्जा बाढ़ के दूट जाने पर नदी के जल की तरह उच्छृङ्खल रूप में बह जाती है। उसके प्रेम का वेग अगाध है अतः उसकी अनरंकुशता भी उसका सौन्दर्य है।

१. राधा श्यामी मत।

२. बंगाल में प्रचलित सहाजिया वैष्णव सम्प्रदाय की धारणाओं से इस बात की पुष्टि होती है। बंगाल में परकीया रूप से राधा की उपासना भी प्रचलित है।

३. प्रचुर पुण्ड्र धनुष्ण रंजित भेदुरु मुदिर सुशेम्।

४. गोप कदम्ब नितम्बवती मुख चुंचन.....।

जिस प्रकृति के बीच में जयदेव ने राधा-कृष्ण की विलास-लीला का चित्रण किया है वह विलास और काम की उद्दीपन सामग्री से भरी पड़ी है। इस प्रकार वह राधा-कृष्ण की लीला के लिये उपयुक्त पृष्ठभूमि उपस्थित करती है।

जयदेव ने विलासिनी, प्रेमाकुला और यौवन प्राप्त राधा का चित्रण किया है। विद्यापति अपनी राधा को वयःसन्धि की अवस्था विद्यापति की राधा में उपस्थित करते हैं। उनकी यह सृष्टि अद्भुत^२ है।

१. मेघमेंदुरम्बर बन भुवः श्यामास्तमालद्रुमै—
रुक् भोर्नरयं स्वमेव तमिदं राधे गृहं प्रापय ।
हृत्थं नन्द निदेशश्चञ्चितयोः प्रत्यध्व कुञ्ज द्रुमं—
राधा माधवयार्जपन्ति यमुना कूलैरहः कैलयः ।
ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे ।
मधुकर निकर करं वित कोञ्जि कञ्जित कुञ्ज कृटीरे ।
विद्वरति हरिरिह सरस वसन्ते ।
२. शैशव यौवन दुहु मिलि गेल ।
अवनक पथ दुहुँ लोचन मेल ।
वचनक चातुरि लहु लहु हास ।
धरनीए चाँद करत परकास ।
छने-छने नयन कोन अनुसरह ।
छने छने वसन धूलि तनु भरह ।
छने-छने दसन छटा-छट हास ।
छने छने अधर ओज करु वास ।

तथा—

जाहाँ-जाहाँ पद युग धरइ ।
ताँही ताँही सरोरुह भरइ ।
जाहाँ-जाहाँ म्मलकत अंग ।
ताहाँ ताहाँ विजुरि तरंग ।

उस समय राधा भोली किशोरी है। कुछ समय बाद अज्ञात यौवना हो जाती है। उसी समय उसका परिचय कृष्ण से होता है। यह मिलन भी अद्भुत है^१। इसके बाद राधा-कृष्ण के अनेक संयोग-वियोग के अनेक चित्र हमारे सामने उपस्थित होते हैं। विद्यापति ने दूती-कर्म का विस्तृत चित्रण किया है। कृष्ण के मिलन और विरह दोनों अवसरों पर दोनों पक्ष की दूतियाँ अपने काम में बड़ी तत्परता से लगी दिखाई देती हैं। अंत में जब राधा कृष्ण का मिलन होता है तो राधा के आनंद का पूछना ही नहीं, वह चिल्ला पड़ती है —

कि कहव रे सखि आनंद ओर ।
 चिर दिने माधव मंदिर मोर ॥
 दारुन वसन्त जात दुख देत ।
 हरि मुख हेरइते सब दुख गेल ॥
 पाप सुधाकर जत दुख देल ।
 पिया सुख दरसने तत सुख भेल ॥
 यतहुँ आल्लिल मोर हृदयक साध ।
 ये सब पूरल हरि परसाद ॥
 रभस आलिंगने पुलकित भेल ।
 अधरक पाने विरह दुर गेल ॥

संक्षेप में विद्यापति की राधा आरम्भ में किशोरी है, बीच में सुग्ध एवं विलास-प्रिय है, अंत में हृदय मन से कृष्णमय हो गई है। उस समय उसकी परिसमाप्ति अनिर्वचनीय उल्लास में हुई है। वह कृष्ण के लीलामय क्रीड़ानंद-प्रधान रूप का अविभाजित अंग है।

-
१. आध आँचर खसि आध बदन हाँपि आधहि नयन तरंग ।
 आध उरज हेरि आध आँचर भरि तब धरि दगधे अनंग ।
 दसन मुकता पांति अधर मिजायत मृदु-मृदु कहतहि भाषा ।

चण्डीदास की राधा जयदेव तथा विद्यापति की राधा से भिन्न है^१ । उसका निर्माण अधिक कोमल एवं भावुक तत्वों से चण्डीदास की राधा हुआ है । आदि में अंत तक वह अश्रु में गड़ी हुई मूर्ति है । उसके प्राण कृष्ण में हैं^२ । उसकी प्रीति अद्भुत है । वियोग की तनिक सी आशंका से वह पागल हो जाती है । उसे कृष्ण की अनंतसंगिनी होने की ही अभिलाषा है । उनके साथ विलास-रत होने की नहीं । चण्डीदास ने राधा-कृष्ण के मिलन में गुरु जन, ननद आदि द्वारा बाधा पड़ने की कल्पना करके राधा को परकीया बना दिया^३ । परन्तु इन्हीं बाधाओं के कारण राधा के प्रेम में जिन अत्यंत कोमल और सूक्ष्म मानसिक परिस्थितियों और हृदय-गत भावों का चित्रण हो सकता है, वह विद्यापति में नहीं है । चण्डीदास की राधिका तन्मयता में अद्वितीय है । कलंक-भय, गुरु-जन बाधा, स्वभाव-जन्य

१. “ विद्यापति की राधा कई चित्रों का समष्टि रूप है । जयदेव की राधा की भाँति उसमें शरीर का भाग अधिक है, हृदय का कम × × × × चण्डीदास की राधा में मान करने की क्षमता भी नहीं है । दसों इंद्रियों तो मुग्ध है मन मान कैसे करे ? वह अपूर्व तन्मयता है ”

(डा० दिनेश चंद्र सेन)

“ विद्यापति की राधा में प्रेम की अपेक्षा विज्ञास अधिक है; उसमें गम्भीरता का अटल स्थैर्य नहीं है . . . ”

महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर

२. तुम मोर पति तुम मोर गति मन नाहिं आन भय ।
कल की बलिया डाके सब लोके तहाते नाहिक दुख ।
तो भार लागिया कलंकेर द्वार, गलाय परिते सुख ।

३. घरे गुरु जन ननदी दासन, बिलंबै बाहिर है नू ।
आहा मरि-मरि, संकेत करि, यत ना यातना दिनुं ।

आशंकाओं, १ मिलन-भय और भावी संयोगानंद की कल्पना ने ही उसके प्रेममय व्यक्तित्व का निर्माण किया है। विद्यापति की चंचल, मधुर तथा नव यौवना राधा से चंडीदास की प्रेम-गम्भीर, व्याकुल और कलंक-भय से पद-पद पर आशंकित राधा का चित्र ही अधिक उज्ज्वल और अलौकिक हुआ है। उसमें परमात्म-तत्त्व के लिए व्याकुल जीवात्मा की व्यंजना बड़ी सफलता से प्रस्फुटित हुई है। चंडीदास की राधा कृष्ण की प्रेयसी ही नहीं है, उनकी भक्त हैं। अधिकांश काव्य में वह भक्त को छोड़कर और कुछ भी नहीं है २।

जयदेव, विद्यापति, चंडीदास और सूरदास इन समस्त महानात्माओं ने राधा के चरित्र को अपने हृदय के सारे रस और अपनी सारी कवित्व शक्ति में मंडित किया है। उन्होंने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला में कोई भी बात गहित एवं वर्जित नहीं समझी। उनके काव्य का आधुनिक पाठक आश्चर्य में पड़ जाता है—क्या ये महापुरुष भक्त हैं? अथवा घोर शृङ्गारिक? यदि वे भक्त हैं, तो वे अपने उपास्यदेव के इस प्रकार के वासना-प्रधान चित्र क्यों उपस्थित करते हैं?

यह प्रश्न आज हमारे मन में इसलिये उठता है कि हम विश्वास की भूमि से दूर जा पड़े हैं। दूसरे, मध्ययुग की पृष्ठभूमि को छोड़ कर हम इन कवियों के काव्य को अपने सामने रखते हैं। इसीलिये यह प्रश्न हमारे मन में प्रधान है। क्या हम यह नहीं समझ सकते कि मध्ययुग के कवि और भक्त दो अलग सत्ता नहीं रखते थे और जिस शृङ्गार का वर्णन उन्होंने किया है, वह एक अलौकिक व्यक्ति का शृङ्गार है? क्या हम राधा-कृष्ण के शृङ्गार के पीछे उत्सुकता, प्रेम और विह्वलता से भरे भक्त

१ एह भय उठे मने एह भय उठे ।

ना जानि कानूर प्रेम तिले जनि छुटे ।

२ गोप गोपालि की हाम अति दिना ना जानि भजन पूजन ।

पीरीति रसते, ठालि तनुमन दियछि तोमार पाय ।

हृदय की भांकी नहीं पाते ? जयदेव अपने काव्य को “ सरस हरि स्मरण ” कहते हैं विद्यापति अपूर्व रूपवती राधा के चरणों में अपने काव्य को पुष्पांजलि के रूप में उपस्थित करते हैं ।

देख देख राधा रूप अपार ।

अपरुव के विह आनि मिलाओल खिहितन लावनि सार ।

अंगरि अंग अनत मुरझायत हेरिये पड़इ अधीर ।

मनमथ कोटि मथन करु जे हरि मे हरि महिमह गीर ।

कत कत लछुमी चरन तल ने उछे रंगनि हेर विभोर ।

करु अभिलाप मनहिं पद पंकज अहो निशि केरि अगोरि ।

चंडीदास की राधा तो प्रेम-विह्वल, आकुल-हृदय, तन्मयासक्त भक्त का ही रूप है ।

कानू से जीवन जाति प्रान धन ए दुइ आँखर तारा ।

परान अधिक हियार पुतली निमिपे निमिपे हारा ।

उधर सूरदास राधा के चरणों में प्रणत होते हैं और उनसे कृष्ण की भक्ति मागते हैं ।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि शृङ्गार-चित्रण के समुद्र के केन्द्र में पहुँच कर भी मध्ययुग के इन कवियों ने अपने ध्रुव लक्ष्य को भुला नहीं दिया । उनका मुँह उसी ओर रहा । यह अवश्य है कि उन्होंने प्रत्येक पद में इस शृङ्गार-लीला की अलौकिकता का रोना नहीं रोया । वे एक बार संकेत करके सामने से हट गये । यद्यपि उन्होंने स्वयम् उस संकेत को नहीं भुलाया । आज हम भले ही यह बात न समझें, मध्ययुग का भक्त और विश्वासी श्रोता इस तत्व को समझता था ।

वास्तव में, राधा ने मध्ययुग की भक्ति को एक नया रूप दे दिया । उसने मधुर रस की सहज साधना को जन्म दिया । इस साधना में कठिन जप, तप, योग अथवा उपासना के वैद-विहित पुरातन नित्य अथवा नैमित्तिक कर्मों (यज्ञ, याग मंत्रादि) को कोई स्थान नहीं मिला । यदि

स्थान मिला भी तो गौण । भक्त को केवल अपने इन्द्रियों की आसक्ति के केन्द्र का विपर्यय करना पड़ता था । उसकी लौकिक प्रीति (वासना) ही अलौकिक सत्ता की ओर उन्मुख की जाती थी^१ । उसका ध्येय विद्यापति की इन पक्तियों में स्पष्ट है—

जनम अवधि हम रूप निहारलु
नयन न तिरपित भयल ।
सोइ मधुर बोल श्रवणहिं सुनलु,
श्रुतिपथ परसे न गेल ॥

इसी अपूर्व रूप और स्वर को मध्ययुग के मनुष्य ने भक्ति-भाव, रस, अलंकार, भाषा और अपनी ऐन्द्रिय वासनाओं के द्वारा अपने लिये सुलभ और साकार बनाने की चेष्टा की है । यही उसकी साधना है । यही उसकी भक्ति है । यही उसकी कविता है । यहीं पर उसने राधा के महत्व को समझा है जो कहीं उसके लिए कृष्ण की लीला के रस को प्राप्त करने का साधन है और कहीं स्वयं साध्य है ।

